संयुक्त राज्य अमेरिका
का
शासन

महेन्द्र प्रकाश अग्रवाल, एम० ए०



कि ता ब म ह ल
इ ला हा बा द

प्रथम संस्करण, १६५६

लेखक की अन्य
रचनाएँ
स्विट्ज़रलैंड का शासन
सोवियत संघ का शासन

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद ।
मुद्रक—अनुपम प्रेस, १७ जीरो रोड, इलाहाबाद ।

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

प्रस्तावना

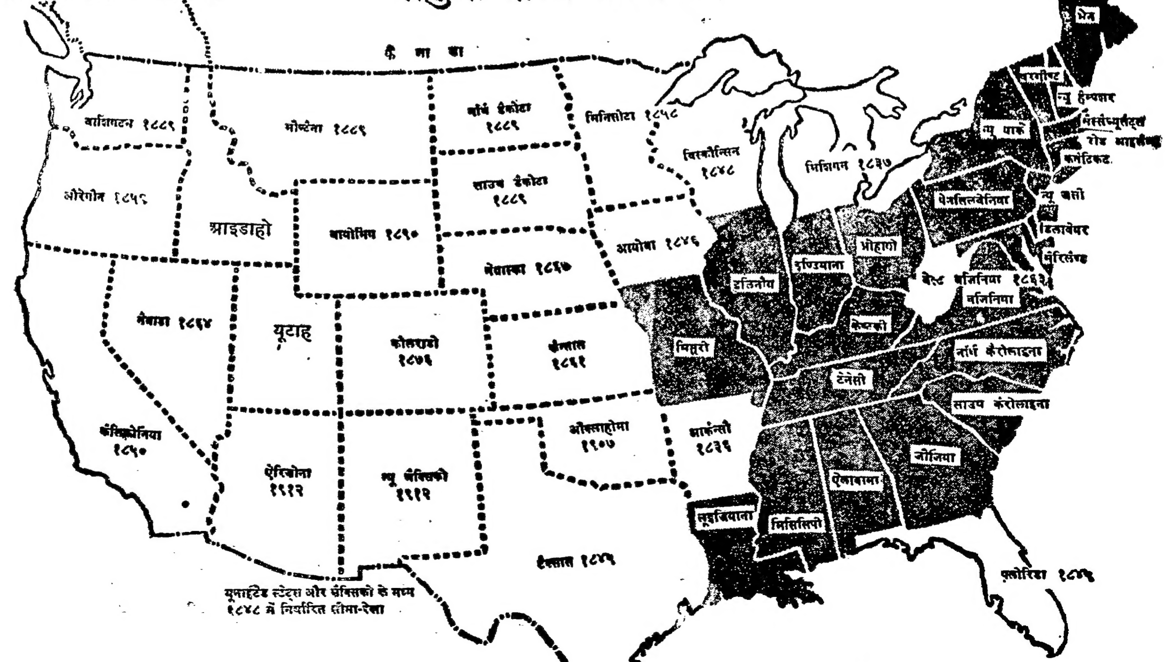
इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, संयुक्त राज्य की शासन-प्रणाली पर प्रकाश डालना है। पुस्तक में न केवल संयुक्त राज्य के विभिन्न शासनांगों के ऐतिहासिक विकास, रचना, संगठन, कृत्यों तथा शक्तियों का ही उल्लेख किया गया है, प्रत्युत अन्य देशों के समरूप शासनांगों से उनकी तुलना भी की गई है। प्रयत्न यह किया गया है कि सभी तथ्य तथा आँकड़े नवीनतम हों। अपनी पिछली पुस्तकों, 'स्विट्ज़रलैण्ड का शासन' तथा 'सोवियत संघ का शासन, की भाँति इस पुस्तक की भाषा को भी मैंने सरल और सुबोध रखने की चेष्टा की है और यथास्थान हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेज़ी पर्यायवाची शब्द भी दे दिए हैं।

संयुक्त राज्य की शासन-प्रणाली का अध्ययन न केवल विश्वविद्यालयों के राज्य-शास्त्र के विद्यार्थियों के ही लिए आवश्यक है, वरन् सामान्य पाठकों के लिए भी। इसका कारण यह नहीं है कि अमेरिका बहुत बड़ा, बहुत समृद्ध तथा बहुत शक्तिशाली राज्य है, अपितु यह कि संयुक्त राज्य का संविधान संसार के वर्तमान लिखित संविधानों में सर्वाधिक प्राचीन है और उसने प्रायः विश्व के सभी जनतांत्रिक देशों की शासन-प्रणालियों को प्रभावित किया है। हमारे देश के संविधान में भी अमेरिकी संविधान के विशिष्ट लक्षण, यथा संघवाद, न्यायिक-पुनर्विलोकन आदि, अपनाए गए हैं। इसीलिए हमारे लिए अमेरिकी संविधान का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। आशा है यह पुस्तक विद्यार्थियों और सामान्य पाठकों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए सुझाव देने वाले अथवा पुस्तक की त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित करने वाले पाठकों के प्रति मैं आभारी होऊँगा।

१३ प्रयाग स्ट्रीट, इलाहाबाद
२०-६-५६

महेन्द्र प्रकाश अग्रवाल


संयुक्त राज्य अमेरिका
यूनाइटेड स्टेट्स की उत्तरी सीमा-रेखा, जो १८४६ में ग्रेट ब्रिटेन के साथ सन्धि द्वारा निश्चित हुई
कै ना डा
वाशिंगटन १८८९
मोण्टेना १८८९
नॉर्थ डैकोटा १८८९
मिनिसोटा १८५८
विस्कौन्सिन १८४८
मिशिगन १८३७
औरेगोन १८५९
आइडाहो
वायोमिंग १८९०
साउथ डैकोटा १८८९
आयोवा १८४६
नेब्रास्का १८६७
नेवाडा १८६४
यूटाह
कोलराडो १८७६
कैन्सास १८६१
कैलिफ़ोर्निया १८५०
ऐरिज़ोना १९१२
न्यू मैक्सिको १९१२
ओक्लाहोमा १९०७
आर्कन्सा १८३६
टैक्सास १८४५
फ्लोरिडा १८४५
मेन
वरमौण्ट
न्यू हैम्पशायर
मैसेच्यूसैट्स
रोड आइलैण्ड
कनैटिकट
न्यू यार्क
न्यू जर्सी
पेन्सिलवेनिया
डैलावेयर
मैरिलैण्ड
ओहायो
इण्डियाना
इलिनोय
वैस्ट वर्जिनिया १८६३
वर्जिनिया
कैण्टकी
मिसूरी
नॉर्थ कैरोलाइना
टैनेसी
साउथ कैरोलाइना
जौर्जिया
ऐलाबामा
मिसिसिपी
लूइज़ियाना
यूनाइटेड स्टेट्स और मैक्सिको के मध्य १८४८ में निर्धारित सीमा-रेखा
मैक्सिको
यूनाइटेड स्टेट्स की १८२९ से पूर्व की स्टेटें
१८२९ के पश्चात् यूनाइटेड स्टेट्स में सम्मिलित स्टेटें

अध्याय १

संयुक्त राज्य अमेरिका : देश-परिचय

संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान न केवल विश्व के वर्तमान लिखित संविधानों में सर्वाधिक प्राचीन ही है, वरन् उसने प्रायः सभी जनतांत्रिक देशों की शासन-प्रणाली को प्रभावित किया है। संघीय-व्यवस्था, शक्ति-पृथक्करण, न्यायिक-प्रधानता आदि, अमेरिका के संविधान की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो इस संविधान के निर्माण के पूर्व अन्य किसी देश की शासन-प्रणाली में उपस्थित नहीं थीं। नागरिकों के महत्त्वपूर्ण अधिकारों की संविधान के द्वारा प्रत्याभूति करने की दिशा में भी अमेरिकी संविधान ने ही अन्य देशों के संविधानों का मार्ग-दर्शन किया है। परन्तु इन विशेषताओं के अमेरिकी संविधान में स्थान पाने का कारण हम तभी स्पष्टतया समझ सकते हैं जब हम संविधान-निर्माण की राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का ज्ञान प्राप्त कर लें। इसी कारण सांविधानिक उपबंधों पर विचार करने के पूर्व हम संयुक्त राज्य अमेरिका का उपरोक्त दृष्टि से संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे।

संयुक्त राज्य की भौगोलिक स्थिति—संयुक्त राज्य अमेरिका उत्तरी अमेरिका महाद्वीप के मध्य-भाग में स्थित है। उसकी उत्तरी सीमा-रेखा पर जो कि लगभग तीन हज़ार मील लम्बी है, कनाडा स्थित है। पूर्वी और पश्चिमी सीमा-रेखा पर क्रमशः अटलांटिक महासागर तथा प्रशान्त महासागर स्थित हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी सीमांत पर मेक्सिको (Mexico) राज्य तथा मेक्सिको की खाड़ी हैं। परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान भौगोलिक स्थिति है। संविधान-निर्माण के समय तो संयुक्त-राज्य अमेरिका का क्षेत्र केवल अटलांटिक महासागर के तट पर स्थित कुछ राज्यों तक ही, जिनकी संख्या तेरह है, सीमित था। जनसंख्या में वृद्धि के साथ अधिक भूमि की आवश्यकता अनुभव हुई और धीरे-धीरे योरोपीय जातियों

के अमेरिका में बसे हुए लोग पश्चिम की ओर बढ़ने लगे; यहाँ तक कि एक समय वह आया कि उन्होंने रॉकी पर्वतमाला (Rockey Mountains) को पार कर प्रशान्त महासागर के तट तक के क्षेत्र को अपना निवास-स्थान बना लिया।

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, संयुक्त राज्य अमेरिका की सीमा-रेखा केवल दो राज्यों, कनाडा और मेक्सिको की सीमा-रेखा को छूती है। इन दोनों राज्यों से संयुक्त राज्य के सदैव मैत्रीपूर्ण संबंध रहे हैं। संयुक्त राज्य को समुद्र पार के शत्रुओं से कभी विशेष भय नहीं रहा और इसी कारण वहाँ जनतांत्रिक संस्थाओं का अनवरुद्ध विकास होता रहा। जनतांत्रिक शासन-प्रणाली के दो बड़े शत्रु हैं—आंतरिक अशान्ति और वाह्य आक्रमण का भय। सौभाग्य से ये समस्याएँ संयुक्त राज्य के समक्ष आपवादिक रूप में ही उपस्थित हुई हैं, निरन्तर नहीं।

क्षेत्रफल—संयुक्त राज्य अमेरिका का वर्तमान क्षेत्रफल ३,०२६,७८९ वर्गमील है।[१] प्रारंभ में जिन तेरह राज्यों ने संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना की थी उनका सम्मिलित क्षेत्रफल ३१५,०६५ वर्गमील ही था। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक संयुक्त राज्य अमेरिका में तीन और राज्य सम्मिलित हुए, जिससे उसका क्षेत्रफल ३८७,०८० वर्गमील हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्य में छोटे-बड़े कुल उन्तीस राज्य सम्मिलित हुए। सन् १९०७ में ओक्लाहोमा (Oklahoma) तथा सन् १९११ में एरिज़ोना (Arizona) तथा न्यू मेक्सिको (New Mexico) के सम्मिलित हो जाने पर संयुक्त-राज्य के राज्यों की संख्या अड़तालिस हो गई, जो कि अभी भी वही है। अन्य देशों के क्षेत्रफल से तुलना करने पर हम देखते हैं कि संयुक्त राज्य का क्षेत्रफल भारत के क्षेत्रफल का लगभग ढाई गुना, फ्रांस के क्षेत्रफल का छब्बीस गुना, तथा युक्त राज्य के क्षेत्रफल का पचीस गुना है। परन्तु संयुक्त राज्य का क्षेत्रफल सोवियत संघ के क्षेत्रफल के आधे से भी कम है।

यह समझना गलत होगा कि संयुक्त राज्य के सभी एकक (Units) क्षेत्रफल की दृष्टि से समान या लगभग समान हैं। जहाँ एक ओर संयुक्त राज्य में रोड

[१] *The Statesman's Year Book*, 1956.

द्वीप (Rhode Island) और डेलावेर (Delaware) जैसे राज्य, जिनका क्षेत्रफल क्रमशः १,२५० और २,०५० वर्गमील ही है, सम्मिलित हैं, वहाँ दूसरी ओर टेक्सास (Texas) और कैलिफ़ोर्निया जैसे विशालकाय राज्य, जिनका क्षेत्रफल क्रमशः २६५,७८०, तथा १५८,३६० वर्गमील है, भी हैं। संयुक्त राज्य में सम्मिलित ऐसे राज्यों की संख्या जिनका क्षेत्रफल एक लाख वर्गमील से अधिक है सात हैं।

जनसंख्या—सन् १९५४ में लगाए गए अनुमान के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान जनसंख्या १६२,४१४,००० है।[1] सन् १९५० की जन-गणना के समय संयुक्त राज्य की जनसंख्या १५०,६९७,३६१ थी। अमेरिका के राज्य-क्षेत्र में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों और कृषि-योग्य भूमि को देखते हुए यह जनसंख्या अधिक नहीं प्रतीत होती क्योंकि हमारे अपने देश की, जिसका क्षेत्रफल संयुक्त राज्य के क्षेत्रफल के आधे से भी कम ही है, जनसंख्या दुगुनी से भी अधिक है। शक्ति के स्रोतों तथा प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से भी संयुक्त राज्य हमारे देश की तुलना में बहुत अधिक समृद्ध है। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि संयुक्त राज्य की जनसंख्या अत्यन्त द्रुत गति से बढ़ती रही है। सन् १७९० में संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसंख्या ३,९२९,२१४ थी, उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक यह ७५,९९४,५७५ हो गई। इसके बाद बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में, अर्थात् पचास वर्षों में, यह लगभग दुगुनी हो गई।

नवीनतम आँकड़ों के अनुसार संयुक्त राज्य की जनसंख्या का एक बड़ा भाग (६४%) नगर-निवासियों का है। लगभग नौ करोड़ पैंसठ लाख व्यक्ति नगरों में रहते हैं। शेष जनता में दो करोड़ तीस लाख ग्रामवासी कृषक तथा तीन करोड़ ग्यारह लाख कृषकेतर-ग्रामवासी हैं। यह आँकड़े बताते हैं कि आज का अमेरिका संविधान-निर्माण के समय के अमेरिका के समान कृषि-प्रधान देश नहीं है। आज वह एक प्रमुख औद्योगिक देश है जिसके अधिकांश नागरिक आधुनिक युग की सुख-सुविधाओं का उपयोग करते हैं। सन् १९५० की जन-गणना के अनुसार अमेरिका में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या से अधिक है।

[1] *The Statesman's Year Book*, 1956.

स्त्रियों की संख्या ७५,८६४,१२२ है, जब कि पुरुषों की संख्या ७४,८३३,२३९ ही है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसंख्या के निरन्तर द्रुत गति से बढ़ते रहने का एक प्रमुख कारण अन्य देशों के निवासियों का बड़ी संख्या में जाकर अमेरिका में बसना है। सन् १८२० और सन् १९५३ के बीच के काल में लगभग चार करोड़ विदेशी जा कर अमेरिका में बसे। इनमें से अधिकांश योरोपीय देशों के निवासी ही थे, क्योंकि अन्य महाद्वीपों के निवासियों के अमेरिका में बसने पर अनेक प्रतिबंध लगे हैं। अमेरिका में जाकर बसने वाले विदेशियों की इस बड़ी संख्या में एशियावासियों की संख्या केवल नौ लाख इकहत्तर हजार ही थी।

हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि संयुक्त राज्य की जनसंख्या का एक बड़ा भाग नगरनिवासियों का है। इसी कारण अमेरिका में अधिक जनसंख्या वाले नगरों का बाहुल्य है। सन् १९५० में संकलित आँकड़ों के अनुसार संयुक्त राज्य में पच्चीस हजार या इससे अधिक जनसंख्या वाले नगरों की संख्या चार सौ चौरासी थी। इनमें इकतालीस नगरों की जनसंख्या ढाई लाख या उससे अधिक, पैंसठ की एक लाख और ढाई लाख के बीच, एक सौ छब्बीस की पचास हजार और एक लाख के बीच और दो सौ बावन की पच्चीस हजार और पचास हजार के बीच थी। अकेले न्यू यार्क (New York) नगर की जनसंख्या अठत्तर लाख से अधिक है, जो कि स्विट्ज़रलैंड की सम्पूर्ण जनसंख्या की लगभग दुगुनी है।

जातियाँ तथा भाषाएं—मुख्यतः अमेरिका के निवासियों को जातियों की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किया है—श्वेतांग (Whites), नीग्रो (Negroes), और अन्य जातियों के लोग। इनमें सर्वाधिक संख्या श्वेतांगों की और उससे कम नीग्रो जातियों के लोगों की है। अन्य जातियों के लोगों की संख्या अधिक न होने पर भी नगण्य नहीं है। सन् १९५० की जन-गणना के अनुसार श्वेतांगों की संख्या तेरह करोड़ उन्चास लाख, नीग्रो जाति के लोगों की एक करोड़ पचास लाख और अन्य जातियों के लोगों की संख्या लगभग सात लाख थी। इन आँकड़ों से विदित होता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में अभी भी पूर्ण जनसंख्या का लगभग ग्यारह प्रतिशत भाग नीग्रो जाति के लोगों का

है। जनता के जिस भाग को हमने श्वेतांग (Whites) कहकर सम्बोधित किया है वह किसी एक ही जाति के हैं, यह समझना भूल होगी। योरोप के प्रायः सभी देशों के निवासी पर्याप्त संख्या में अमेरिका में जाकर बसे हैं। इसीलिए श्वेतांगों में हमें अँग्रेज, आयरिश, फ्रांसीसी, जर्मन, इटालियन, आस्ट्रियन, हंगेरियन, रूसी, पोल आदि अनेकों जातियों के लोग मिलेंगे। परन्तु, इनमें से अधिकांश ऐसे लोग हैं जो इंग्लैंड से अमेरिका में आकर बसने वाले लोगों के वंशज हैं। श्वेतांगों तथा नीग्रो जाति के लोगों के अतिरिक्त सन् १९५० में अमेरिका में एक लाख सत्रह हजार चीनी, एक लाख इक्तालिस हजार जापानी तथा तीन लाख तैंतालिस हजार भारतीय थे। अमेरिकी जनता में इतनी अधिक जातियों के लोगों का सम्मिश्रण होने के कारण भाषा की भिन्नता होना अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु मुख्यतः अमेरिका के सभी भागों में अँग्रेजी भाषा व्यवहार में लाई जाती है और उसी में सारा राजकीय कार्य होता है।

यह तथ्य सर्वविदित है कि आज भी अमेरिका के सब राज्यों में नीग्रो जाति के लोगों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता। श्वेतांगों द्वारा उनके साथ अस्पृश्यों जैसा घृणापूर्ण व्यवहार किये जाने के समाचार जब-तब मिलते ही रहते हैं। कुछ राज्यों में नीग्रो लोगों को श्वेतांगों के विद्यालयों आदि में भी प्रवेश नहीं लेने दिया जाता। अपने को संसार का सर्वश्रेष्ठ प्रजातांत्रिक-राज्य घोषित करने वाले देश के लिए वस्तुतः यह लज्जा का कारण है। परंतु यह मानना होगा कि एक जाति के द्वारा दूसरी जाति के बर्बरतापूर्ण उत्पीड़न और शोषण के जैसे उदाहरण अन्य देशों के इतिहास में मिलते हैं उनका अमेरिका में अभाव ही है।

धर्म—जिस प्रकार संयुक्त राज्य में अनेकों जातियों के लोग निवास करते हैं उसी प्रकार वहाँ अनेकों धर्मों के अनुयायी भी हैं। यद्यपि यह निश्चित रूप से बताना कठिन है कि किस धर्म के कितने अनुयायी हैं, परन्तु विभिन्न धार्मिक संस्थाओं की सदस्यता के नवीनतम आँकड़े यहाँ उद्धृत किये जा सकते हैं। इन आँकड़ों के अनुसार विभिन्न प्रोटेस्टेंट धार्मिक संस्थाओं की सदस्य-संख्या पाँच करोड़ अट्ठावन लाख, रोमन कैथोलिक चर्च की तीन करोड़ चौदह लाख, यहूदी धार्मिक संगठनों की पचास लाख, पूर्वी गिर्जों की इक्कीस लाख तथा ओल्ड कैथोलिक और पोलिश नेशनल कैथोलिक संगठनों की सदस्य-संख्या तीन लाख

छियासठ हजार है। अमेरिका में निवास करने वाले बौद्धों की संख्या तिरसठ हजार है। यद्यपि अन्य धर्मों के अनुयायियों की संख्या उल्लेख करना संभव नहीं है, परन्तु अन्य किसी धर्म के अनुयायी अमेरिका में हैं ही नहीं यह समझना ठीक नहीं है। जैसा कि उपर्युक्त आँकड़ों से स्पष्ट है अमेरिका के निवासियों का एक बड़ा भाग ईसाई धर्म के ही किसी न किसी सम्प्रदाय का अनुयायी है। यद्यपि भौतिक प्रगति के साथ-साथ अमेरिका में धार्मिक संस्थाओं का प्रभाव कम होता गया है, परन्तु धर्म का अभी भी अमेरिकी जनता पर पर्याप्त प्रभाव है।[१] इसका एक प्रमुख कारण यह है कि अमेरिकी धार्मिक संस्थाओं ने समय की गति के अनुसार अपने स्वरूप में काफ़ी परिवर्तन कर लिया है। इन परिवर्तनों का उल्लेख करते हुए प्रो० लास्की ने लिखा है—उन्होंने (अमेरिकी गिरजों ने) लौकिक समाज के लिए मान्यताओं के मानदंड बनाना बन्द कर दिया है; इसके विपरीत, उनके स्वयं के मान्यताओं के मानदंड उन्हें लौकिक जगत से प्राप्त होते हैं।[२]

संयुक्त राज्य की व्यक्तिवादी परम्परा

प्रत्येक देश के संविधान को राष्ट्रीय परंपराएँ एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करती हैं। कुछ देशों में प्रजातंत्र की सफलता और कुछ में असफलता इसी तथ्य की पुष्टि करती है। अमेरिकी इतिहास से परिचित सभी व्यक्ति जानते हैं कि वहाँ व्यक्तिवाद की भावना दृढ़ता से जमी हुई है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि अमेरिका के वर्तमान निवासी उन लोगों के वंशज हैं जो सोलहवीं और

---

[१] "There have been periodical moments of excitement...But, all in all, the Churches have remained a vast pressure group whose organised hostility it is important to avoid. An avowed and militant atheist could hardly hope to be elected to a political office of the first importance."—Laski, H. J., *The American Democracy*, p. 295.

[२] "They have ceased themselves to make the standards of value for the secular society about them; on the contrary, their own standards of value are given to them by the secular world."—*Ibid.*, p. 322.

सत्रहवीं शताब्दियों में धार्मिक अत्याचारों और उत्पीड़न से त्रस्त होकर अपनी रक्षा के लिए 'नई दुनिया' में जा कर बसे थे। उन्हें शासन की निरंकुशता के परिणामों का भली भाँति ज्ञान था और इसी कारण वे वैयक्तिक मामलों में राज्य का कम से कम हस्तक्षेप चाहते थे। औपनिवेशिक काल के अनुभवों ने उनके विचारो कों और भी दृढ़ कर दिया और वे पूरी तरह आश्वस्त हो गये कि व्यक्ति के हित के लिए राज्य का कार्यक्षेत्र अत्यन्त सीमित होना परमावश्यक है।

व्यक्तिवादी विचारों के विकास में अमेरिका की भौतिक दशाओं ने भी पर्याप्त योग दिया। अमेरिका में जाकर बसने वालों को पर्याप्त मात्रा में उत्तम कोटि की उपजाऊ भूमि मिली जिससे वे शीघ्र ही समृद्ध हो गये। धीरे-धीरे वैयक्तिक सम्पत्ति उनके लिए एक पवित्र संस्था के समान बन गई। अमेरिकी संविधान के निर्माता भी समृद्ध वर्ग के व्यक्ति थे और इसीलिए उन्होंने संविधान के द्वारा अपने वर्ग के हितों को संरक्षित करने का प्रयत्न किया। आज भी अमेरिका में व्यक्तिवादी परंपरा दृढ़ है। सामान्यत: अमेरिकी नागरिक यह विश्वास करते हैं कि वे अपने श्रम से उन्नति की चरमावस्था पर पहुँच सकते हैं। इसी भावना का यह परिणाम है कि जनता अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में राज्य का अत्यधिक हस्तक्षेप पसन्द नहीं करती।

अध्याय २

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अमेरिका में उपनिवेशों की स्थापना—जिस प्रदेश को आज हम संयुक्त राज्य अमेरिका कहते हैं, आधुनिक अर्थों में उसका इतिहास सत्रहवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों से प्रारंभ होता है। इसी समय यूरोप के विभिन्न देशों के निवासियों ने बड़ी संख्या में जाकर उत्तरी अमेरिका के विभिन्न भागों में बसना प्रारंभ किया। अटलांटिक महासागर के मेन (Maine) से लेकर जार्जिया तक के तटीय प्रदेश पर ब्रिटेन के नरेशों ने अपना स्वत्व घोषित किया और इंगलैण्ड के निवासियों को वहाँ जाकर बसने के आज्ञापत्र जारी किए। अँग्रेजों ने इस क्षेत्र में अपनी बस्तियाँ बसाईं जिन्होंने आगे चलकर उपनिवेशों का रूप ले लिया। ब्रिटेन-नरेश के द्वारा प्रदत्त अधिकार-पत्रों में इनकी शासन-प्रणाली आदि का उल्लेख होता था। धीरे-धीरे इन उपनिवेशों की जनसंख्या बढ़ती गई और इनमें स्थानीय शासन-संस्थाओं का विकास हुआ। सन् १६३४ में वर्जिनिया (Virginia) उपनिवेश में तथा सन् १६४३ में मैसाचूसेट्स (Massachusettes) में 'काउन्टियों' (Counties) की स्थापना हुई। सन् १६८६ में न्यूयार्क (New York) नगर एक चार्टर्ड म्यूनिसिपैलिटी बना।[1] सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक अँग्रेजों के उत्तरी अमेरिका में बारह उपनिवेश स्थापित हो गए थे। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अँग्रेजों के तेरहवें उपनिवेश की स्थापना हुई। इन्हीं तेरह उपनिवेशों ने अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इंगलैण्ड की दासता के विरुद्ध सफल विद्रोह कर संयुक्त राज्य अमेरिका का निर्माण किया।

उपनिवेशों के विभिन्न रूप

क्रांति के पूर्व के उत्तरी अमेरिका के ब्रिटिश उपनिवेशों को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त किया जाता है–(१) अधिकारपत्र-प्राप्त उपनिवेश (Chartered

---

[1] Ogg & Ray, *Introduction to American Government*, p. 9.

colonies), तथा शाही उपनिवेश (Crown colonies)। इनमें से द्वितीय वर्ग के उपनिवेशों को पुनः दो वर्गों में विभक्त किया जाता है—(१) स्वामी-प्रधान उपनिवेश (Proprietary colonies), तथा (२) पूर्ण-शाही उपनिवेश (Colonies under direct Royal Control)। यहाँ हम संक्षेप में इन उपनिवेशों की स्थिति का उल्लेख करेंगे।

अधिकारपत्र-प्राप्त उपनिवेश—इस वर्ग के उपनिवेशों को पर्याप्त मात्रा में स्वायत्तता प्राप्त थी। मुख्यतः यह उपनिवेश अधिकार-प्राप्त कंपनियों के द्वारा बसाये गए थे। इन उपनिवेशों के शासन ब्रिटेन के शासन के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त नहीं थे, क्योंकि वे कोई ऐसी विधि नहीं बना सकते थे जो मातृ-देश (इंगलैंड) की किसी विधि के प्रतिकूल हो, परन्तु इनकी शासन-व्यवस्था में इंगलैंड की सरकार बहुत कम हस्तक्षेप करती थी।

इस वर्ग के उपनिवेशों की शासन-प्रणाली का भी संक्षेप में उल्लेख कर देना असंगत न होगा। ऐसे प्रत्येक उपनिवेश में एक निर्वाचित असेंबली तथा एक वर्ष की कार्यावधि के लिए निर्वाचित एक गवर्नर होता था। गवर्नर के कार्यों पर नियंत्रण रखने के लिए असेंबली एक कौंसिल नियुक्त करती थी। गर्वनर को प्रत्येक महत्वपूर्ण प्रश्न पर कौंसिल का परामर्श लेना होता था तथा अपने निश्चयों पर उसका अनुमोदन प्राप्त करना होता था। प्रत्येक उपनिवेश में अनेक निम्न और मध्य-श्रेणी के न्यायालय होते थे। इन सब के शीर्ष पर एक उच्चतम न्यायालय होता था। परन्तु अधिकारपत्र-प्राप्त उपनिवेशों में न्यायालयों पर भी असेंबली का नियंत्रण रहता था। इस प्रकार निर्वाचित असेंबली ही इन उपनिवेशों के शासन का सर्वप्रधान अङ्ग थी।[1]

शाही उपनिवेश—क्रान्ति के समय अधिकारपत्र-प्राप्त उपनिवेशों की संख्या केवल दो थी तथा इनके नाम कानेक्टिकट (Connecticut), तथा रोड द्वीप (Rhode Island) थे। शेष सभी उपनिवेश शाही उपनिवेशों के दो

[1] "The judicial courts were also practically under the control of the assembly. In this way the elected assembly in fact dominated the governments of the colony."—Anderson, William, *American Government*, p. 14.

वर्गों में से किसी एक वर्ग में आते थे। इन दोनों वर्गों के उपनिवेशों की शासन-प्रणाली में कोई विशेष महत्वपूर्ण अन्तर नहीं था। प्रधान कार्यपालिका के रूप में दोनों प्रकार के उपनिवेशों में एक गवर्नर होता था। गवर्नर की नियुक्ति या तो स्वयं इंग्लैंड नरेश के द्वारा की जाती थी अथवा स्वामी (Proprietor) के द्वारा इंग्लैंड-नरेश की सहमति से की जाती थी। दोनों वर्गों के उपनिवेशों में एक निर्वाचित असेंबली होती थी। इस असेंबली के सदस्यों की निर्वाचन-विधि तथा उनके निर्वाचकों की अर्हताएँ आदि सब उपनिवेशों में समान नहीं थीं; परन्तु प्राय: इन सभी उपनिवेशों की असेंबलियों के सदस्य जनसाधारण के प्रतिनिधि न होकर सम्पन्न वर्ग के प्रतिनिधि होते थे। गवर्नर तथा असेंबली के अतिरिक्त लगभग सभी उपनिवेशों में एक कौंसिल होती थी। इस कौंसिल के सदस्यों की नियुक्ति की विधि भी विभिन्न उपनिवेशों में असमान थी। सामान्यतः इसके सदस्य या तो गवर्नर की सिफारिश पर इंग्लैंड-नरेश द्वारा नियुक्त किये जाते थे, या उपनिवेश के स्वामी के द्वारा। इन कौंसिलों के कृत्य मुख्यतः गवर्नर को मन्त्रणा देना तथा उसके महत्वपूर्ण कृत्यों पर नियंत्रण रखना था। मनरो ने इन कौंसिलों के कृत्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है—"वस्तुतः इसके मुख्य कृत्य कार्यपालिका-सम्बन्धी तथा न्यायिक थे, न कि विधायिका सम्बन्धी। हमारी राज्य-विधानमंडल के उच्च सदनों को कार्यपालिका-सम्बन्धी कृत्य सौंपने की पद्धति, उदाहरणार्थ गवर्नर के द्वारा की गई नियुक्तियों की पुष्टि करने की शक्ति, का आरम्भ यहीं से होता है।"[१]

शाही उपनिवेशों के गवर्नरों की स्थिति अत्यन्त विचित्र थी। जहाँ वे एक ओर मातृदेश (इंग्लैंड) के शासन के प्रतिनिधि माने जाते थे तथा उनका कार्य शाही हितों का संरक्षण करना माना जाता था, वहाँ दूसरी ओर वे उपनिवेश की कार्यपालिका के प्रधान भी होते थे। इस प्रकार उन्हें दो स्वामियों

[१] "Its principal functions, in fact, were executive and judicial rather than legislative. Here originated, by the way, our present-day practice of giving executive duties to the upper chamber of the state legislature—for example, the power to confirm the governor's appointments."—Munro, W. B., *The Government of United States*, p. 21.

की आज्ञाओं का पालन करना होता था—इङ्गलैंड की सरकार की आज्ञाओं का तथा उपनिवेश की असेंबली के अनुदेशों का। यदि वे असेंबली के अनुदेशों की अवहेलना करते थे तो असेंबली धन की स्वीकृति न दे कर उनका मार्ग अवरुद्ध कर सकती थी। धन-सम्बन्धी मामलों में गवर्नर असेंबली के किस प्रकार अधीन था यह इस तथ्य से भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि असेंबली की स्वीकृति के बिना वह अपना वेतन तक प्राप्त नहीं कर सकता था। स्पष्ट ही है कि ऐसी स्थिति में कोई भी व्यक्ति अपने दोनों स्वामियों के अनुदेशों और आज्ञाओं का पालन नहीं कर सकता। गवर्नर का पद शक्तियों से हीन नहीं था; वस्तुतः उन्हें अत्यन्त विस्तृत शक्तियाँ प्राप्त थीं, क्योंकि वे असेंबलियों के सदनों को आमन्त्रित तथा विसर्जित करते थे, महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियाँ करते थे, क्षमादान कर सकते थे, विधियों को प्रवर्तित करते थे तथा वैदेशिक सम्बन्धों में उपनिवेश का प्रतिनिधित्व करते थे। असेंबली द्वारा पारित विधेयकों आदि पर उन्हें अभिषेधाधिकार (Veto) भी प्राप्त था। परन्तु इतनी शक्तियों के होते हुए भी अपनी धन-सम्बन्धी असहायावस्था के कारण वे असेंबली के अनुदेश मानने के लिए बाध्य थे।

उपनिवेशों के शासनों की शक्तियाँ—उपनिवेशों की शासन-प्रणाली का परिचय प्राप्त कर लेने पर यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है कि इन उपनिवेशों की सरकारों को किस सीमा तक शक्तियाँ प्राप्त थीं। इस सम्बन्ध में इन तथ्यों को स्मरण रखना आवश्यक है कि एक तो सब उपनिवेशों के शासनों को समान शक्तियाँ प्राप्त नहीं थीं और दूसरे उनकी शक्तियाँ सुनिश्चित और निर्धारित नहीं थीं। यद्यपि अधिकारपत्र-प्राप्त उपनिवेशों की सरकारों की शक्तियों का कुछ उल्लेख उनके अधिकारपत्रों (चार्टरों) में था; परन्तु उससे स्थिति स्पष्ट नहीं होती। शाही उपनिवेशों की सरकारों की शक्तियों के विषय में तो निश्चित रूप से कुछ कहना और भी कठिन है। परन्तु व्यवहार में प्रायः सभी उपनिवेशों की सरकारें विस्तृत शक्तियों का प्रयोग करती थीं। उनकी शक्तियों पर एक प्रमुख प्रतिबन्ध यह था कि वे कोई ऐसी विधि या अध्यादेश जारी नहीं कर सकती थीं जो इङ्गलैंड की सरकार की किसी विधि के प्रतिकूल हो। परन्तु उपनिवेशों की सरकारें इस व्यवस्था से संतुष्ट नहीं थीं और उनकी शक्तियों के सम्बन्ध में उनका इङ्गलैंड की सरकार से विवाद चलता रहता था। इङ्गलैंड-

नरेश को यह अधिकार था कि वे उपनिवेशों के विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधि को अस्वीकृत कर सकते थे। इस शक्ति का समय-समय पर प्रयोग भी किया जाता था। परन्तु उपनिवेशों के विधानमंडल इस अस्वीकृति को प्रभाव-हीन करने की युक्ति जानते थे। वे विधियों को एक निश्चित अवधि के लिए ही पारित करते थे, जिससे इङ्गलैंड-नरेश की अस्वीकृति की घोषणा होते-होते उसकी अवधि स्वयं समाप्त होने को आ जाती थी। आवश्यकता पड़ने पर उसी विधि को किञ्चित परिवर्तित रूप में पुनः पारित कर दिया जाता था।

उपनिवेशों और मातृदेश के शासन के बीच सम्बन्ध—सन् १७७६ की क्रान्ति के पूर्व अमेरिकी उपनिवेशों की कोई केन्द्रीय सरकार नहीं थी। प्रत्येक उपनिवेश का इङ्गलैंड की सरकार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था। इस समय ब्रिटेन की शासन-प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। नरेश (King) की शक्तियाँ धीरे-धीरे पार्लमेंट के हाथ में आती जा रही थीं। इसी समय मंत्रि-मंडल का भी प्रादुर्भाव हो रहा था जो धीरे-धीरे सत्ता का वास्तविक अधिकारी बनता जा रहा था। औपचारिक रूप से अभी भी नरेश तथा प्रिवी कौंसिल ही में सत्ता निहित मानी जाती थी, पर वस्तुस्थिति कुछ दूसरी ही थी। अमेरिकी उपनिवेशों ने इङ्गलैंड-नरेश को अपना शासक मानने से कभी अस्वीकृति प्रकट नहीं की। परन्तु उन्होंने पार्लमेंट और मंत्रिमंडल की अधीनता स्वीकार करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। जेम्स विल्सन ने अमेरिकी उपनिवेशों और इङ्गलैंड के संबंधों पर प्रकाश डालते हुए लिखा—"ब्रिटिश साम्राज्य के सभी सदस्य सर्वथा मित्र राज्य हैं, जो एक दूसरे से पूर्णतः स्वतन्त्र हैं परन्तु एक ही संप्रभु-शक्ति के अधीन हैं।" प्रायः सभी उपनिवेशों के नेता इस उक्ति से सहमत थे। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी में अमेरिकी उपनिवेशों के मातृदेश के साथ सम्बन्धों के बारे में एक तीव्र विवाद उठ खड़ा हुआ।

जहाँ तक व्यावहारिक स्थिति का सम्बन्ध है, सभी उपनिवेश अपने विधान-मंडलों द्वारा पारित विधियाँ आदि प्रिवी कौंसिल को भेजा करते थे। इसी निकाय (body) को वे अपने आवेदन आदि भेजते थे। सन् १६९६ तक प्रिवी कौंसिल ही उपनिवेशों की विधियों तथा आवेदनों आदि पर विचार करती थी और सम्राट को उन पर विनिश्चय (decision) के सम्बन्ध में सुझाव देती थी। कामंस सभा (House of Commons) में अपनी अकार्यकुशलता के

संबंध में अत्यधिक आलोचना होने पर प्रिवी कौंसिल ने एक व्यापार समिति (Board of Trade) नियुक्त की, जिसका कार्य प्रिवी कौंसिल को औपनिवेशिक तथा वाणिज्य-सम्बन्धी मामलों पर मंत्रणा देना था। इस समिति के आठ वैतनिक सदस्य थे और अनेक प्रमुख अधिकारी इसके पदेन (ex-officio) सदस्य होते थे। व्यापार समिति ही उपनिवेशों को भेजे जाने वाले अनुदेशों आदि के प्रारूप प्रस्तुत करती थी। यदि किसी प्रश्न पर व्यापार समिति के विनिश्चय के सम्बन्ध में विवाद होता था तो प्रिवी कौंसिल स्वयं उस प्रश्न पर विचार करती थी तथा सम्राट् स्वयं उसकी बैठकों में भाग लेते थे।

यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में आवागमन और संचार की वैसी सुविधा और साधन न थे जैसे आजकल हैं। उस समय अमेरिकी उपनिवेशों और मातृदेश में केवल जलपोतों (ships) के द्वारा ही सम्बन्ध स्थापित होता था और इस प्रकार किसी प्रश्न पर स्पष्टीकरण मँगाने में ही कई मास का समय लग जाता था। यही कारण था कि उपनिवेशों के शासन पर्याप्त स्वायत्तता का उपभोग करते थे। जब ब्रिटेन की पार्लमेंट ने इन उपनिवेशों पर अपने अधिकार को प्रयुक्त करना चाहा तभी विद्रोह का बीज पड़ा। यद्यपि प्रारंभ में उपनिवेशों के नेता ब्रिटिश सम्राट् के प्रति अपनी भक्ति की घोषणा करते रहे; परन्तु जब ब्रिटिश सम्राट् ने पार्लमेंट का साथ दिया तो उन्होंने उसे संविधान और विधियों को भंग करने का दोषी घोषित कर दिया और विद्रोह कर दिया।

उपनिवेशों का संघ बनाने के प्रारंभिक प्रयत्न

अटलांटिक महासागर के तट पर बसे हुए तेरहों अमेरिकी उपनिवेशों को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न सर्वप्रथम सन् १७७१ में एक बड़ी सीमा तक सफल हुआ जब इन उपनिवेशों के प्रतिनिधियों ने अमेरिकी राज्यमंडल (American Confederation) का निर्माण किया; परन्तु उन्हें संगठित करने का यह प्रथम प्रयत्न नहीं था। इसके पूर्व भी इन उपनिवेशों को एक सूत्र में पिरोने के अनेक असफल प्रयत्न किए गए थे। यहाँ हम उनमें से कुछ अधिक महत्वपूर्ण प्रयत्नों पर विचार करेंगे। यहाँ यह प्रश्न भी उपस्थित हो सकता है कि इन उपनिवेशों के निवासियों में जाति, भाषा, धर्म आदि की दृष्टि से

अधिक विभिन्नता न होने पर भी उनके एक दूसरे के निकट आने में क्या कठिनाई थी। इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी की परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा। जेम्स बैक के अनुसार आवागमन की सुविधाओं की दृष्टि से इन उपनिवेशों के निवासी एक दूसरे से उतने ही पृथक थे जितने आज संसार के दूरतम स्थलों पर बसे हुए राष्ट्र। केवल कुछ ही व्यक्तियों को अपना उपनिवेश छोड़ कर दूसरे उपनिवेश की यात्रा करने का अवसर मिलता था तथा अधिकांश मनुष्य आजीवन अपने समूह को छोड़ कर नहीं जाते थे।[1] ऐसी परिस्थिति में जबकि विभिन्न उपनिवेशों के निवासियों के बीच पारस्परिक संबंधों का पूर्णतः अभाव था उनमें एक दूसरे के प्रति अविश्वास और संदेह का भाव होना आश्चर्यजनक नहीं है। जहाँ एक दूसरे के प्रति अविश्वास और संदेह होगा वहाँ मिलन का प्रश्न ही नहीं उठता।

न्यू इंग्लैंड राज्यमंडल—विभिन्न उपनिवेशों के द्वारा पारस्परिक सहयोग तथा संगठन का प्रथम उदाहरण न्यू इंग्लैंड क्षेत्र के चार उपनिवेशों द्वारा स्थापित मैत्री संघ के रूप में मिलता है। इस संघ का नाम 'न्यू इंग्लैंड राज्यमंडल' (New England Confederation) था और इसके सदस्य मैसाचूसेट्स, प्लाईमाउथ, कानेक्टिकट तथा न्यू हैवन नामक उपनिवेश थे। इस मैत्री संघ के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य अमेरिका के आदिवासियों के आक्रमणों से अपनी रक्षा करना था। पारस्परिक मंत्रणा तथा सहयोग के लिए प्रति वर्ष चारों उपनिवेशों के

---

[1] "......the colonists were as widely separated from each other, measured by the facilities of locomotion, as are the most remote nations of the world today. Only a few men ever found occasion to leave their colony to journey to another and most men never left, from birth to death, the community in which they lived. Outside of the few scattered communities in the different colonies there was an almost unbroken wilderness, with few wagon roads and in places only a bridle path. The only methods of communication were the letters and still fewer newspapers which were carrried by post riders often through an almost trackless wilderness."—James Beck, *The Constitution of the United States*, p. 34.

प्रतिनिधियों के एक सम्मेलन का आयोजन किया गया था जिसमें प्रत्येक उपनिवेश को दो आयुक्त (Commissioners) नियुक्त करने का अधिकार दिया गया था। आवश्यकता पड़ने पर वार्षिक सम्मेलन के अतिरिक्त विशेष सम्मेलन भी किये जा सकते थे। सम्मेलन में किसी विषय पर तभी कोई निर्णय किया जा सकता था जब छः आयुक्तों में मतैक्य हो। यह मैत्री संघ आदिवासियों के आक्रमणों का भय समाप्त होते ही सन् १६८४ में विघटित हो गया।

न्यू इंग्लैंड राज्यमंडल के विघटन के समय से अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा तक उपनिवेशों को एक सूत्र में पिरोने के लिए जो योजनाएँ और प्रस्ताव प्रस्तुत किये गए उनमें दो योजनाएँ अधिक महत्वपूर्ण हैं। ये योजनाएँ 'पैन प्रस्ताव' (Penn's Proposals) तथा 'अल्बानी योजना' (Albany Plan) के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रथम योजना, जैसा कि उसके नाम से ही बोध होता है, अपने प्रस्तावक विलियम पैन (William Penn) के नाम से संबद्ध है, और सन् १६९७ में प्रस्तुत की गई थी। द्वितीय योजना सन् १७५४ में अल्बानी कांग्रेस में बैंजमिन फ्रैंकलिन (Benjamin Franklin) के द्वारा प्रस्तुत की गई थी।[1]

पैन योजना—सन् १६९७ में प्रस्तुत की गई पेन योजना में इंग्लैंड नरेश के द्वारा नियुक्त एक आयुक्त (Commissioners) के अधीन इन उपनिवेशों का एक संघ बनाने का प्रस्ताव था। योजना में एक कांग्रेस की स्थापना का भी प्रस्ताव था जिसमें प्रत्येक उपनिवेश को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होता। कांग्रेस को ऐसे प्रश्नों और समस्याओं पर विचार और विनिश्चय करने का अधिकार दिया गया था जिन पर उपनिवेशों में परस्पर विवाद उठ खड़े होते थे। कांग्रेस उपनिवेशों के सामूहिक हित से संबंधित प्रश्नों पर भी विचार और विनिश्चय कर सकती। परन्तु इस समय तक उपनिवेशों के निवासियों में सम्मेलन की तीव्र इच्छा न थी; उनके पारस्परिक हित भी विरोधी थे; इसी कारण पैन योजना कागज़ पर ही अंकित रह गई।

---

[1]इन योजनाओं के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए देखिए: Commagar, *Documents of American History*, तथा Egerton, H.E., *Federations and Unions within the British Empire.*

अल्बानी योजना—अमेरिकी उपनिवेशों का एक संघ बनाने के लिए न केवल इन उपनिवेशों के प्रबुद्ध नेता ही प्रयत्नशील थे, वरन् उसमें इंग्लैंड की सरकार की भी रुचि थी। इसका कारण यह था कि इन उपनिवेशों के छिन्न-भिन्न तथा असंगठित होने के कारण उसे नीग्रो लोगों तथा कनाडा के फ्रांसीसियों से सदैव भय बना रहता था। यदि यह उपनिवेश एक सूत्र में बँध जाते तो इनके पारस्परिक विवाद भी बहुत कम हो जाते और वाह्य आक्रमणों के विरुद्ध प्रतिरक्षा की समस्या भी एक बड़ी सीमा तक हल हो जाती। सन् १७५४ में इंग्लैंड की सरकार के सुझाव पर अल्बानी (Albany) में इन उपनिवेशों के प्रतिनिधियों की एक कांग्रेस हुई। इस कांग्रेस में बेंजमिन फ्रैंकलिन (Bengamin Franklin) ने एक योजना प्रस्तुत की जो कि कुछ संशोधित अवस्था में कांग्रेस के द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकृत कर ली गई। यही योजना अल्बानी योजना (Albany Plan) के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना में एक महा-परिषद् (Grand Council) स्थापित करने का प्रस्ताव था जिसका निर्माण प्रत्येक उपनिवेश से एक प्रतिनिधि के आधार पर होता। योजना में प्रतिनिधियों के उपनिवेशों की असेंबलियों द्वारा निर्वाचन की व्यवस्था थी। इस महा-परिषद् का कार्य सामूहिक प्रतिरक्षा की समस्या पर विचार करना, तथा यह निश्चित करना कि प्रत्येक उपनिवेश कितने सैनिक और कितना धन दे, निश्चित किया गया था। उपनिवेशों की सामूहिक सेना के संचालन तथा एकत्र धन को व्यय करने का कार्य इंग्लैंड-नरेश के द्वारा नियुक्त एक प्रेसिडेंट जनरल (President General) को दिए जाने की व्यवस्था थी। यद्यपि बेंजमिन फ्रैंकलिन द्वारा प्रस्तुत योजना अल्बानी कांग्रेस के द्वारा अंगीकृत कर ली गई, परन्तु उसे कार्यान्वित न किया जा सका। उसे इंग्लैंड की सरकार और उपनिवेशों के विधान-मंडलों दोनों ने ही अस्वीकृत कर दिया।[1] यद्यपि बेंजमिन फ्रैंकलिन की योजना के अस्वीकृत हो जाने के कारण अल्बानी कांग्रेस का कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं हुआ, परन्तु मनरो

---

[1] बाद में बेंजामिन फ्रैंकलिन ने यह दावा किया था कि यदि उनकी अल्बानी योजना अंगीकृत कर ली जाती तो अमेरिकी उपनिवेशों ने ब्रिटिश साम्राज्य से कभी भी संबंध विच्छेद न किया होता। (देखिए : James Beck, *Op. cit*, p. 33)

के मतानुसार क्रांतिकालीन प्रथम महाद्वीपीय कांग्रेस का मार्ग प्रशस्त करने में वह अवश्य कुछ सहायक हुई ।[१]

न्यूयार्क सम्मेलन—अल्बानी कांग्रेस के पश्चात् सन् १७७५ में न्यूयार्क नगर में पुनः उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें नौ उपनिवेशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया और मुद्रांक अधिनियम (Stamp Act) आदि पर विचार किया गया। परन्तु इस सम्मेलन में भी कोई महत्वपूर्ण पग न उठाया जा सका।

स्वतंत्रता की घोषणा तथा क्रांति

क्रांति के पूर्व की घटनाएँ—ऊपर यह उल्लेख किया जा चुका है कि ब्रिटिश पार्लमेंट का अधिकार मानना उपनिवेशों के नेताओं ने कभी स्वीकार नहीं किया और इसी कारण वे इंगलैंड-नरेश के भी विरोधी हो गए थे। सन् १७६३ में जार्ज ग्रेनविल ब्रिटेन के प्रधान मंत्री बने। उन्होंने अनेक उपायों से अमेरिकी उपनिवेशों से ब्रिटेन को होने वाली आय को बढ़ाने का प्रयत्न किया। इसी उद्देश्य से ब्रिटिश पार्लमेंट में मुद्रांक अधिनियम (Stamp Act) प्रस्तुत किया गया, जिसे उसने सन् १७६५ में पारित कर दिया। इस अधिनियम के द्वारा समस्त कानूनी कागजों पर मुद्रांकों का व्यवहार अनिवार्य कर दिया गया। इस कर से अमेरिकी उपनिवेशों में अत्यधिक उत्तेजना फैली। उपनिवेशों के नेताओं ने यह घोषणा की कि ब्रिटिश पार्लमेंट को अमेरिकी उपनिवेशों पर कोई कर लगाने का अधिकार नहीं है, और उन्होंने 'प्रतिनिधित्व के बिना कर नहीं'[२] का नारा लगाया जो थोड़े ही समय में बहुत जनप्रिय हो गया।[3] मुद्रांक कर को वसूल करने के लिए उपनिवेशवासियों पर जैसे-जैसे कड़ाई होने लगी, वैसे ही वैसे ब्रिटेन के विरुद्ध जनता की भावना जाग्रत होने लगी। यद्यपि इस

[१] Munro, W. B., *op cit.*, p. 25.

[२] 'No taxation without representation.'

[3] मुद्रांक अधिनियम का विरोध करने के लिए सन् १७६५ में न्यूयार्क नगर में नौ उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ था, जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है।

सर्वव्यापी विरोध के कारण सन् १७६६ में मुद्रांक अधिनियम रद्द कर दिया गया; परन्तु ब्रिटिश सरकार ने यह दिखाने के लिए कि पार्लमेंट को उपनिवेशों पर कर लगाने का अधिकार है, आयात शुल्क अधिनियम (Import Duties Act) नामक एक अन्य अधिनियम पारित कर दिया। इस कारण उपनिवेश-वासियों का असंतोष कम होने के स्थान पर और अधिक बढ़ गया।

उपरोक्त कारणों से जब कि अमेरिकी उपनिवेशों के निवासियों में असंतोष की ज्वाला तीव्र गति से फैल रही थी, उसी समय एक ऐसी घटना घटी जिसने इस अग्नि को बढ़ाने में घृत का सा कार्य किया। सन् १७७३ में ब्रिटिश पार्लमेंट ने एक नवीन चाय अधिनियम (Tea Act) पारित किया। इस अधिनियम के विरोध में मैसाचूसेट्स उपनिवेश में स्थित बोस्टन नगर (Boston City) में कुछ प्रदर्शन हुए जिन्होंने बाद में उपद्रव का रूप ले लिया। इस उपद्रव से अंगरेज सशंकित हो उठे और सन् १७७४ में पार्लमेंट ने मैसाचूसेट्स शासन अधिनियम (Massachusetts Government Act) पारित किया, जिसके द्वारा इस उपनिवेश को ब्रिटिश-सम्राट द्वारा प्रदत्त अधिकार-पत्र (चार्टर) पार्लमेंट ने निलंबित (suspend) कर दिया। इस प्रकार मैसाचूसेट्स अधिकार पत्र-प्राप्त उपनिवेशों की श्रेणी से शाही उपनिवेशों की श्रेणी में आ गया। उपनिवेश में एक अँग्रेज गवर्नर तथा प्रचुर मात्रा में सेना भेजी गई। इस घटना से समस्त अमेरिकी उपनिवेशों को अपना भविष्य मेघाच्छादित दीखने लगा। उनके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि यदि आज उनमें से एक की स्वाधीनता और अधिकारों का हनन हो रहा है तो क्या कल उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार नहीं किया जाएगा। इसी भय ने उन्हें संगठित होकर ब्रिटिश सरकार का विरोध करने की प्रेरणा दी।

क्रांति के वास्तविक कारण—यद्यपि यह कहना गलत होगा कि अमेरिकी क्रांति किसी एक कारण का परिणाम थी, क्योंकि उसके लिए न्यूनाधिक मात्रा में अनेक तत्त्वों को उत्तरदायी माना जा सकता है; परन्तु अधिकांश विद्वानों का यही मत है कि क्रांति के कारण आर्थिक थे, राजनीतिक नहीं। क्रांति इसलिए नहीं हुई कि उपनिवेश स्वाधीनता या स्वायत्तता चाहते थे, वरन् इसलिए कि उपनिवेशों की जनता किन्हीं नए करों अथवा व्यापार संबंधी किन्हीं नए शुल्कों

को सहन करने के लिए प्रस्तुत न थी।[1] स्वयं एक अमेरिकी लेखक के कथनानुसार क्रांति के समय अमेरिका में ऐसे रूढ़िवादी अमरीकनों का अभाव नहीं था जिन्हें ग्रेट ब्रिटेन से पूर्व स्थापित व्यापारिक, राजनीतिक तथा वैयक्तिक संबंध विच्छेद करने में दुःख का अनुभव होता था।[2] उनका मत है कि उपनिवेश सन् १७६३ से अनजाने में ही स्वतंत्रता की ओर बढ़ रहे थे और उन्होंने स्वतंत्रता के प्रश्न का उस समय अत्यन्त अनमने भाव से सामना किया जब कि उसका निश्चय करना आवश्यक हो गया।[3] परन्तु एक बार स्वतंत्रता-संग्राम आरम्भ हो जाने पर उपनिवेशवासियों को अपने सामने अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने का अवसर दिखाई दिया और उसने उन्हें इंगलैंड की दासता से मुक्त होने के लिए प्रेरित किया।

प्रथम् तथा द्वितीय महाद्वीपीय कांग्रेस—सन् १७७४ के उत्तरार्द्ध में उपनिवेशों का एक सम्मेलन फिलाडेल्फिया नामक नगर में हुआ, जिसमें जार्जिया (Georgia) के अतिरिक्त शेष सभी उपनिवेशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यह सम्मेलन प्रथम महाद्वीपीय कांग्रेस (First Continental Congress) के नाम से विख्यात है। इस सम्मेलन में आए हुए प्रतिनिधि भिन्न-भिन्न रूप से चुने गए थे। सम्मेलन ने इंगलैंड की सरकार के सम्मुख अनेक माँगें प्रस्तुत कीं और तेरह विधियों का अंत करने का अनुरोध किया। इसी कांग्रेस में उप-

---

[1] "It should be pointed out, however, that there was no general dissatisfaction with the type of government which existed in the various colonies. The revolution did not come because the colonies wanted new charters or elected governers or manhood suffrage. Its underlying causes were economic; they concerned questions of trade and taxation."—Munro, *op. cit.*, p. 25.

[2] Anderson, William, *American Government*, p. 28.

[3] "The colonies drifted more or less unconsciously toward independence after 1763, and then faced it very reluctantly when the decision for it had to be made."—*Ibid.*, p. 28.

निवेशों के बीच पारस्परिक सहयोग स्थापित करने तथा अगले वर्ष पुनः एक सम्मेलन बुलाये जाने का निश्चय किया गया।[1]

द्वितीय कांग्रेस का अधिवेशन आरम्भ होने के पूर्व ही मैसाचूसेट्स उपनिवेश के लेक्सिंगटन (Lexington) नगर में ब्रिटिश और अमेरिकी सेनाओं में युद्ध छिड़ गया। द्वितीय महाद्वीपीय कांग्रेस ने मैसाचूसेट्स की सेनाओं का साथ देने का निश्चय किया और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समस्त उपनिवेशों से सैनिक और धन देने की माँग की। इसी कांग्रेस ने जार्ज वाशिंगटन (George Washington) को अमेरिकी सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया। कांग्रेस ने सेना की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नोटों को चलाने का भी निश्चय किया। यह सब करने की शक्ति कांग्रेस को वैध रूप से कभी नहीं दी गई थीं; परन्तु जनता की मौन स्वीकृति ने उसके इन अवैध कृत्यों को भी वैध कर दिया।

युद्ध तथा स्वतंत्रता की घोषणा—अप्रैल, १७७५ में लैक्सिंगटन नामक स्थान से अमेरिका उपनिवेशों की स्वतंत्रता का जो संग्राम प्रारम्भ हुआ था, वह लगभग सात वर्ष तक चलता रहा। यद्यपि सन् १७७५ का अंत होते-होते अधिकांश उपनिवेशों के गवर्नर अपना स्थान रिक्त कर सुरक्षा के लिए भाग गए थे और द्रुत गति से जनप्रिय विधानमंडलों या सम्मेलनों (Conventions) की स्थापना हो रही थी, परन्तु लोगों को यह विश्वास न होता था कि अंग्रेजी साम्राज्य की विशाल सामर्थ्य के सामने उपनिवेशवासियों की मुट्ठी भर सेना अधिक समय तक टिक सकेगी। अमेरिकी स्वातंत्र्य-समर को सफल बनाने का श्रेय मुख्यतः दो नेताओं को दिया जाता है। ये हैं जार्ज वाशिंगटन तथा बेंजमिन फ्रैंकलिन। जार्ज वाशिंगटन ने उपनिवेशों की सेनाओं का सफल नेतृत्व कर ब्रिटिश सेनाओं को पराजित किया, और बेंजमिन फ्रैंकलिन ने यूरोपीय देशों में घूम-घूम कर अमेरिकी स्वतंत्रता-संग्राम के लिए सहानुभूति जाग्रत की तथा

---

[1] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस कांग्रेस में भी स्वतंत्रता की माँग नहीं की गई थी; केवल उपनिवेशों की जनता के "सांविधानिक अधिकारों" की रक्षा का प्रश्न उठाया गया था।

सहायता प्राप्त की। फ्रांस में विशेष रूप से अमेरिकी क्रांति का स्वागत हुआ और बाद में फ्रांस के क्रांतिकारी शासन ने अमेरिका की अस्थायी क्रांतिकारी सरकार को मान्यता प्रदान की।

इसी बीच सन् १७७६ के पूर्वार्द्ध में फिलाडेल्फिया में महाद्वीपीय कांग्रेस हुई। जून में वर्जिनिया उपनिवेश के प्रतिनिधि रिचार्ड हेनरी ली (Richard Henry Lee) ने यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि 'यह उपनिवेश स्वतंत्र तथा स्वाधीन राज्य हैं और अपने अधिकार से उन्हें ऐसा होना चाहिए। वे ब्रिटिश राजमुकुट के प्रति भक्ति से पूर्णतः युक्त हैं तथा उनके तथा ग्रेट ब्रिटेन के मध्य सभी राजनीतिक संबंधों का पूर्णतः अंत होना है और होना चाहिए।'[१] इस प्रस्ताव को कांग्रेस ने २ जुलाई, १७७६ को पारित कर दिया और इस प्रकार उस विचित्र स्थिति का अंत हुआ जिसमें उपनिवेश ब्रिटिश-सम्राट के प्रति भक्ति रखते हुए भी उसके विरुद्ध युद्ध कर रहे थे। इस प्रस्ताव के पारित किये जाने के दो ही दिवस बाद कांग्रेस ने विश्व-विख्यात 'स्वतंत्रता की घोषणा' (Declaration of Independence) अंगीकृत, की जिसमें प्रथम बार उपनिवेशों को 'संयुक्त राज्य अमेरिका' (The United States of America) कहा गया। 'स्वतंत्रता की घोषणा' का प्रारूप टॉमस जैफर्सन ने तैयार किया था और इसकी मुख्य बातें निम्नलिखित थीं :—

१. सभी मनुष्य समान हैं तथा उन्हें कुछ अनुल्लंघनीय अधिकार प्राप्त हैं।

२. शासन का स्रोत जनता की इच्छा ही होना चाहिए और यदि ऐसा नहीं है तो जनता को उसका अंत करने का अधिकार है।

३. ग्रेट-ब्रिटेन के वर्तमान नरेश के शासन का इतिहास अमेरिकी राज्यों के ऊपर पूर्ण निरंकुश शासन स्थापित करने के प्रयत्नों का इतिहास है। अतएव इन राज्यों की स्वाधीनता और स्वतंत्रता की घोषणा की जाती है।

---

[१] "That these united colonies are, and of right ought to be, free and independent states, that they are absolved from all allegiance to the British crown, and that all political connection between them and the state of Great Britain is, and ought to be, totally dissolved."—Becker, *The Declaration of Independence*, p. 3.

४. इस घोषणा के समर्थन में हम सब (अमेरिकी राज्यों के प्रतिनिधि) ईश्वर के संरक्षण में पूर्णतया विश्वास रखते हुए, एक दूसरे से अपने प्राण-धन और पवित्र मान के बलिदान के लिए वचनबद्ध होते हैं।

राज्यमंडल का निर्माण—कांग्रेस ने क्रांति आरंभ होने के पूर्व तथा उसके पश्चात् जो अनेक महत्वपूर्ण पग उठाए, उन्हें उठाने का उसे कोई वैध अधिकार प्राप्त नहीं था। इसीलिए स्वतंत्रता की घोषणा के अंगीकृत किए जाने के पश्चात् यह आवश्यकता अनुभव की गई कि कांग्रेस की शक्तियों तथा कृत्यों का एक लेखपत्र में उल्लेख कर स्पष्टीकरण कर दिया जाए। नवम्बर १७७७ में महाद्वीपीय कांग्रेस ने अमेरिकी राज्यों का एक राज्यमंडल बनाने की उस योजना को अंगीकृत कर लिया जो 'राज्यमंडल तथा स्थायी संघ के अनुच्छेद'[1] के नाम से प्रसिद्ध है। संक्षेप में हम इसे अमेरिकी राज्यमंडल का विधान कह सकते हैं। यह विधान कांग्रेस द्वारा नियुक्त की गई एक समिति ने तैयार किया था और अङ्गीकृत होने के पश्चात् इसे विभिन्न राज्यों के पास अनुसमर्थन (ratification) के लिए भेजा गया। सन् १७७८ की जुलाई तक इसे आठ राज्यों के विधान मंडलों ने अनुसमर्थित कर दिया और उसी समय से यह लागू हो गया। इस विधान को सबसे बाद में अनुसमर्थित करने वाला राज्य मेरीलैंड (Maryland) था, जिसके विधान मंडल ने इसे प्रथम् मार्च, १७८१ को अनुसमर्थित किया। अमेरिकी राज्यमंडल के निर्माण का इस कारण बहुत महत्व है कि अमेरिकी राष्ट्रीयता का जन्म यहीं होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका का वर्तमान संविधान इसी राज्यमंडल के विधान से विकसित हुआ है।

राज्यमंडल के विधान के प्रमुख उपबन्ध

राज्यमंडल के विधान के जिस औपचारिक नाम का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, वह पर्याप्त महत्वपूर्ण है। उससे हमें विदित होता है कि राज्यमंडल का निर्माण किसी अस्थायी या सीमित उद्देश्य से नहीं किया गया था, वरन् प्रारम्भ में ही उसे तेरहों अमेरिकी राज्यों का स्थायी संघ (Perpetual Union) घोषित किया गया था। परन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना

[1] Articles of Confederation and Perpetual Union.

आवश्यक है कि विभिन्न राज्यों की जनता तथा नेताओं में एक सुदृढ़ तथा शक्तिशाली संघ बनाने के लिए तनिक भी उत्साह नहीं था। विधान के दूसरे अनुच्छेद में कहा गया है—"प्रत्येक राज्य अपनी संप्रभुता, स्वाधीनता, तथा स्वतन्त्रता तथा प्रत्येक शक्ति, क्षेत्राधिकार व अधिकार, जो कि इस विधान के द्वारा कांग्रेस में एकत्रित संयुक्त राज्यों को स्पष्टतया प्रत्यायोजित नहीं किया गया है, अपने पास रखता है।[१] यह अनुच्छेद पूर्णरूप से स्पष्ट कर देता है कि राज्य अपने अधिकारों की रक्षा के लिए बहुत सतर्क थे।

राज्यमंडल की एकमात्र केन्द्रीय शासन संस्था कांग्रेस थी। कांग्रेस में प्रत्येक राज्य को दो से लेकर सात तक प्रतिनिधि (delegate) भेजने का अधिकार था, परन्तु प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि-मंडल को केवल एक ही मत देने का अधिकार दिया गया था। इस प्रकार विभिन्न राज्यों में क्षेत्रफल तथा जनसंख्या की दृष्टि से महान् अन्तर होने पर भी उनकी समानता को वैधानिक मान्यता प्रदान की गई थी। जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, कांग्रेस की शक्तियों का राज्यमंडल के विधान में स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया था। यह शक्तियाँ अति अल्प तथा अत्यन्त सीमित थीं। कांग्रेस को युद्ध घोषित करने, शान्ति स्थापित करने, विदेशों से संधियाँ तथा मित्रता (alliances) करने, विदेशों में संयुक्त राज्य के दौतिक प्रतिनिधि भेजने तथा विदेशों के दौतिक प्रतिनिधियों को स्वीकृत करने का "पूर्ण एवं अनन्य अधिकार" प्रदान किया गया था। कांग्रेस को युद्धजनित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न राज्यों से धन-जन की सहायता माँगने का भी अधिकार दिया गया था, परन्तु वह उन्हें सहायता देने के लिए विवश नहीं कर सकती थी।[२] कांग्रेस को मुद्रा चलाने (Coinage), तोल और ताप के मान निश्चित करने, साख-पत्र

---

[१] "Each state retains its sovereignty,freedom and independence and every power, jurisdiction and right, which is not by this confedration expressly delegated to the United States, in Congress-assembled,"—Article II of the *Articles of Confederation.*

[२] Munro, W. B., *op .cit.*, p, 30.

(Bills of Credit) जारी करने, ऋण लेने तथा डाकखानों की व्यवस्था करने का अधिकार भी प्रदान किया गया था। कांग्रेस को स्थल तथा जलसेना का परिमाण निश्चित करने, तथा जलसेना के सम्पूर्ण और स्थल सेना के मुख्य अधिकारियों की नियुक्तियाँ करने तथा इन दोनों सेनाओं के सम्बन्ध में नियम बनाने की शक्ति दी गई थी। कांग्रेस अमेरिका के आदिवासियों से व्यापार तथा अन्य सम्बन्धों को व्यवस्थित कर सकती थी। कांग्रेस में किसी विषय पर विनिश्चय (decision) किये जाने के लिए नौ मतों, अर्थात् नौ राज्यों के प्रतिनिधि-मंडलों, का प्रस्ताव के पक्ष में होना आवश्यक था।

कांग्रेस की शक्तियों पर एक सामान्य दृष्टि डालने से ही हमें कुछ ऐसी महत्वपूर्ण शक्तियों का अभाव खटकता है जो सामान्यतः वर्तमान सभी राज्यों में केन्द्रीय शासन को प्राप्त हैं। ये शक्तियाँ हैं—कर लगाने की शक्ति, व्यापार को नियमित करने की शक्ति, विभिन्न राज्यों के पारस्परिक विवादों को निपटाने की शक्ति, आदि। यद्यपि ब्रिटिश पार्लमेंट को विभिन्न उपनिवेशों के बीच व्यापार का नियमन करने का अधिकार प्राप्त था, परन्तु कांग्रेस को इस अधिकार से वंचित ही रखा गया। इसके अतिरिक्त कांग्रेस को सभी प्रकार की कार्यपालिका शक्तियों से भी वंचित रखा गया था।

कांग्रेस के सत्रावकाश काल (recess) में उसके विनिश्चयों को क्रियान्वित कराने के लिए विधान में तेरह सदस्यों की एक राज्य-समिति (Committee of States) की व्यवस्था थी, जिसमें प्रत्येक राज्य का एक प्रतिनिधि (delegate) होता था। इसका क्षेत्राधिकार कांग्रेस के कार्य तक ही सीमित था, तथा नीति-सम्बन्धी कोई निर्णय नहीं कर सकती थी। इसी निकाय (body) को हम राज्यमंडल का कार्यांग (executive organ) कह सकते हैं। विधान में किसी स्थायी न्यायांग (judicial organ) की व्यवस्था न थी, परन्तु कांग्रेस को समय-समय पर विभिन्न राज्यों के बीच उठ खड़े होने वाले विवादों का निर्णय करने के लिए अस्थायी आयोगों (Commissions) को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया था। इन आयोगों की शक्ति भी इनकी जनक-संस्था की भाँति ही सीमित होती थी।

राज्यमंडल-काल में संयुक्त राज्य की वास्तविक स्थिति

अमेरिकी राज्यमंडल का निर्माण मुख्यतः ब्रिटेन के साथ चलने वाले युद्ध के द्वारा उत्पन्न हुई परिस्थितियों के कारण हुआ था। सन् १७८३ में ब्रिटेन और अमेरिका में शान्ति-संधि हो गई और ब्रिटेन ने संयुक्त राज्यों की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी। इस प्रकार उस आवश्यकता का अन्त हो गया जिसके कारण राज्यमंडल का प्रादुर्भाव हुआ था। विभिन्न राज्य केन्द्रीय शासन की ओर से उदासीन हो गए और उन्होंने कांग्रेस में अपने प्रतिनिधि तक भेजना बन्द कर दिया। कभी-कभी निश्चित दिन से सप्ताहों तक, यहाँ तक कि महीनों तक, कांग्रेस में गणपूर्ति (quorum) ही नहीं होती थी। लार्ड ब्राइस ने कांग्रेस की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि वह सर्वथा शक्तिहीन थी तथा उसे न तो सम्मान ही प्राप्त था और न उसकी आज्ञा ही मानी जाती थी।[1] उनके इस कथन की पुष्टि अन्य लेखकों के मत से भी होती है। उदाहरणार्थ, विल्सन ने; जो अमेरिका के राष्ट्रपति भी रहे थे, लिखा है— "कार्यपालिका शक्ति से वंचित होने के कारण कांग्रेस विवश और उपेक्षिता थी।...सबसे बड़ी बात यह थी कि शासन की केवल एक शक्ति कांग्रेस के पास रही और वह थी मंत्रणा देना। कांग्रेस राज्यों से धन की माँग कर सकती थी पर उसे देने के लिए उन्हें विवश नहीं कर सकती थी; वह उनसे सैनिक भेजने को कह सकती थी, लेकिन वे न भेजें तो असहाय थी; सन्धि करने की शक्ति उसे प्राप्त थी, पर संधि को क्रियान्वित करने का कार्य राज्यों का था; ऋण लेने पर उसकी अदायगी के लिए कांग्रेस को राज्यों का मुख देखना पड़ता था। कांग्रेस एक ऐसी संस्था थी जिसके अधिकार तो लम्बे-चौड़े थे, लेकिन शक्तियाँ शून्य थीं। 'कांग्रेस में सम्मिलित संयुक्त राज्य' यह नाम मानों एक परामर्शदाता मंडल का-सा था।"

केन्द्रीय शासन की इस दुर्बलावस्था के कारण जो 'परिणाम उपस्थित हुए उनका कुछ आभास हमें मनरो के निम्न कथन से मिलता है—"युद्ध के कारण मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो गई थी और कीमतें अत्यधिक बढ़ गई थीं।

[1] "Congress was impotent, and commanded respect as little as obedience."—Bryce, *American Commonwealth*, Vol. I, p. 21.

प्रत्येक व्यक्ति जीवन-निर्वाह के साधनों की महँगाई का दुखना रोता था, परंतु उसे कम करने की शक्ति किसी में न थी।...कृषक कष्ट सहते थे और व्यापारियों को दोष देते थे, व्यापारियों का दिवाला निकलने की स्थिति आ गई थी और वे राजनीतिज्ञों को दोष देते थे; राजनीतिज्ञ आडम्बरपूर्ण बातें करते थे और धनिकों को दोष देते थे। इसी बीच प्रत्येक राज्य की जनता अपने पड़ोसियों के विरुद्ध आयात-निर्यात-करों (tariffs) की माँग कर रही थी और चारों ओर आर्थिक अव्यवस्था की ही प्रधानता थी। अतिवादी तत्व इन बिगड़ी हुई परिस्थितियों का लाभ उठाने के लिए प्रयत्न आरम्भ कर रहे थे। भाषणों और पुस्तिकाओं के द्वारा उन्होंने एक वर्ग के लोगों को दूसरे वर्ग के लोगों के विरुद्ध तथा एक राज्य को दूसरे के विरुद्ध उभाड़ने का कार्य अपने हाथ में ले रखा था।"[१] जार्ज वाशिंगटन ने इस स्थिति को अति संक्षेप में 'अराजकता' की स्थिति के समरूप बताया था।[२] सैनिक उचित वेतनादि न पाने के कारण असंतुष्ट थे और विद्रोह के प्रयत्न किये जा रहे थे। एक प्रसिद्ध लेखक ने इसे 'उषाकाल के पूर्व का घोर अंधकारपूर्ण समय' कह कर संबोधित किया है।[3] अलेक्जेंडर

---

[१] "The war had inflated the currency and prices had gone sky-high. Everybody cried out that the cost of living was excessive, but there was no one with power to reduce it. ...The farmers suffered and blamed the merchants; the merchants went bankrupt and blamed the politicians; the politicians talked claptrap and blamed the propertied classes. Meanwhile the people of each state clamoured for tariff against its neighbours and there was general economic confusion. Radicals began to fish in troubled waters. With pamphlets and speeches they set themselves to the work of stirring up class against class and state against state." Munro, *op. cit.*, p, 31-32.

[२] Washington, as quoted by Bryce in his *American Commonwealth*, Vol. I, p. 20.

[3] "...the darkest hour before the dawn."--Beck, *op,. cit.* p.49.

तत्कालीन परिस्थिति का सुन्दर चित्रण हमें जार्ज वाशिंगटन के उन पत्रों में मिलता है जो उन्होंने अत्यन्त निराश होकर अपने समकालीनों को लिखे थे। इनमें से कुछ को जेम्स बैक ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक में उद्धृत किया है।

हैमिल्टन के शब्दों में देश लगभग राष्ट्रीय अपमान की अन्तिम स्थिति तक पहुँच गया था।[१]

सांविधानिक सम्मेलन का आमंत्रण

स्पष्ट ही है कि ऐसी स्थिति अधिक समय तक नहीं बनी रह सकती। सर्वप्रथम राज्यमंडल के विधान (Articles of Confederation) में संशोधन कर स्थिति को सुधारने का यत्न किया गया। परन्तु इस प्रयत्न में अधिक सफलता न मिली। जब स्थिति असह्य हो गई तब सन् १७८६ में राज्यमंडल की कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें कहा गया था कि अब एक ऐसी संकटपूर्ण स्थिति आ गई है जब कि संयुक्त राज्य के लोगों के लिए यह निश्चय करना आवश्यक हो गया है कि वे या तो राज्यमंडल के शासन को, जो कि उन्हीं के द्वारा तथा उन्हीं के हित के लिए स्थापित किया गया है, सशक्त बनाएँ अथवा उनके अस्तित्व को ही विलुप्त होने देने को प्रस्तुत हो जायें और उन समस्त महान् अधिकारों को संकट में डाल दें, जिन्हें उन्होंने इतना कठिन और सम्मानपूर्ण संघर्ष कर के प्राप्त किया है। इसी समय मेरीलैंड और वर्जिनिया नामक राज्य परस्पर व्यापारादि से सम्बन्धित प्रश्नों पर एक समझौता करने के लिए प्रयत्नशील थे। जार्ज वाशिंगटन स्वयं उन्हें ऐसे समझौते के लिए प्रेरित कर रहे थे। बाद में पेनसिलवानिया नामक राज्य को भी इस समझौते की बातचीत के लिए आमंत्रित किया गया। जब प्रस्तावित समझौते के प्रारूप पर वर्जिनिया का विधानमंडल विचार कर रहा था तब जेम्स मेडीसन (James Madison) ने यह प्रस्ताव रखा कि न केवल इन्हीं राज्यों में ऐसा समझौता हो, वरन् संयुक्त राज्य के तेरहों राज्यों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन ऐसे समझौते की सम्भावनाओं पर विचार करने के लिए आमंत्रित किया जाय। उनके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप विधानमंडल ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और समस्त राज्यों को निमंत्रण भेज दिये गए।

अन्नापॉलिस सम्मेलन—उपरोक्त सम्मेलन का स्थान मेरीलैण्ड राज्य का अन्नापॉलिस (Annapolis) नगर निश्चित किया गया था। यद्यपि नौ राज्यों

[१] Alexander Hamilton, *The Federalist*, No. 15.

ने आमंत्रण स्वीकार किया परन्तु सितम्बर, १७८६ में सम्मेलन के अवसर पर केवल पांच राज्यों के प्रतिनिधि ही एकत्र हुए।[१] प्रतिनिधियों की कम संख्या के कारण कोई भी निश्चय करना व्यर्थ समझा गया। न्यूयार्क के प्रतिनिधि अलेक्जेंडर हैमिल्टन के सुझाव पर सम्मेलन ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें समस्त राज्यों से अगले वर्ष मई में फिलाडेल्फिया नामक स्थान पर एक सम्मेलन के लिए अपने प्रतिनिधि भेजने को कहा गया। इस सम्मेलन का उद्देश्य संयुक्त राज्यों की वर्तमान स्थिति पर विचार कर "संघीय शासन के संविधान" में आवश्यक संशोधन प्रस्तुत करना बताया गया था। राज्यमंडल की कांग्रेस से इस प्रस्ताव का समर्थन करने को कहा गया और २१ जनवरी, १७८७ को कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित कर ऐसे सम्मेलन की आवश्यकता का अनुमोदन किया।

मई, १७८७ में फिलाडेल्फिया में वह विश्व-विख्यात सम्मेलन आरंभ हुआ जिसने संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान का निर्माण किया।

---

[१] ये राज्य थे: वर्जिनिया, न्यूयार्क, न्यू जेरसी, पेन्सिल्वानिया, तथा डेलावेर।

अध्याय ३

संघीय संविधान का निर्माण तथा विकास

गत अध्याय में हम उन परिस्थितियों का उल्लेख कर चुके हैं, जिनमें फिलाडेल्फिया नगर में राज्यमंडल के विधान (Articles of Confederation) में आवश्यक संशोधन तथा परिवर्धन करने के लिए एक सम्मेलन हुआ था। सामान्यतः इसी सम्मेलन को अमेरिका के वर्तमान संविधान को, उस संविधान को जिसे आज भी संसार का सर्वश्रेष्ठ लिखित संविधान बताया जाता है, निर्मित करने का श्रेय दिया जाता है। परन्तु यदि हम संयुक्त राज्य के संविधान का मूल स्रोत जानता चाहते हैं तो हमें न केवल उपर्युक्त सम्मेलन की कार्यवाही पर दृष्टि डालनी होगी, वरन् अन्य अनेक आलेखों, घटनाओं तथा सिद्धान्तों पर विचार करना होगा। अमेरिकी राज्यमंडल का विधान, अमेरिकी उपनिवेशों के संविधान, इंगलैंड-नरेश द्वारा अमेरिकी उपनिवेशों को प्रदान किए गए अधिकार-पत्र (Charters), मैग्ना कार्टा (Magna Charta) तथा अधिकार-विधेयक (Bill of Rights) सरीखे ब्रिटिश संविधान के आधार-स्तंभ, इंगलैण्ड की सन् १६४८-५५ तथा १६८८ की घटनाएँ एवं उनकी प्रतिक्रिया, जॉन लॉक तथा मांटेस्क्यू के सिद्धान्त आदि का उदाहरणार्थ उल्लेख किया जा सकता है। इन सभी ने अमेरिकी संविधान को प्रभावित किया है। यहाँ तक कि मनरो के मतानुसार तो प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक अरस्तू को भी संविधान-निर्माताओं में गिना जा सकता है, क्योंकि उनका शक्ति-पृथक्करण (Separation of Powers) का सिद्धान्त अमेरिकी संविधान का सर्वाधिक विशिष्ट लक्षण है।[१] स्थानाभाव के कारण यहाँ अमेरिकी संविधान

---

१ "In a sense, indeed, Aristotle was one of the framers, for he first enunciated the principle of separation of powers, which is the most conspicuous feature of the American constitution."—Munro, W. B., *op. cit.*, p. 40.

के इन सभी स्रोतों पर विचार करना संभव नहीं है। यहाँ हम 'संविधान के निर्माण की कथा' वाक्य का बहुत सीमित अर्थों में प्रयोग कर रहे हैं, और केवल सन् १७८७ के सम्मेलन की प्रमुख घटनाओं एवं कार्यवाही आदि पर विचार करेंगे।

सांविधानिक सम्मेलन में भाग लेने वाले व्यक्ति—इसके पूर्व कि हम सम्मेलन की कार्यवाही तथा निश्चयों पर विचार करें सम्मेलन में भाग लेने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी कुछ जान लेना आवश्यक है। उनके सम्बन्ध में एक भ्रामक धारणा फैली हुई है कि वे सभी प्रकांड पण्डित, अनन्य देशभक्त, तथा अपने देश के सर्वाधिक योग्य व्यक्ति थे। यह धारणा वास्तविकता से बहुत दूर है। जहाँ सम्मेलन में भाग लेने वालों में जार्ज वाशिंगटन, बेंजमिन फ्रेंकलिन, अलैक्जेंडर हैमिल्टन आदि ऐसे व्यक्ति थे जिनकी योग्यता, विद्वता तथा देश-भक्ति के सम्बन्ध में किसी को संदेह नहीं हो सकता, वहाँ सम्मेलन में अत्यन्त सामान्य कोटि के व्यक्ति भी थे।[1] उपर्युक्त प्रतिनिधियों के अतिरिक्त सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रमुख व्यक्तियों में जेम्स मेडीसन, गवर्नर मॉरिस, जेम्स विल्सन, जॉन डिकिन्सन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सम्मेलन में तेरह अमेरिकी राज्यों में से रोड द्वीप (Rhode Island) के अतिरिक्त अन्य सभी के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। प्रत्येक राज्य जितने चाहे उतने प्रतिनिधि भेज सकता था, परन्तु उसे एक ही मत देने का अधिकार था। सभी राज्यों के प्रतिनिधि उनके विधान मण्डलों के द्वारा निर्वाचित किए गए थे। प्रारम्भ में सम्मेलन में भाग लेने के लिए विभिन्न राज्यों के द्वारा ७२ प्रतिनिधि नियुक्त किए गए थे, परन्तु उनमें से केवल ५५ ने ही सम्मेलन की कार्यवाही में भाग लिया। इस संख्या में ऐसे व्यक्ति भी सम्मिलित हैं जो केवल

---

[1] ऑग और रे ने सम्मेलन में भाग लेने वाले कुछ ऐसे प्रतिनिधियों के नामों का भी उल्लेख किया है, जिनका दृष्टिकोण, उनके मतानुसार, संकुचित था तथा जिनकी राजनीतिक प्रतिभा सीमित थी। उन्होंने लिखा है : "...there were a few members of narrow vision and limited political talent : Lansing and Yates of New York, Elbridge Gerry of Massachusetes, and Luther Martin of Maryland-"—Ogg and Ray *op. cit.*, p. 23.

सम्मेलन के कुछ ही अधिवेशनों में उपस्थित रहे। सम्मेलन में प्रायः ३०-३५ प्रतिनिधि ही उपस्थित रहते थे और सम्मेलन के अन्तिम दिन संविधान पर हस्ताक्षर करने वाले प्रतिनिधियों की संख्या भी ३९ ही थी। आयु की दृष्टि से सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों को प्रौढ़ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनकी औसत आयु बयालीस वर्ष ही थी। सम्मेलन में सर्वाधिक वृद्ध प्रतिनिधि बेंजमिन फ्रेंकलिन था, जिसकी आयु उस समय ८१ वर्ष थी।[1]

सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रायः सभी प्रतिनिधि सम्पन्न व्यक्ति थे, और उनमें से अधिकांश व्यापारी अथवा व्यवसायी थे। सम्मेलन का सभापति जार्ज वाशिंगटन, जिसने स्वाधीनता-संग्राम में अमेरिकी सेनाओं का सफलतापूर्वक सेनापतित्व किया था, और जिसे बाद में अमेरिका का प्रथम राष्ट्रप्रति होने का गौरव प्राप्त हुआ था, अपने समय के देश के सर्वाधिक धनाढ्य व्यक्तियों में था। सम्मेलन में भाग लेने वालों में से एक भी व्यक्ति श्रमिक अथवा निम्न श्रेणी का कृषक नहीं था।[2] अधिकांश प्रतिनिधि शिक्षित तथा अनुभवी थे। चौबीस प्रधिनिधि ग्रेजुएट थे तथा इकतीस वकालत करते थे। जिन पचपन सदस्यों ने सम्मेलन की कार्यवाही में भाग लिया उनमें से उन्तालीस प्रथम अथवा द्वितीय महाद्वीपीय कांग्रेस के सदस्य रह चुके थे और आठ प्रतिनिधियों ने अपने राज्यों के संविधान बनाने में सहायता पहुँचाई थी।[3] यहाँ यह भी उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों में से चौबीस ब्याज पर ऋण देते थे, तथा पन्द्रह प्रतिनिधि दासों के अधिपति थे। संविधान-निर्माताओं में से अधिकांश के सम्पन्न और संपत्तिशाली होने के कारण कुछ लेखकों ने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि संविधान ऐसे लोगों के द्वारा बनाया गया था जिनका लाभ एक सशक्त और सुव्यवस्थित शासन की स्थापना में ही था।[4]

---

[1] James Beck, *op. cit.*, p. 54.

[2] Ogg and Ray, *op. cit.*, p. 24.

[3] Beck, James, *op. cit.*, p. 54.

[4] उदाहरणार्थ देखिए: Charles A. Beard, *An Economic Interpretation of the Constitution of the United States.*

सम्मेलन के संगठन तथा उसकी कार्यवाही एवं विनिश्चयों पर विचारारंभ करने के पूर्व कुछ शब्द उसमें भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के विचारों के संबंध में भी कह देना आवश्यक है। जहाँ एक ओर अलैक्जेंडर हैमिल्टन जैसे प्रतिनिधि सम्मेलन की कार्यवाही में भाग ले रहे थे जो देश में एक पूर्णतः केन्द्रीकृत शासन स्थापित करने के पक्ष में थे, वहाँ दूसरी ओर लूथर मार्टिन जैसे प्रतिनिधि भी थे जो राज्यमंडल तथा उसके विधान में कोई भी परिवर्तन करना पसंद नहीं करते थे। सम्मेलन में भाग लेने वाले अधिकांश प्रतिनिधियों के विचारों का उपरोक्त दोनों व्यक्तियों में से कोई भी प्रतिनिधित्व नहीं करता था; परन्तु केन्द्रीय शासन को दी जाने वाली शक्तियों के सम्बन्ध में प्रतिनिधियों में बहुत अधिक मतभेद था। इसी प्रकार सङ्घीय शासन में प्रजातंत्र के तत्त्वों का किस सीमा तक समावेश हो, इस प्रश्न पर भी प्रतिनिधियों में पर्याप्त मतभेद था। अलैक्जेंडर हेमिल्टन एक आभिजात्यवर्गीय शासन स्थापित करने के पक्ष में था; जब कि अनेक सदस्य शासन को पूर्णतः जनतांत्रिक बनाने के पक्ष में थे। यद्यपि प्रजातंत्रीय व्यवस्था के समर्थकों की संख्या अधिक नहीं थी, परन्तु उनमें जेम्स मेडीसन, बेंजमिन फ्रैंकलिन तथा जेम्स विल्सन जैसे प्रभावशाली व्यक्ति सम्मिलित थे। सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों में इतना अधिक विचार वैषम्य होते हुए भी परस्पर मतैक्य संभव हो सका, यह उनकी बुद्धिमत्ता तथा देशभक्ति का सबल प्रमाण है।

सांविधानिक सम्मेलन की कार्यवाही में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों की सूची में कुछ तत्कालीन महत्त्वपूर्ण नेताओं के नाम सम्मिलित नहीं हैं। टॉमस जैफरसन फ्रांस में दौतिक कार्य में व्यस्त थे। महान् आंदोलक टॉम पेन (Tom Paine) तथा बाद में सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के रूप में अत्यधिक प्रसिद्धि पाने वाले जॉन मार्शल भी इस सम्मेलन में उपस्थित न थे। अन्य अनुपस्थित नेताओं में पैट्रिक हैनरी, जॉन हैन्कॉक तथा सैमुएल ऐडम्स के नाम उल्लेखनीय हैं।

सम्मेलन का संगठन, प्रक्रिया एवं नियम—सम्मेलन की कार्यवाही २५ मई, १७८७ को आरंभ हुई और सर्वप्रथम उसने अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया तथा नियमादि स्वीकृत किये। अध्यक्ष-पद के लिए केवल जार्ज वाशिंगटन

का नाम प्रस्तावित किया गया और वही सर्वसम्मति से सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित घोषित कर दिये गए। कार्यवाही का विवरण रखने के लिए विलियम जैक्सन को सम्मेलन का मंत्री नियुक्त किया गया।

सम्मेलन के आरंभ में प्रक्रिया आदि से संबंधित जो नियम स्वीकृत किये गए उनमें दो नियम मुख्य हैं। प्रथम, यह कि किसी प्रश्न पर निश्चय करने के लिए प्रत्येक राज्य को केवल एक मत प्राप्त होगा, चाहे सम्मेलन में उसके कितने ही प्रतिनिधि भाग ले रहे हों। राज्यमंडल की कांग्रेस में भी मतदान इसी प्रकार होता था। इस नियम का आशय स्पष्ट ही छोटे राज्यों के भय को दूर करना था कि उन पर किसी प्रकार की व्यवस्था बलपूर्वक लादी नहीं जाएगी। द्वितीय नियम यह था कि सम्मेलन की समस्त कार्यवाही पूर्णतः गोपनीय रखी जावेगी और किसी सदस्य को उसके संबंध में किसी को कुछ भी बताने का अधिकार न होगा। इस नियम का अत्यंत कड़ाई के साथ पालन किया गया।[1] इस नियम को यद्यपि आजकल प्रजातंत्र के सिद्धांतों के विरुद्ध माना जायेगा, परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि जनता के समक्ष प्रतिनिधियों के पारस्परिक विवाद न आ सके और उसमें विग्रह उत्पन्न न हो सका। यदि सम्मेलन की दैनिक कार्यवाही प्रकाशित की जाती तो नहीं कहा जा सकता कि लोकमत के भय के कारण प्रतिनिधि अपना वास्तविक मत व्यक्त भी कर पाते और सम्मेलन किस सीमा तक सफल होता। सम्मेलन के समाप्त होने के पश्चात् भी इसमें भाग लेने वाले प्रतिनिधियों ने इसकी कार्यवाहियों को आजीवन कभी प्रकट नहीं किया। इसके अपवाद केवल लूथर मार्टिन और जार्ज मेसन नामक दो ही

---

[1] वाशिंगटन इस संबंध में कितना सतर्क था इसका पता इस घटना से चलता है। एक बार किसी सदस्य ने सम्मेलन के किसी प्रस्ताव की एक प्रति कहीं गिरा दी। वह प्रति वाशिंगटन के पास पहुँच गई। वाशिंगटन ने सम्मेलन में कहा :—महानुभावों—मुझे दुःख है कि इस सम्मेलन का कोई सदस्य सम्मेलन के गोपनीय विषयों के संबंध में इतना लापरवाह है कि उसने कहीं एक प्रति गिरा दी।.... मुझे नहीं मालूम कि यह किसके कागज हैं। उन्हें मेज पर फेंकते हुए उसने कहा "ये जिसके हों वह इन्हें ले जाय।" कोई प्रतिनिधि उस पर अपना दावा प्रस्तुत करने का साहस न कर सका।

सदस्य हैं जिन्होंने सम्मेलन के समाप्त होने पर इसकी कार्यवाहियों पर अपने वक्तव्यों में प्रकाश डाला। सम्मेलन की कार्यवाही का अधिकृत विवरण उसके समाप्त होने के चालीस वर्ष पश्चात् सन् १८१६ में प्रकाशित किया गया और जेम्स मेडीसन ने प्रतिनिधियों के भाषणों के जो सारांश तैयार किये थे वह उसकी मृत्यु के पश्चात् सन् १८३९ में प्रकाशित हुए।

सम्मेलन में प्रस्तुत की गई महत्त्वपूर्ण योजनाएँ—फ़िलाडेल्फ़िया सम्मेलन में संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन-प्रणाली में सुधार के लिये जो अनेक योजनाएँ प्रस्तुत की गईं उनमें दो योजनाएँ तुलनात्मक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इन योजनाओं के नाम हैं—वर्जिनिया योजना (Virginia Plan), तथा न्यू जेरेसी योजना (New Jersey Plan)। इन्हीं योजनाओं को क्रमशः इनके प्रस्तावकों के नाम पर रेन्डाल्फ़ योजना (Randolph Plan) तथा पेटरसन योजना (Paterson Plan) भी कहते हैं।

वर्जिनिया योजना—सम्मेलन प्रारंभ होने के पर्याप्त समय पूर्व से ही वर्जिनिया का प्रतिनिधि जेम्स मेडीसन तथा उसके अन्य साथी एक योजना बनाने में संलग्न थे। इसी योजना को २९ मई को एडमंड रेन्डाल्फ़ ने सम्मेलन में प्रस्तुत किया। इस योजना की मुख्य विशेषता यह थी कि इसमें संयुक्त राज्य के लिये एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन की व्यवस्था थी। केन्द्रीय शासन में कार्याङ्ग, विधानांग तथा न्यायांग तीनों की स्थापना की व्यवस्था की गई थी। विधानमंडल में दो सदनों की स्थापना का प्रस्ताव था। विधानमण्डल के निम्न सदन के सदस्यों के जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित किये जाने तथा उच्च सदन के सदस्यों के राज्यों के विधानमण्डल द्वारा नामांकित व्यक्तियों में से केन्द्रीय विधानमण्डल के निम्न सदन के द्वारा निर्वाचित किये जाने की व्यवस्था थी। प्रतिनिधित्व का आधार जनसंख्या को माना गया था और इस कारण इस योजना के अनुसार संगठित विधानमण्डल में बड़े राज्यों के प्रतिनिधियों का ही प्राधान्य रहता। इस योजना का छोटे राज्यों द्वारा विरोध किये जाने का यह एक मुख्य कारण था। इस योजना में केन्द्रीय शासन को जो महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ सौंपी गई थीं उनमें विभिन्न राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा पारित ऐसी विधियों पर जो संघीय विधान के प्रतिकूल हों अभिषेधाधिकार

(Veto) प्रयोग करने की शक्ति भी सम्मिलित थी। केन्द्रीय शासन को विभिन्न राज्यों के नागरिकों पर कर लगाने तथा किसी राज्य के द्वारा "अपने कर्तव्यों के पूरा न करने पर" उसके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने की शक्ति भी दी गई थी। यद्यपि इस योजना में "राज्यमंडल के अनुच्छेदों" (Articles of Confederation) को तिरोहित करने का कहीं प्रस्ताव न था, पर वास्तव में इसमें संयुक्त राज्य के लिये एक पूर्णरूपेण नवीन संविधान का प्रस्ताव था।

न्यू जेरेसी योजना—वर्जिनिया योजना से छोटे राज्यों के प्रतिनिधियों में जो असंतोष उत्पन्न हुआ उसने थोड़े ही समय में न्यू जेरेसी योजना का रूप लिया। यह योजना पन्द्रह जून को प्रस्तुत की गई। विलियम ऐण्डरसन के मतानुसार यह छोटे राज्यों का वर्जिनिया योजना की केन्द्रकारी तथा सशक्त शासन की प्रवृत्तियों का उत्तर थी।[१] इसमें केन्द्रीय विधानमंडल अर्थात् कांग्रेस को एकसदनात्मक बनाये रखने का प्रस्ताव था। इस योजना में प्रत्येक राज्य को केन्द्रीय विधानमंडल में केवल एक मत दिये जाने की सिफ़ारिश की गई थी। केन्द्रीय शासन में कार्याङ्ग (Executive) स्थापित किये जाने का प्रस्ताव था जो विधानमण्डल के द्वारा निर्वाचित होता। संघीय न्यायपालिका की भी स्थापना की व्यवस्था थी परन्तु उसकी शक्तियाँ अत्यन्त सीमित होतीं। केन्द्रीय शासन को आयात पर कर लगाने, आलेखों पर मुद्रांक-शुल्क (Stamp duty) लगाने, डाक की दरें निश्चित करने तथा वैदेशिक व आंतरिक व्यापार को नियमित करने के लिए विधियाँ बनाने की शक्तियाँ दिये जाने का प्रस्ताव था। इस योजना की एक अन्य मुख्य बात यह थी कि इसमें केन्द्रीय विधानमण्डल के सदस्यों का वेतनादि राज्यों के कोष से दिये जाने की व्यवस्था थी। स्पष्ट ही यह व्यवस्था इसलिए की गई थी कि कांग्रेस के सदस्यों पर राज्यों का नियन्त्रण बना रहे।

सम्मेलन में दो गुटों का निर्माण—उपरोक्त दोनों योजनाओं के समर्थकों के सम्मेलन में अलग-अलग गुट बन गए और इस प्रकार सम्मेलन दो गुटों में

---

[१] "The New Jersey Plan was the reply of the small states to the centralising and strong" government tendencies of the Virginia Plan—William Anderson, *op. cit.*, p. 48.

विभक्त हो गया। जहाँ एक गुट केन्द्रीय शासन को शक्तिशाली बनाने के पक्ष में था, वहाँ दूसरा गुट केन्द्रीय शासन को शक्तिहीन रख कर छोटे राज्यों के हितों को संरक्षण प्रदान करने के पक्ष में था। इन दो गुटों में विरोध इस सीमा तक बढ़ गया कि एक समय पर तो ऐसा प्रतीत होता था कि सम्मेलन भंग ही हो जायगा। परन्तु इन दोनों गुटों में परस्पर समझौता हो गया जिसके कारण संविधान का निर्माण संभव हो सका।

महत्वपूर्ण विवादों का निपटारा

लार्ड ब्राइस ने संविधान-निर्माताओं के बीच परस्पर समझौता संभव होने के दो मुख्य कारण बताये हैं। प्रथम, उनके बीच कोई प्रतिक्रियावादी षड्यंत्रकारी नहीं थे और उनमें से प्रत्येक स्वतंत्रता और समानता का प्रेमी था। द्वितीय, उनके बीच वर्ग संबंधी समस्याएँ नहीं थीं, धन और पद के प्रति द्वेष-भाव नहीं था क्योंकि धन और पदों का अस्तित्व ही नहीं था।[१] प्रायः समस्त संविधान-निर्माता देश-हित को सर्वोच्च स्थान देते थे। एक अन्य कारण यह भी था कि सम्मेलन के सदस्यों में अतिवादियों का अभाव था। जेम्स बेक ने इसे सौभाग्य का विषय बतलाया है कि जैफरसन, जो आगे चलकर अमेरिका के राष्ट्रपति बने, उस समय फ्रांस में थे और इस कारण सम्मेलन की कार्यवाहियों में भाग न ले सके।[२]

कानेक्टिकट समझौता—सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के बीच जिन समझौतों के कारण संविधान का निर्माण सम्भव हो सका उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कानेक्टिकट समझौता (Connecticut Compromise) है। इस समझौते को उपर्युक्त नाम से संबोधित किये जाने का कारण यह है कि अंतिम रूप में यह समझौता कानेक्टिकट राज्य के प्रतिनिधियों द्वारा प्रस्तुत किया गया

---

[१] "There were no reactionary conspirators to be feared, for every one prized liberty and equality. There were no questions between classes, no animosities against rank and wealth, for rank and wealth did not exist."—Bryce, James, *American Commonwealth*, Vol. I, p. 25.

[२] James Beck, *op. cit.*, pp. 117-118.

था। हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के बीच विवाद का एक मुख्य विषय यह था कि केन्दीय विधानमंडल में प्रतिनिधित्व का आधार क्या हो। इस समझौते के द्वारा इसी प्रश्न का निर्णय किया गया। यह निश्चय किया गया कि केन्द्रीय विधान मंडल में दो सदन हों। उच्च सदन के निर्माण का आधार राज्यों की समानता का सिद्धान्त हो, अर्थात् उसमें प्रत्येक राज्य को समान संख्या में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार हो। इसके विपरीत निम्न सदन की रचना का आधार राज्यों की जनसंख्या हो, अर्थात् प्रत्येक राज्य अपनी जनसंख्या के अनुपात से प्रतिनिधि भेजे। यह भी निश्चय किया गया कि उच्च सदन अर्थात् सिनेट को कार्यपालिका द्वारा की गई नियुक्तियों तथा संधियों का अनुसमर्थन करने, तथा निम्न सदन को राजस्व (Revenue) संबंधी विधेयकों का सूत्रपात करने का विशेषाधिकार प्राप्त हो। कानेक्टिकट समझौते का महत्व इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि इसे "महान समझौता" कहा जाता है। प्रो० ऑग और रे के मतानुसार इसके द्वारा पारस्परिक ऐक्य के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा दूर हो गई।[१]

अन्य समझौते—कानेक्टिकट समझौते ने सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों का कार्य पर्याप्त सरल कर दिया; परन्तु समय-समय पर अनेक ऐसे प्रश्न उनके सामने आते थे जिन पर विवाद उठ खड़ा होता था। इनमें से अधिकांश प्रश्नों का निपटारा समझौतों के द्वारा किया गया। उदाहरणार्थ, सम्मेलन में इस प्रश्न पर तीव्र विवाद उठ खड़ा हुआ था कि दासों को कांग्रेस में प्रतिनिधित्व दिया जाय या नहीं। उत्तरी राज्य, जिनमें दास-प्रथा नहीं थी, दासों को प्रतिनिधित्व दिये जाने का विरोध कर रहे थे, जब कि दक्षिणी राज्य जिनमें दासों की संख्या पर्याप्त थी उन्हें प्रतिनिधित्व दिये जाने के पक्ष में थे। अन्त में यह समझौता हुआ कि प्रतिनिधित्व के लिए जनसंख्या का निश्चय करते समय दासों की संख्या के ३/५ भाग को गिना जाय, शेष को नहीं। साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि कांग्रेस जब प्रत्यक्ष कर लगाये तब भी दासों की जनसंख्या के केवल ३/५ भाग को ही गिना जाय। इसी प्रकार अन्य अनेक प्रश्नों पर समझौते हुए। इस सम्बन्ध में निम्न सदन की कार्यावधि, कांग्रेस की शक्तियाँ,

[१] Ogg and Ray, *op. cit.*, p. 29.

दासों का व्यापार, निर्वाचकों की योग्यता आदि विषयों का उल्लेख किया जा सकता है। इन समझौतों के कारण कुछ लेखकों ने तो संयुक्त राज्य के संविधान को ही "समझौतों का आलेख"[1] घोषित कर दिया है। परन्तु मनरो के मतानुसार हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ संविधान अनेक समझौतों का परिणाम है, वहाँ ऐसे विषयों की भी कमी नहीं है जिन पर सर्वसम्मति से निर्णय किया गया था।[2]

संविधान के प्रारूप का निर्माण तथा सम्मेलन की समाप्ति

प्रारूप निर्माण—जुलाई, १७८७ के अन्तिम सप्ताह एक फ़िलाडेल्फ़िया सम्मेलन संयुक्त राज्य की भावी शासन-प्रणाली से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर विचार और विनिश्चय करता रहा। उस समय तक सम्मेलन ने तेईस प्रस्ताव पारित किये थे जिनमें उसके निश्चय ग्रथित थे। इस समय यह आवश्यक समझा गया कि इन विनिश्चयों को एक लेखपत्र में बद्ध करने के लिए एक समिति नियुक्त की जाय। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए २४ जुलाई को सम्मेलन ने एक विवरण-समिति (Committee on Detail) निर्वाचित की। इस समिति में पाँच सदस्य थे। विवरण समिति ने ६ अगस्त को अपनी आख्या (रिपोर्ट) सम्मेलन के समक्ष प्रस्तुत की। यह आख्या संयुक्त राज्य के संविधान का प्रारंभिक प्रारूप थी, जिसमें प्रस्तावना तथा तेईस अनुच्छेद थे। समिति की आख्या पर सम्मेलन ने लगभग एक मास तक विस्तृत विचार किया। यहाँ तक कि प्रत्येक धारा और वाक्यों तक पर तीव्र विवाद हुआ। ८ सितम्बर को विवरण समिति की आख्या पर विचार समाप्त हुआ और सम्मेलन ने उसे कुछ संशोधन के साथ अंगीकृत कर लिया। सम्मेलन ने तब शैली समिति (Committee on Style) नामक एक नवीन समिति नियुक्त की। इस

[1] "An instrument of compromises" or, "a bundle of compromises."

[2] "When you say that the constitution is a "bundle of compromises" you are right; but it would be equally correct to call it a series of unanimous agreements."—Munro, W. B., *op. cit.*, p. 51.

समिति में भी पाँच सदस्य थे तथा इस समिति का कार्य "सदन द्वारा स्वीकृत अनुच्छेदों को व्यवस्थित करना तथा उनकी शैली को संशोधित करना" था। विश्वास किया जाता है कि इस समिति का अधिकांश कार्य इसके अध्यक्ष गवर्नर मॉरिस द्वारा ही किया गया।[1] समिति ने सम्मेलन के विनिश्चयों को व्यवस्थित रूप में तथा सुन्दर भाषा में १२ सितम्बर को उपस्थित किया। अगले तीन दिनों में सम्मेलन ने इस समिति की आख्या पर विचार किया और १५ सितम्बर को उसे अंगीकृत कर लिया।

सम्मेलन का अन्त—१७ सितम्बर, १७८७ को सम्मेलन की अन्तिम बैठक हुई। उस दिन तक सम्मेलन की ८१ बैठकें हो चुकी थीं। यद्यपि सम्मेलन में पचपन प्रतिनिधियों ने भाग लिया था, पर उस दिन हस्ताक्षर करने के लिए ३९ सदस्य ही उपस्थित हुए। ये अमेरिका के बारह राज्यों के प्रतिनिधि थे। प्रतिनिधियों में तीन ऐसे भी थे जिन्होंने सम्मेलन में उपस्थित रहते हुए भी संविधान के प्रारूप पर हस्ताक्षर नहीं किये। बेंजमिन फ्रैंकलिन के प्रभावशाली भाषण के पश्चात् भी वे अपने निश्चय पर अडिग रहे। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि इन प्रतिनिधियों के राज्यों के अन्य प्रतिनिधियों ने प्रारूप पर हस्ताक्षर कर दिए थे, और इस कारण संविधान का प्रारूप "सर्वसम्मति" से अङ्गीकृत माना गया।

अपने विघटन के पूर्व सम्मेलन ने एक अन्य प्रस्ताव अंगीकृत किया। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि सम्मेलन द्वारा अंगीकृत संविधान को संयुक्त राज्य की कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत किया जाय और अपना यह मत व्यक्त किया कि उसके पश्चात् उसे राज्यों की जनता द्वारा निर्वाचित सम्मेलनों के समक्ष प्रस्तुत किया जाय। ये सम्मेलन अपनी स्वीकृति तथा अनुसमर्थन की सूचना संयुक्त राज्यों की कांग्रेस को दें। सम्मेलन के इन सुझावों के साथ संविधान की एक प्रतिलिपि कांग्रेस को भेज दी गई।

राज्य-सम्मेलनों द्वारा संविधान का अनुसमर्थन

२८ सितम्बर को कांग्रेस ने सर्वसम्मति से निर्णय किया कि संविधान का प्रारूप सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार संगठित राज्यों के सम्मेलनों के पास

[1] James Beck, *op. cit.*, p. 160.

विचारार्थ भेज दिया जाय। यहाँ यह प्रश्न हमारे सामने आता है कि संविधान अनुसमर्थन के लिए राज्यों की जनता द्वारा विशेष रूप से निर्वाचित सम्मेलनों के पास क्यों भेजा गया। उसे राज्यों के विधान मंडलों के ही पास क्यों नहीं भेजा गया? वे भी तो जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित हुए थे। संक्षेप में इस प्रश्न का उत्तर यही है कि संविधान-निर्माताओं को यह विश्वास नहीं था कि राज्यों के विधानमंडल संविधान का अनुसमर्थन (Ratification) कर देंगे। उन्हें जनता द्वारा निर्वाचित सम्मेलनों से अनुसमर्थन की अधिक आशा थी।[१] विधानमंडलों ने सम्मेलन में एकत्र होने वाले प्रतिनिधियों को राज्यमंडल के विधान में संशोधन करने का अनुदेश दिया था, न कि एक नवीन संविधान का निर्माण करने का। एक अन्य कारण यह भी था कि जनता के द्वारा निर्वाचित सम्मेलनों का अनुसमर्थन प्राप्त होने पर संविधान का महत्व अधिक बढ़ जाता।

अनुसमर्थन के पक्ष तथा विपक्ष में प्रचार—संविधान जैसे ही राज्यों के पास अनुसमर्थन के लिए भेजा गया वैसे ही देश के एक कोने से दूसरे कोने तक उसके पक्ष और विपक्ष में धुआँधार प्रचार आरंभ हो गया। सम्मेलन की कार्य-वाही पूर्णरूपेण गोपनीय रहने के कारण लोगों में तरह-तरह की अफवाहें और अटकलें प्रचलित थीं। प्रत्येक व्यक्ति संविधान से मनचाही आशाएँ लगाए हुए था। इनमें से बहुत सी आशाओं पर तुषारपात होना अवश्यम्भावी था। कुछ लोगों को संविधान से यह शिकायत थी कि उसमें केन्द्रीय शासन को बहुत अधिक सशक्त रखा गया है, जब कि कुछ अन्य इस कारण उसके आलोचक थे कि उसमें संघीय शासन को और अधिक शक्तिशाली क्यों नहीं बनाया गया। उत्तरी राज्यों के निवासियों का मत था कि संविधान में दक्षिणी राज्यों को संतुष्ट करने के लिए बहुत रियायतें दी गई हैं जबकि दक्षिणी राज्यों वाले यह अनुभव करते थे कि उनके हितों की अवहेलना की गई है। धर्माधिकारी नवीन संविधान से इसलिए असंतुष्ट थे कि उसमें कहीं भगवान के नाम का उल्लेख नहीं किया

---

[१] "....it was felt that the constitution would stand a better chance of adoption by special conventions than by the state legislatures."—Munro, W. B., *op. cit.*, p. 52.

गया था, और ईसाई धर्म को राजधर्म घोषित नहीं किया गया था। प्रायः संयुक्त राज्य के सभी भागों में संविधान की इस कारण अति तीव्र आलोचना हुई कि उसमें नागरिकों के अधिकारों तथा उनकी स्वतन्त्रताओं का कहीं उल्लेख नहीं था। स्वयं टॉमस जैफरसन जो आगे चलकर संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति बने संविधान से इसी कारण असन्तुष्ट थे।

संविधान के आलोचकों में कुछ लोग ऐसे भी थे जो यह मानने को ही प्रस्तुत नहीं थे कि फिलाडेल्फिया सम्मेलन को संयुक्त राज्य के लिए नवीन संविधान बनाने का अधिकार था। उनका मत था कि उसे केवल 'राज्यमंडल के अनुच्छेदों' में संशोधन करने का कार्य सौंपा गया था और उसे केवल यही करने का अधिकार था।[1] कुछ अन्य आलोचकों का मत था कि संविधान अनुसमर्थन के लिए राज्यों के विधानमंडलों के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए था, फिलाडेल्फिया सम्मेलन को यह अधिकार नहीं था कि वह इस कार्य के लिए विशेष रूप से संगठित सम्मेलनों का आयोजन करें। ऐसे लोगों की भी संख्या कम नहीं थी जो यह अनुभव करते थे कि संविधान सम्पत्तिशाली एवं सम्पन्न वर्ग के लोगों द्वारा गरीब जनता के शोषण के लिए बनाया गया है। संविधान के अनुसमर्थन का उग्र विरोध करने वालों में पैट्रिक हैनरी तथा रिचार्ड हैनरी ली के नाम उल्लेखनीय है। हैनरी ली ने संविधान का विरोध करने के लिए एक निबंधों का संग्रह प्रकाशित कराया था जिसका नाम 'लैटर्स फ्राम दि फैडरल फार्मर टु दि रिपब्लिकन' है।

संविधान के पक्ष में आन्दोलन करने वालों में जेम्स मेडीसन, अलैक्जेण्डर हैमिल्टन, जॉन जे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। संविधान के समर्थकों को जार्ज वाशिंगटन तथा बेंजमिन फ्रैंकलिन जैसे सम्मानित व्यक्तियों का भी समर्थन प्राप्त था। जब न्यूयार्क राज्य में नव-संविधान का तीव्र विरोध हुआ और ऐसा प्रतीत होने लगा कि यहाँ के सम्मेलन का अनुसमर्थन प्राप्त करना कठिन होगा तब हैमिल्टन और मेडीसन आदि ने प्रचार-कार्य के लिए छोटी-छोटी पुस्तिकाओं

---

[1] देखिए पैट्रिक हैनरी का वर्जिनिया सांविधानिक सम्मेलन में दिया गया भाषण (Saul K. Padover, *The Living U. S. Constitution*, p. 27)

के रूप में ८५ निबन्ध प्रकाशित किए। भाषा की सरलता, भावों की गूढ़ता और उत्साहपूर्णता की दृष्टि से ये निबन्ध अनुपम हैं। इनका संग्रह 'दि फैडरलिस्ट' (The Federalist) नाम से प्रकाशित हुआ है। इन निबन्धों में संविधान के विरोधियों के तर्कों का उत्तर दिया गया है और संविधान की श्रेष्ठता प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है।

राज्य-सम्मेलनों द्वारा अनुसमर्थन—सर्वप्रथम संविधान का अनुसमर्थन छोटे राज्यों के सम्मेलनों के द्वारा किया गया, क्योंकि फिलाडेल्फिया सम्मेलन के निर्णयों से वे संतुष्ट हो गये थे। डेलावेर राज्य के सांविधानिक सम्मेलन ने ७ दिसम्बर, १७८७ को संविधान का सर्वसम्मति से अनुसमर्थन किया। दिसम्बर में ही अन्य दो राज्यों, पेनसिल्वानिया और न्यू जेरसी के सम्मेलनों ने संविधान का अनुसमर्थन कर दिया। अगले सात मासों में आठ अन्य राज्यों के सम्मेलनों ने संविधान का अनुसमर्थन कर दिया और इस प्रकार जुलाई १७८८ के अन्त तक संविधान को ग्यारह राज्यों का अनुसमर्थन प्राप्त हो चुका था। शेष दो राज्यों में से नार्थ कैरोलिना ने नवम्बर १७८९ में तथा रोड द्वीप ने मई १७९० में संविधान का अनुसमर्थन किया।

नवीन शासन की स्थापना—संविधान के सातवें अनुच्छेद में कहा गया था कि संविधान के प्रवर्तन के लिए नौ राज्यों के सम्मेलनों का अनुसमर्थन पर्याप्त होगा। इस उपबंध के अनुसार नौ राज्यों का अनुसमर्थन प्राप्त होने पर राज्यमण्डल की कांग्रेस ने राज्यों को नवीन संविधान के उपबंधों के अनुरूप सिनेट तथा प्रतिनिधि सभा के सदस्य तथा राष्ट्रपति के निर्वाचन हेतु निर्वाचक-मंडल निर्वाचित करने का अनुदेश दिया। दस राज्यों की जनता द्वारा निर्वाचित निर्वाचकों ने जार्ज वाशिंगटन को राष्ट्रपति तथा जान एडम्स को उप-राष्ट्रपति निर्वाचित किया। ३० अप्रैल १७८९ को नवीन शासन ने कार्यभार सँभाल लिया। पूर्व-शासन के एकमात्र अवशेष कांग्रेस का अनौपचारिक रूप से अंत हो गया, क्योंकि वह गणपूर्ति के अभाव के कारण अपने विघटन तक का प्रस्ताव पारित न कर सकी।

अमेरिकी संविधान का विकास

अमेरिकी संविधान के निर्माण की कथा से परिचित हो जाने पर यह जिज्ञासा

होना स्वाभाविक ही है कि क्या अमेरिका के संविधान का अभी भी वही स्वरूप है जो कि उसे सन् १७८७ में प्राप्त हुआ था, अथवा उसमें कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भी हुए हैं। निश्चय ही अमेरिका के संविधान में सन् १७८७ से आज तक अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, और इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है। आज का अमेरिका सन् १७८७ के अमेरिका से सभी दृष्टियों से बहुत भिन्न है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका तेरह राज्यों का सङ्घ नहीं, वरन् अड़तालीस राज्यों वाला शक्तिशाली राष्ट्र है। आज संयुक्त राज्य कृषि-प्रधान देश नहीं है; वह संसार के सर्वाधिक उन्नत औद्योगिक देशों में है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आज संयुक्त-राज्य की जो स्थिति है उसकी तो संविधान-निर्मातागण कभी कल्पना भी नहीं कर सके होंगे। ऐसी स्थिति में संविधान में परिवर्तन होना आश्चर्यजनक नहीं, परिवर्तन न होना ही आश्चर्य का कारण होता। परन्तु यहाँ यह स्मरण दिलाना उचित ही होगा कि संयुक्त-राज्य के संविधान में अन्य देशों के संविधानों की तुलना में कम ही परिवर्तन हुए हैं। उसके मूल सिद्धांत आज भी वही हैं जो सन् १७८७ में फिलाडेल्फिया सम्मेलन में निर्धारित किए गए थे।

संविधान शब्द का अर्थ—संयुक्त राज्य के संविधान में हुए परिवर्तनों पर विचार करने के पूर्व अच्छा यह होगा कि हम "संविधान" शब्द का अर्थ स्पष्टतया समझ लें। सामान्यतः बोलचाल की भाषा में "संविधान" शब्द का अर्थ उस दस्तावेज से लगाया जाता है जो कि किसी एक निश्चित समय पर किसी देश के लिए उसकी संविधान सभा के द्वारा तैयार किया जाता है तथा जिसमें देश की शासन-प्रणाली, शासन की शक्तियों, नागरिकों के अधिकारों आदि का उल्लेख होता है। इस अर्थ में "संविधान" में उन संशोधनों को भी सम्मिलित कर लिया जाता है जो समय-समय पर उसमें दी गई प्रक्रिया के अनुसार किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, जब हम "भारत का संविधान" वाक्य सुनते हैं तो स्वभावतया हमारा ध्यान उस दस्तावेज की ओर चला जाता है जो हमारी संविधान सभा के द्वारा बनाया गया था और जो २६ जनवरी सन १९५० को प्रवर्तित किया गया था। परन्तु 'संविधान" शब्द का यह बहुत सीमित अर्थ है। विस्तृत तथा सही अर्थ में "संविधान" शब्द का प्रयोग उन सब लिखित तथा अलिखित, विधिवत तथा परम्परागत, नियमों के लिए होता है जिनके द्वारा देश

की शासन प्रणाली, शासन की शक्तियाँ तथा कृत्य, एवं नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्य निश्चित होते हैं।[1] इस अर्थ में हम संविधान में उन सब विनिश्चयों तथा व्याख्याओं को भी सम्मिलित मान सकते हैं जिनके द्वारा संविधान के विभिन्न उपबंधों का वास्तविक अर्थ मालूम होता है।

संविधान के विकास के विभिन्न मार्ग—प्रायः सभी देशों के संविधानों में उस प्रक्रिया का भी उल्लेख रहता है जिसके द्वारा संविधान में समय-समय पर संशोधन किए जा सकते हैं। परन्तु संविधान में वर्णित इस औपचारिक मार्ग के अतिरिक्त अन्य मार्गों से भी संविधान में संशोधन होते रहते हैं। विभिन्न देशों के सांविधानिक इतिहास पर दृष्टि डालने से हम संविधान में संशोधन की निम्न रीतियाँ प्रचलित पाते हैं।

१. संविधान में वर्णित औपचारिक पद्धति से संशोधन।
२. विधि-निर्माण के द्वारा संशोधन।
३. प्रथाओं (Usages) तथा रूढ़ियों (Customs) के द्वारा संशोधन।
४. संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित न्यायिक-निर्णयों के द्वारा संशोधन।

इस पुस्तक के कलेवर का ध्यान रखते हुए यहाँ यह सम्भव न हो सकेगा कि हम उपर्युक्त चारों रीतियों से अमेरिकी संविधान में हुए समस्त संशोधनों पर विस्तार के साथ विचार करें। यहाँ हम केवल औपचारिक संशोधनों तथा अन्य रीतियों से हुए संशोधनों के केवल कुछ उदाहरणों का ही उल्लेख करेंगे।

१. औपचारिक संशोधनों के द्वारा संविधान का विकास

अमेरिकी संविधान के पाँचवें अनुच्छेद में संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया का उल्लेख है।[2] इस प्रक्रिया पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे।

---

[1] Anderson, W., *op. cit.*, p. 73.

[2] "कांग्रेस, जब कभी उसके दोनों सदनों का दो-तिहाई भाग यह आवश्यक समझे, इस संविधान में संशोधन प्रस्तुत कर सकेगी, अथवा वह विभिन्न राज्यों के दो-तिहाई भाग के विधानमंडलों के आवेदन पर संशोधन प्रस्तुत करने के लिए एक सम्मेलन (Convention) आमंत्रित करेगी। दोनों अवस्थाओं में प्रस्तावित संशोधन जब विभिन्न राज्यों के तीन-चौथाई भाग के विधानमंडलों के

अब तक संविधान में इस प्रक्रिया के अनुसार बाईस संशोधन किए गए हैं जो संविधान की मूल धाराओं की भाँति ही संविधान के अभिन्न अंग बन गए हैं। इन संशोधनों का सारांश इस प्रकार है :—

प्रथम दस संशोधन—सयुक्त राज्य के संविधान में जोड़े गए प्रथम दस संशोधन एक ही साथ सन् १७९१ में प्रथम कांग्रेस के द्वारा अंगीकृत किये गए थे। इन संशोधनों को सामूहिक रूप से अधिकार-पत्र (Bill of Rights) के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। गत पृष्ठों में हम इस तथ्य का उल्लेख कर चुके हैं कि राज्यों के द्वारा अनुसमर्थन के समय संविधान का इस कारण बहुत अधिक विरोध किया गया था कि उसमें नागरिकों के अधिकारों तथा नागरिक-स्वतंत्रताओं की प्रत्याभूति नहीं की गई थी। इसका कारण यही था कि संयुक्त राज्य में सम्मिलित होने वाले अधिकांश राज्यों के संविधानों में अधिकार पत्र सम्मिलित थे, तथा कांग्रेस की शक्तियाँ संविधान में उल्लिखित होने के कारण संविधान में नागरिकों के अधिकारों का सम्मिलित करना अनावश्यक माना गया था।[1] अनुसमर्थन के समय अधिकांश राज्यों ने संविधान में अधिकार-पत्र सम्मिलित करने की माँग की तथा कुछ राज्यों का अनुसमर्थन तो इसी आश्वासन पर प्राप्त हो सका कि संविधान में शीघ्रातिशीघ्र अधिकार-पत्र सम्मिलित कर दिया जायगा। जून १७८९ में वर्जिनिया के प्रतिनिधि जेम्स मेडीसन ने, जो अपने निर्वाचकों के प्रति संविधान में अधिकार-पत्र

द्वारा अथवा तीन-चौथाई राज्यों के सम्मेलनों के द्वारा अनुसमर्थित कर दिये जायँगे (यह निर्णय कि दोनों विधियों में से कौन-सी विधि प्रयुक्त हो कांग्रेस करेगी) तब वे सब भाँति इस संविधान के अंग बन जायँगे। परन्तु इस संविधान के प्रथम अनुच्छेद की धारा (Section) नौ के प्रथम तथा चतुर्थ खण्ड (clause) में सन् १८०८ से पूर्व कोई संशोधन नहीं किया जा सकेगा तथा न किसी राज्य को उसकी सहमति के बिना सिनेट में मताधिकार की समानता से वंचित किया जा सकेगा।"

[1]इस सम्बन्ध में हैमिल्टन का यह कथन उल्लेखनीय है: "Why declare that things shall not be done which there is no power to do?"—*The Federalist*, No. xxxiv

सम्मिलित कराने के लिए वचनबद्ध थे, इस विषय से सम्बन्धित अनेक प्रस्ताव कांग्रेस में प्रस्तुत किये। अंततः कांग्रेस ने दस संशोधन अंगीकृत किये जिन्हें राज्यों के विधानमंडलों ने अनुसमर्थित कर दिया। इन सब संशोधनों को हम एक ही संशोधन के दस खण्ड कह सकते हैं, क्योंकि इन्हें सरलता से एक ही संशोधन में अन्तर्ग्रहित किया जा सकता था।

उपरोक्त दस संशोधनों में से प्रथम आठ में नागरिकों के वैयक्तिक, धार्मिक तथा सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकारों का उल्लेख है।[१] शेष दो संशोधनों में यह तथ्य स्पष्ट कर दिया गया है कि संविधान में कुछ अधिकारों के परिगणन का यह अर्थ नहीं है कि जनता को अन्य कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। जो शक्तियाँ केन्द्रीय शासन को संविधान के द्वारा प्रत्यायोजित नहीं की गई हैं, तथा जिनका राज्यों के लिए निषेध नहीं किया गया है, वे राज्यों अथवा जनता के हित में सुरक्षित मानी जावेंगी। ये दसों संशोधन कांग्रेस के दोनों सदनों द्वारा संविधान में उल्लिखित प्रक्रिया के अनुसार अंगीकृत तथा राज्यों के विधान-मंडलों के द्वारा अनुसमर्थित होने पर १५ दिसम्बर १७९१ को प्रभावी हुए।

ग्यारहवाँ तथा बारहवाँ संशोधन—संविधान में प्रथम दस संशोधन जोड़े जाने के लगभग छः वर्ष पश्चात् ग्यारहवाँ संशोधन जोड़ा गया, और उसके लगभग छः वर्ष पश्चात् बारहवाँ। ये दोनों संशोधन संविधान के कर्मकरण की व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए जोड़े गए थे। सन् १७९३ में एक वाद पर संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि संयुक्त राज्य के किसी राज्य का कोई एक नागरिक किसी दूसरे राज्य पर संघीय न्यायालयों में मुकद्दमा चला सकता है।[२] राज्यों के अधिकारों के समर्थकों ने सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय का घोर विरोध किया जिसके परिणामस्वरूप ग्यारहवाँ संशोधन अंगीकृत किया गया। इस संशोधन में यह स्पष्ट कहा गया है कि संयुक्त राज्य की न्याय-शक्ति में विधि (law) या न्याय सिद्धान्तों के ऐसे मुकदमों पर विचार

---

[१] इन अधिकारों पर विस्तृत विचार अगले एक अध्याय में किया जायगा।

[२] Judgment of the Supreme Court of the U.S.A. in Chisholm *v.* Georgia.

करने की शक्ति सम्मिलित नहीं मानी जायगी जो संयुक्त राज्य के एक राज्य के नागरिकों के द्वारा दूसरे राज्य के विरुद्ध अथवा किसी विदेशी राज्य के नागरिकों या प्रजा द्वारा संयुक्त राज्य के किसी राज्य के विरुद्ध, चलाए गए हों।[1]

ग्यारहवें संशोधन की भाँति ही बारहवें संशोधन का उद्देश्य भी सांविधानिक उपबंधों की अस्पष्टता के कारण उत्पन्न कठिनाई को दूर करना था। सन् १८०० के राष्ट्रपति-पद के निर्वाचन में जैफ़रसन और बर (Burr) को समान मत प्राप्त हुए। भविष्य में ऐसी कठिनाई उत्पन्न न होने देने के लिए संविधान में उचित व्यवस्था करना आवश्यक समझा गया। इसीलिए बारहवें संशोधन के द्वारा संविधान के द्वितीय अनुच्छेद के उस भाग में कुछ परिवर्तन किये गए जिसमें राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रणाली का उल्लेख था।[2] यह संशोधन २५ सितम्बर, १८०४ को प्रभावी हुआ।

गृह-युद्ध से सम्बन्धित संशोधन—बारहवें संशोधन के अंगीकृत किए जाने के पश्चात् अगले साठ वर्षों में संविधान में औपचारिक रीति से कोई संशोधन नहीं किया गया। सन् १८६१ में संयुक्त राज्य में सम्मिलित उत्तरी तथा दक्षिणी राज्यों में गृहयुद्ध आरंभ हुआ। गृहयुद्ध की समाप्ति पर संधि की शर्तों के रूप में जो सिद्धान्त दक्षिणी राज्यों से मनवाए गए थे, उन्हीं को तेरहवें, चौदहवें तथा पन्द्रहवें संशोधन के रूप में संविधान में सम्मिलित कर दिया गया। ये संशोधन दक्षिणी राज्यों से उनकी इच्छा के विपरीत मनवाए गए थे, और इसी कारण ये कभी भी पूर्ण रूप से प्रभावी न हो सके।

तेरहवें संशोधन के द्वारा संयुक्त राज्य में सम्मिलित राज्यों तथा उसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले सभी प्रदेशों में दासता के अन्त की घोषणा की गई है। चौदहवें संशोधन में संयुक्त राज्य की नागरिकता सम्बन्धी नीति का स्पष्टीकरण किया गया है तथा राज्यों को नागरिकों की स्वतंत्रताओं तथा अधिकारों की रक्षा करने का अनुदेश दिया गया है। इस संशोधन में ऐसे राज्यों को जो राजद्रोह या किसी अन्य गम्भीर अपराध के अतिरिक्त अन्य कारणों से पुरुष

---

[1] ग्यारहवाँ संशोधन।

[2] इस संशोधन के द्वारा किये गए परिवर्तनों का उल्लेख राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रणाली पर विचार करते समय किया जायगा।

नागरिकों को मताधिकार से वंचित करते हैं, दंडित करने की भी व्यवस्था की गई है। पन्द्रहवें संशोधन में संयुक्त राज्य तथा उसमें सम्मिलित राज्यों के द्वारा नागरिकों के मताधिकार को जाति, रंग, अथवा पूर्व दासानुबंध (previous condition of servitude) के आधार पर अपहृत था प्रतिबंधित किये जाने का निषेध किया गया है। स्पष्ट ही है कि इन तीनों संशोधनों का उद्देश्य नीग्रो लोगों के नव-प्राप्त अधिकारों का संरक्षण करना था।

सोलहवाँ संशोधन—गृहयुद्ध से सम्बन्धित संशोधनों के संविधान में जोड़े जाने के पश्चात् लगभग तैंतालीस वर्ष तक लिखित संविधान में कोई संशोधन नहीं हुआ। यह समझना गलत होगा कि इस बीच कोई संशोधन प्रस्तुत ही नहीं किए गए, परन्तु उन्हें आवश्यक बहुमत प्राप्त नहीं हो सका। सन् १९१३ में संविधान में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संशोधन जोड़ा गया। हम इसके पूर्व उल्लेख कर चुके हैं कि कांग्रेस की कर लगाने की शक्तियाँ अत्यन्त सीमित रखी गई थीं। सोलहवें संशोधन में कांग्रेस को किसी भी स्रोत से प्राप्त आय पर कर लगाने तथा एकत्र करने का अधिकार दिया गया। साथ ही यह भी उपबंध जोड़ा गया कि ऐसे कर को अन्य प्रत्यक्ष करों की भाँति विभिन्न राज्यों के बीच बाँटना अथवा उनकी जनसंख्या आदि को ध्यान में रखना भी आवश्यक न होगा।[१] कांग्रेस द्वारा आय पर लगाए गए विभिन्न करों की सूची पर दृष्टि डालने से ही इस संशोधन का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

सत्रहवाँ संशोधन—मूल संविधान में कांग्रेस के उच्च सदन, सिनेट, के सदस्यों के राज्यों के विधानमंडलों द्वारा निर्वाचित किए जाने की व्यवस्था थी। सत्रहवें संशोधन के द्वारा, जो कि सन् १९१३ में ही अंगीकृत किया गया, सिनेट के सदस्यों के जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित किए जाने की व्यवस्था की गई। यद्यपि इस परिवर्तन के लिए पर्याप्त समय से आन्दोलन किया जा रहा था परन्तु सिनेट की स्वीकृति इसके पूर्व प्राप्त न हो सकी।

मद्यनिषेध से संबंधित संशोधन—संविधान में जोड़े गए दो संशोधन, अठारहवाँ तथा इक्कीसवाँ, मद्यनिषेध (prohibition) से संबंधित हैं।

---

[१] संशोधन १६

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर अमेरिकी कांग्रेस ने यह निश्चय किया कि "एक वर्ष पश्चात् से संयुक्त राज्य व उसके अधीन सब प्रदेशों में पेय के रूप में सेवन के लिए मादक पदार्थों का विक्रय, यातायात अथवा उनका बाहर से आयात या बाहर को निर्यात निषिद्ध किया जाता है।"[१] यह संशोधन २९ जनवरी, १६१९ को प्रवर्तित किया गया। इस संशोधन के अंगीकृत किए जाने के पूर्व अनेक राज्यों ने समरूप विधियाँ बनाई हुई थीं। परन्तु चौदह वर्ष के अनुभव ने ही यह सिद्ध कर दिया कि एक इतने बड़े देश की जनता की, जिसमें अनेक जातियों तथा विभिन्न स्वभाव वाले लोग सम्मिलित हैं, आदतों में परिवर्तन करना सरल कार्य नहीं है। लोकमत भी इस संशोधन के पक्ष में न था। इन्हीं कारणों से सन् १९३२ में कांग्रेस ने दो-तिहाई बहुमत से संविधान संशोधन का एक प्रस्ताव पारित किया जिसके द्वारा अठारहवें संशोधन को रद्द कर दिया गया।[२] इस संशोधन का समर्थन करने के लिए राज्यों में नागरिकों के द्वारा विशेष रूप से निर्वाचित सम्मेलन बुलाए गए। ५ दिसम्बर को छत्तीसवें राज्य के सम्मेलन ने इस संशोधन को अनुसमर्थित कर दिया और यह उसी दिन से प्रभावी हो गया। यद्यपि इस संशोधन के द्वारा अठारहवें संशोधन द्वारा किए गए मद्यनिषेध का अन्त कर दिया गया परन्तु राज्यों को यह अधिकार दिया गया कि यदि वे चाहें तो अपने क्षेत्र में मद्यनिषेध जारी रख सकते हैं।[3]

उन्नीसवाँ तथा बीसवाँ संशोधन—जनवरी १९१९ तथा दिसम्बर १९३३ के बीच संविधान में दो बार संशोधन किए गए। ये संशोधन उन्नीसवें तथा बीसवें संशोधन हैं। पर्याप्त समय से संयुक्त राज्य में स्त्रियों को मताधिकार दिलाने के लिए आन्दोलन हो रहा था। यद्यपि सन् १९१८ के प्रारम्भिक मासों में प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) ने स्त्रियों को मताधिकार देने के लिए एक प्रस्ताव पारित कर दिया था, परन्तु सिनेट ने अपनी स्वीकृति नहीं दी। एक वर्ष पश्चात् सिनेट ने भी तत्सम्बन्धी प्रस्ताव को पारित कर दिया।

[१] अठारहवाँ संशोधन
[२] संशोधन २१ धारा (१)
[3] संशोधन २१; धारा (२)

२६ अगस्त १९२० को तीन-चौथाई राज्यों का अनुसमर्थन प्राप्त कर लेने पर संविधान में वह संशोधन जोड़ दिया गया जिसमें कहा गया था कि संयुक्त राज्य के नागरिकों के मताधिकार को संयुक्त राज्य या उसमें सम्मिलित कोई राज्य लिङ्ग भेद के कारण अपहृत या प्रतिबंधित न कर सकेगा।

सन् १९३२ तक संयुक्त राज्य में प्रचलित प्रणाली के अनुसार नवम्बर में निर्वाचित राष्ट्रपति अगले वर्ष मार्च में कार्यभार सँभालता था और उसी समय निर्वाचित कांग्रेस का प्रथम सामान्य अधिवेशन अगले वर्ष दिसम्बर में (लगभग तेरह मास बाद) होता था। इसी बीच पूर्व कांग्रेस का एक अधिवेशन होता था जिसमें चालू वर्ष का आय-व्ययक आदि स्वीकृत किया जाता था। इसे अंग्रेजी में 'लेम-डक सेशन' (Lame duck session) कहते थे। फरवरी १९३३ में प्रवर्तित बीसवें संशोधन ने इस दूषित प्रणाली का अन्त कर दिया। इस संशोधन के द्वारा राष्ट्रपति के द्वारा कार्यभार सँभालने की तिथि ४ मार्च के स्थान पर २० जनवरी कर दी गई। साथ ही यह भी व्यवस्था की गई कि नवनिर्वाचित कांग्रेस का अपने निर्वाचन के लगभग दो मास पश्चात् ही ३ जनवरी को प्रथम अधिवेशन हो। इस प्रकार 'लेम-डक' अधिवेशनों का अन्त हुआ।

अंतिम (बाईसवाँ) संशोधन—संयुक्त राज्य के संविधान में अन्तिम बार संशोधन सन् १९५१ में किया गया। इस संशोधन के द्वारा संयुक्त राज्य के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन द्वारा संस्थापित एक परम्परा को वैधानिक रूप दे दिया गया। संविधान में यह उपबन्ध जोड़ दिया गया कि कोई भी व्यक्ति राष्ट्रपति-पद के लिए दो बार से अधिक निर्वाचित नहीं किया जाएगा तथा कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसने राष्ट्रपति-पद का कार्यभार दो वर्ष तक सँभाला हो अथवा जिसने राष्ट्रपति की पदावधि के दो वर्ष तक कार्यकारी राष्ट्रपति के रूप में कार्य किया हो राष्ट्रपति-पद के लिए एक बार से अधिक निर्वाचित नहीं किया जाएगा।[१] इस संशोधन से यथार्थ स्थिति में कोई महत्वपूर्ण परि-

---

[१] संशोधन २२

वर्तन नहीं हुआ, क्योंकि संयुक्त राज्य के लगभग पौने दो सौ वर्ष के इतिहास में केवल एक ही दृष्टांत ऐसा है जब किसी व्यक्ति ने राष्ट्रपति-पद पर दो पदावधियों (terms) से अधिक कार्य किया हो । यह एक अपवाद भी कारण से रहित नहीं है । राष्ट्रपति रूजवेल्ट के तीन बार पुनर्निर्वाचित किए जाने का कारण द्वितीय महायुद्ध के कारण उत्पन्न हुई विशेष परिस्थितियाँ थीं ।

औपचारिक संशोधनों का संविधान के विकास में योग—अमेरिकी संविधान में अब तक किए गए संशोधनों पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेने के पश्चात् यह जान लेना भी आवश्यक है कि उन्होंने संविधान को किस सीमा तक प्रभावित किया है, अथवा उनका संविधान के विकास में क्या योग है । जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है, सन् १७८७ से अब तक अमेरिकी संविधान में बाईस संशोधन जोड़े गए हैं ।[२] यह संख्या स्वयमेव ही अधिक नहीं है; परन्तु तनिक विचार करने पर यह और भी कम हो जाती है । प्रथम दस संशोधनों को, तथा गृह-युद्ध से सम्बन्धित तीनों संशोधनों को एक-एक अनुच्छेद के रूप में ही जोड़ा जा सकता था । मद्यनिषेध से संबंधित दोनों संशोधनों को हम संशोधनों की संख्या से निकाल सकते हैं; क्योंकि उनमें से द्वितीय प्रथम को रद्द करता है । इस प्रकार प्रभावी संशोधनों की संख्या केवल नौ रह जाती है । इनमें से भी कुछ संशोधन निषेधात्मक हैं जिनमें संविधान के उपबंधों का स्पष्टीकरण किया गया है । अपेक्षाकृत अधिक महत्व-पूर्ण संशोधनों में हम उन संशोधनों को गिन सकते हैं, जिनमें राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का निर्वाचन पृथक रूप से किए जाने, नीग्रो लोगों और स्त्रियों को मताधिकार दिए जाने, कांग्रेस को आय-कर लगाने की शक्ति देने तथा सिनेट के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रीति से किए जाने, की व्यवस्था की गई है । परन्तु जब हम औपचारिक रूप से संविधान द्वारा संस्थापित व्यवस्था में हुए परिवर्तनों पर दृष्टि डालते हैं तो इनकी संख्या नगण्य ही प्रतीत होती है । प्रो० ऑग और रे का मत है कि राष्ट्र और राज्यों की नवीन शक्तियों और कृतियों के स्रोत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें संशोधनों पर दृष्टि न डालकर

---

[२] ये संशोधन संविधान के अन्त में पृथक अनुच्छेदों के रूप में जोड़े गए हैं । संविधान के मूल रूप में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है ।

संविधियों (statutes), कार्यपालिका के कार्यों, न्यायिक विनिश्चयों तथा प्रथाओं की ओर देखना चाहिए ।[१] उनके इस कथन की पुष्टि मनरो के इस कथन से होती है—"संविधान में संशोधन करना प्रथम उपाय न होकर एक ऐसा अन्तिम उपाय है जिसका प्रयोग वह प्राप्त करने के लिए किया जाता है जो संविधि, प्रथा अथवा न्यायिक व्याख्या से प्राप्त नहीं किया जा सकता।"[२]

संविधियों (Statutes) के द्वारा विकास

संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान बनाने के लिए विभिन्न राज्यों के जो प्रतिनिधि फ़िलाडेल्फ़िया में एकत्र हुए थे वे इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे कि वे सब कालों और सब अवस्थाओं के लिए पहले से ही व्यवस्था नहीं कर सकते। यही कारण था कि उन्होंने विवरणात्मक समस्याओं को हाथ में न लेकर केवल शासन-प्रणाली के आधारभूत सिद्धान्त मात्र निश्चित करना ही उचित समझा, और अधिकांश विषयों पर अनुपूरक विधियाँ बनाने का कार्य कांग्रेस को सौंप दिया। अनेक विषयों पर तो संविधान-निर्माताओं ने संविधान के उपबंधों (provisions) के आधार पर अनुपूरक विधियाँ बनाने का कार्य राज्यों के विधानमंडलों को ही सौंप दिया है। इसी कारण समय-समय पर संघीय कांग्रेस और राज्यों के विधानमंडलों के द्वारा बनाई गई विधियों से संविधान का पर्याप्त विकास हुआ है।

उपरोक्त कथन की पुष्टि में अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, परन्तु यहाँ पर केवल कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण देना ही सम्भव होगा। अमेरिकी संविधान में संघीय कांग्रेस के दोनों सदनों की रचना पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है,

---

[१] "For the sources of the newer powers and functions of both nation and states today, one must look not to amendments, but to statutes, executive actions, judicial decisions and usage."—Frederick A. Ogg, and P. Orman Ray, *op. cit.*, p. 47.

[२] "Amending the constitution, far from being a first recourse, is a method of last resort for obtaining what cannot be had by statute, by usage, or by judicial interpretation."—Munro, W. B. *op. cit.*, p. 87.

परंतु सिनेट और प्रतिनिधि सभा दोनों के सदस्यों की निर्वाचन-विधि, निर्वाचन का समय, स्थान आदि निश्चित करने का कार्य राज्यों के विधानमंडलों को सौंपा गया है। कांग्रेस को इस सम्बन्ध में (सिनेट के सदस्यों के निर्वाचन स्थल के अतिरिक्त) राज्यों के विधानमंडलों द्वारा की गई व्यवस्था में परिवर्तन करने अथवा नवीन व्यवस्था करने का अधिकार दिया गया है।[1] कांग्रेस ने सन् १८४२ और सन् १८६६ की संविधियों के द्वारा इस सम्बन्ध में विस्तृत नियम बनाए हैं। इसी प्रकार संविधान में यद्यपि शासन-विभागों (Executive departments) का दो स्थानों पर उल्लेख किया गया है, परन्तु उसमें यह कहीं उल्लेख नहीं है कि उनकी संख्या कितनी होगी, उनका संगठन किस प्रकार होगा अथवा उनके क्या कृत्य होंगे। इन सब बातों का निर्णय कांग्रेस द्वारा बनाई गई विधियों तथा प्रथाओं के द्वारा ही हुआ है। तृतीय अनुच्छेद की प्रथम धारा में कांग्रेस को निम्न संघीय न्यायालय (Subordinate federal courts) स्थापित करने की शक्ति दी गई है। इन समस्त न्यायालयों के संगठन की पद्धति तथा इनकी प्रक्रिया आदि का निर्णय कांग्रेस द्वारा निर्मित विधियों के द्वारा ही किया गया है। इसी प्रकार विधि-निर्माण और आय-व्ययक संबंधी प्रक्रिया के संबंध में भी संविधान मौन है। यह एक रोचक तथ्य है कि विधि-निर्माण की पद्धति भी विधियों और प्रथाओं द्वारा ही निश्चित हुई है।

इन उदाहरणों पर दृष्टि डालने के पश्चात् तथा इस तथ्य को ध्यान में रखने पर कि इन जैसे अन्य अनेक उदाहरण सरलता से प्रस्तुत किये जा सकते हैं हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संविधियों ने भी अमेरिकी संविधान के विस्तार और विकास में पर्याप्त योग दिया है।

प्रथाओं और रूढ़ियों के द्वारा विकास

प्रथाओं और रूढ़ियों के प्रभाव से किसी देश की शासन-प्रणाली मुक्त नहीं है; केवल उस प्रभाव की मात्रा में अन्तर है। जहाँ ब्रिटेन में संविधान का अधिकांश भाग अलिखित होने के कारण प्रथाओं और रूढ़ियों का महत्त्व बहुत अधिक है, वहाँ अन्य देशों में भी उनका पर्याप्त महत्त्व है। प्रथाओं और

[1] अनुच्छेद १ धारा (४)

रूढ़ियों ने अमेरिकी संविधान के विकास, विस्तार और परिवर्धन में भी पर्याप्त योग दिया है। कुछ विषयों में तो प्रथाओं और रूढ़ियों के कारण लिखित संविधान के उपबंधों का अर्थ बिल्कुल बदल गया है। इसी कारण लिखित संविधान का अध्ययन करने से कोई व्यक्ति अमेरिकी शासन-प्रणाली के वास्तविक स्वरूप से परिचित नहीं हो सकता।[1]

प्रथाओं और रूढ़ियों ने अमेरिकी संविधान के विकास में किस प्रकार योग दिया है, यह बात कुछ महत्त्वपूर्ण प्रथाओं पर दृष्टि डालने से भली भाँति स्पष्ट हो जाएगी। अमेरिकी संविधान में राष्ट्रपति-पद के निर्वाचन के लिये किसी नामांकन (Nomination) की प्रक्रिया को आवश्यक नहीं बताया गया है। परन्तु राजनीतिक दलों के प्रादुर्भाव के कारण आज राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक अपनी इच्छानुसार किसी व्यक्ति को निर्वाचित करने के लिए स्वतन्त्र नहीं होते। उन्हें राजनीतिक दलों द्वारा नामांकित प्रत्याशियों में से ही एक के पक्ष में मत देना होता है। यह प्रक्रिया संविधान-निर्माताओं की इच्छा के प्रतिकूल है, और पूर्णतः प्रथाओं के प्रभाव का परिणाम है। इसी प्रकार संविधान में यह उपबंध कहीं नहीं है कि प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) के सदस्य उसी निर्वाचन क्षेत्र के निवासी हों जहाँ से वे निर्वाचित होते हैं, परन्तु अब यह एक सुस्थिर परम्परा बन गई है कि वे उसी निर्वाचन क्षेत्र के निवासी हों जिससे वे सदन के सदस्य निर्वाचित होते हैं। संविधान में मन्त्रिमण्डल (Cabinet) जैसी किसी संस्था के अस्तित्व का उल्लेख नहीं है, परन्तु कोई भी आज उसके अस्तित्व को मानने से इन्कार नहीं कर सकता। कांग्रेस की समिति-प्रणाली (Committee system) भी बहुत बड़ी सीमा तक प्रथाओं और रूढ़ियों का ही परिणाम है। यह उदाहरण प्रथाओं और रूढ़ियों के सांविधानिक विकास में योग पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। ऐसे ही अनेक अन्य उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यद्यपि प्रथाओं और रूढ़ियों से

---

[1]अमेरिकी संविधान पर प्रथाओं के प्रभाव के लिये देखिए: H. W. Horwill, *The Usages of the American Constitution*, तथा C.E. Merriam, The Written Constitution and the Unwritten Attitude.

संविधान का विकास अवश्य होता है, परन्तु वैधानिक दृष्टि से उनका महत्त्व नगण्य-सा ही होता है। प्रखर व्यक्तित्व वाला कोई व्यक्ति सुस्थिर एवं सुदृढ़तम परम्पराओं की भी अवहेलना कर सकता है। उदाहरणार्थ राष्ट्रपति विल्सन ने कांग्रेस में उपस्थित होकर, भाषण देकर तथा अपनी पदावधि में विदेश-यात्रा कर अत्यन्त सुदृढ़ प्रथाओं को तोड़ा था। इसी प्रकार राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने तृतीय बार राष्ट्रपति-पद के लिये निर्वाचन लड़ कर लगभग डेढ़ सौ वर्ष से चली आई परम्परा का अतिक्रमण किया था।

न्यायिक व्याख्याओं के द्वारा विकास

संयुक्त राज्य के सांविधानिक विकास से परिचित प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करेगा कि अमेरिकी संविधान के विकास में सर्वाधिक योग न्यायिक निश्चयों का रहा है। यद्यपि न्यायाधीश यही कहते हैं कि वे केवल संविधान के उपबंधों की व्याख्या करते तथा उनको लागू करते हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि संविधान की धाराओं का जैसा निर्वचन उन्होंने किया है वह स्वयं संविधान-निर्माताओं को भी आश्चर्यचकित कर देने के लिये पर्याप्त है। इस सम्बन्ध में चार्ल्स ह्यूग्ज़ का कथन उल्लेखनीय है। उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय के विधि विद्यालय में भाषण देते हुए कहा था—"हम सब संविधान के अधीन हैं, परन्तु संविधान वही है जिसे न्यायाधीश कहें यह संविधान है।"[१] यद्यपि इस कथन को हम किंचित् अत्युक्तिपूर्ण कह सकते हैं क्योंकि न्यायाधीशों को अपना विनिश्चय संविधान की ही किसी न किसी धारा पर आधारित करना पड़ता है, परन्तु यह तथ्य कि समय-समय पर न्यायालयों के द्वारा संविधान के उपबंधों की विभिन्न प्रकार से, और कभी-कभी विरोधी व्याख्या की गई है उपर्युक्त कथन की सत्यता की ओर इंगित करता है।

सांविधानिक विकास में सर्वोच्च न्यायालय का महत्त्वपूर्ण अनुदाय स्पष्ट करने के लिये अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है; उसके लिए केवल एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। न्यायिक प्रधानता (Judicial Supremacy) को संयुक्त राज्य के संविधान का एक विशिष्ट लक्षण माना जाता है। परन्तु

---

१ "We are under the constitution but the constitution is what judges say it is."—Charles E. Hughes, *Addresses*, p. 139

यह एक विचित्र सी लगने वाली बात है कि संविधान में इसका स्पष्ट रूप से कहीं उल्लेख नहीं है। न्यायिक प्रधानता न्यायालयों की विधानमंडल तथा अन्य शासनांगों के ऐसे निश्चयों को जो संविधान का अतिक्रमण करते हों रद्द घोषित करने की शक्ति का परिणाम है। संविधान की किसी धारा में न्यायपालिका को यह शक्ति स्पष्ट रूप से नहीं दी गई है। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश जॉन मार्शल ने यह घोषणा की कि संविधान के अनुसार न्यायपालिका को निहित रूप से ऐसा करने का अधिकार प्राप्त है।[१] इस प्रकार न्यायिक प्रधानता को अमेरिकी शासन-व्यवस्था का एक आवश्यक अंग बनाने का श्रेय न्यायिक निर्णयों को ही है, किसी सांविधानिक उपबंध या संशोधन को नहीं।

यह तथ्य सर्वविदित है कि अमेरिकी संविधान के प्रवर्तन के समय से अब तक कांग्रेस की शक्तियों में निरंतर वृद्धि होती रही है। मुख्यतः यह वृद्धि जॉन मार्शल द्वारा प्रतिपादित निहित शक्तियों (Implied powers) के सिद्धान्त का परिणाम है। संविधान में कांग्रेस को व्यापार को नियमित करने, कर लगाने तथा एकत्र करने एवं सेना का निर्माण करने और उसका पोषण करने की शक्तियाँ दी गई हैं। परंतु इन शक्तियों का जितना व्यापक अर्थ सर्वोच्च न्यायालय ने लगाया है वह किसी को भी चकित कर देने के लिए पर्याप्त है।

[१] देखिए : Marbury *v.* Madison.

अध्याय ४

संविधान की प्रकृति, मूल सिद्धान्त तथा विशेषताएँ

जैसा कि इस पुस्तक के आरम्भ में कहा गया है, विश्व के वर्तमान संविधानों में संयुक्त राज्य के संविधान का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। लार्ड ब्राइस के कथनानुसार तो संयुक्त राज्य के संविधान को लिखित संविधानों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।[1] संयुक्त राज्य के संविधान की श्रेष्ठता इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि संयुक्त राज्य की आभ्यंतरिक तथा वाह्य स्थिति में असंभावित परिवर्तन हो जाने पर भी बिना उसके स्वरूप में अथवा उसके मूल सिद्धान्तों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये ही उसे बदली हुई परिस्थितियों के उपयुक्त बनाया जा सका। संयुक्त राज्य की शासन-प्रणाली पर विचार आरंभ करने के पूर्व यह उचित होगा कि हम उसके संविधान की प्रकृति, उसके मूल सिद्धान्तों तथा उसकी विशेषताओं पर संक्षेप में विचार करें।

सामान्यतः संविधानों को उनकी प्रकृति के आधार पर लिखित और अलिखित एवं नम्य और अनम्य नामक वर्गों में विभक्त किया जाता है। संयुक्त राज्य का संविधान इनमें से लिखित और अनम्य वर्गों में आता है। परन्तु एक वर्ग में आने वाले संविधानों में भी पर्याप्त अन्तर होता है। इसीलिए सर्वप्रथम हम अमेरिकी संविधान के लिखित तथा अनम्य स्वरूप पर विचार करेंगे। उसके पश्चात् हम संविधान के मूल सिद्धान्तों तथा उसकी विशेषताओं पर दृष्टिपात करेंगे।

अत्यधिक संक्षिप्त लिखित संविधान

संयुक्त राज्य के संविधान की प्रायः लिखित संविधानों की कोटि में गणना की जाती है। इसका कारण यह है कि संयुक्त राज्य में शासन के मूल सिद्धान्त,

---

[1] "It ranks above every other written constitution."—Bryce, James, *American Commonwealth*, Vol. I, p. 28.

विभिन्न शासनांगों के कार्य तथा कार्यक्षेत्र तथा नागरिकों के अधिकारों आदि का एक लेखपत्र में उल्लेख है। यह लेखपत्र जैसा कि पिछले अध्याय में उल्लेख किया गया है, सन् १७८७ में फ़िलाडेल्फ़िया सम्मेलन में एकत्र प्रतिनिधियों के द्वारा अंगीकृत किया गया था। समय-समय पर इस लेखपत्र के उपबंधों में जो संशोधन किए गए हैं अथवा जो नए उपबंध जोड़े गए हैं वे सब लिखित संविधान के भाग माने जाते हैं। संयुक्त राज्य में शासन-व्यवस्था का स्वरूप संघीय है और एक संघीय शासन वाले देश के लिए संविधान का लिखित होना अतीव आवश्यक होता है।

अन्य लिखित संविधानों से तुलना करने पर हम देखते हैं कि संयुक्त राज्य का संविधान अत्यधिक संक्षिप्त है। जहाँ कनाडा के संविधान में १४७ अनुच्छेद, आस्ट्रेलिया के संविधान में १२८ अनुच्छेद, दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में १५३ अनुच्छेद तथा भारत के संविधान में ३९५ अनुच्छेद तथा ८ अनुसूचियाँ हैं, वहाँ संयुक्त राज्य के मूल संविधान में केवल सात अनुच्छेद हैं। संयुक्त राज्य के संविधान के इतना संक्षिप्त होने का कारण यह है कि संविधान में विवरण सम्बन्धी बातों का उल्लेख नहीं है। इनके सम्बन्ध में विनिश्चय करने का कार्य संविधान-निर्माताओं ने कांग्रेस पर छोड़ दिया था। कांग्रेस ने समय-समय पर विधियाँ बना कर संविधान को विकसित किया है। कालांतर में प्रथाओं और न्यायिक निर्णयों ने भी सांविधानिक विकास में पर्याप्त योग दिया है। यद्यपि प्रारंभ में संविधान की संक्षिप्तता तथा उनके उपबन्धों के सामान्य स्वरूप (general character) की पर्याप्त आलोचना की गई थी परन्तु प्रो॰ ज़िंक के मतानुसार संविधान को स्थायित्व प्रदान करने का बहुत कुछ श्रेय इन्हीं तत्वों को दिया जाना चाहिए।[१]

---

[१] "...in general it is fair to state that the brevity of the constitution has been as asset rather than a liability......Much of the permanence of the constitution of 1787 may be attributed to its brevity which in turn goes back to the very general character of most of its provisions."—Harold Zink, *Government and Politics in the United States*, p. 26.

जब हम संयुक्त राज्य के संविधान को लिखित संविधान कहते हैं, तब हमें यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि आज किसी भी देश का संविधान पूर्णतः लिखित अथवा पूर्णतः अलिखित नहीं है। ब्रिटिश संविधान का भी, जिसे अलिखित संविधानों में अग्रगण्य माना जाता है, एक महत्त्वपूर्ण भाग लिपिबद्ध है। इसी प्रकार प्रत्येक लिखित संविधान वाले देश में अनेक ऐसी परंपराएँ और प्रथाएँ बन गई हैं, जिनका महत्त्व लगभग सांविधानिक उपबंधों के समान ही है और जिनका अतिक्रमण करने का साहस किसी के लिए भी एक दुष्कर कार्य होगा। संयुक्त राज्य में भी ऐसी अनेक प्रथाएँ और परम्पराएँ निर्मित हो गई हैं और इस कारण अमेरिकी संविधान की गणना लिखित संविधानों में करते समय हमें इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि यह मुख्यतः लिखित है, अर्थात् समस्त महत्त्वपूर्ण बातें लिखित हैं, पूर्णतः नहीं।

अनम्य किन्तु विकासशील संविधान

अधिकांश लिखित संविधानों की भाँति संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान भी अनम्य (Rigid) संविधानों की कोटि में ही आता है। सांविधानिक संशोधन की जिस प्रक्रिया का संविधान में उल्लेख है,[1] वह स्पष्टतया सामान्य विधि निर्माण प्रक्रिया से भिन्न है। यही अंतर अनम्य (Rigid) और नम्य (Flexible) संविधानों के बीच भेद का आधार होता है। परन्तु अमेरिकी संविधान अनम्य होते हुए भी अत्यधिक विकासशील तथा गत्यात्मक सिद्ध हुआ है। मनरो, ज़िंक तथा अन्य अनेक लेखकों के अनुसार अमेरिकी संविधान व्यवहार में उतना ही नम्य सिद्ध हुआ है जितना ब्रिटिश संविधान। इसका कारण यह है कि अमेरिकी संविधान में हुए अधिकांश संशोधन सांविधानिक उपबंधों में बिना कोई संशोधन किये ही हुए हैं।[2] इस तथ्य पर पिछले अध्याय में संविधान के विकास पर विचार करते समय पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका

---

[1] देखिए, अनुच्छेद ५

[2] "It may sound like a paradox, but it is true, that most of the amending has been done without adding amendments."—Munro, W.B., *op. cit.*, p. 75.

है। यहाँ केवल अमेरिकी संविधान की विकासशीलता तथा गत्यात्मकता (Dynanism) की ओर इङ्गित करके संविधान में औपचारिक संशोधन की प्रक्रिया का उल्लेख कर देना मात्र ही पर्याप्त होगा।

संविधान में औपचारिक संशोधन की प्रक्रिया—संविधान में उल्लिखित संशोधन की प्रक्रिया को हम दो अवस्थाओं में विभक्त कर सकते हैं: प्रस्थापना (proposal) तथा अनुसमर्थन (ratification)। संविधान में प्रस्थापना तथा अनुसमर्थन दोनों की दो-दो पद्धतियों का उल्लेख है। संविधान में निम्न दो विधियों में से किसी एक के अनुसार संशोधन प्रस्तावित किए जा सकते हैं:

(१) कांग्रेस स्वयं संविधान में संशोधन प्रस्तावित कर सकती है, परन्तु इसके लिए कांग्रेस के दोनों सदनों द्वारा, अलग-अलग, उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से संशोधन का प्रस्ताव पारित किया जाना आवश्यक है।

(२) यदि संयुक्त राज्य में सम्मिलित राज्यों में से दो-तिहाई राज्यों के विधानमण्डल अनुरोध करें तो कांग्रेस एक सम्मेलन आमन्त्रित करेगी जिसे संविधान में संशोधन प्रस्तावित करने का अधिकार होगा।

कांग्रेस अथवा दो-तिहाई राज्यों के विधान मण्डलों के अनुरोध पर आमंत्रित सम्मेलन के द्वारा संशोधन का प्रस्ताव पारित कर दिए जाने पर उसका राज्यों द्वारा अनुसमर्थन होना आवश्यक होता है। अनुसमर्थन के लिए भी संविधान में दो विधियों का उल्लेख है। संशोधन तभी प्रभावी हो सकता है जब:

(१) संशोधन का प्रस्ताव तीन-चौथाई राज्यों के विधानमंडलों द्वारा अनुसमर्थित किया जाय; अथवा

(२) संशोधन के प्रस्ताव को तीन-चौथाई राज्यों के सम्मेलनों का अनुसमर्थन प्राप्त हो जाय।

इस प्रकार संविधान में संशोधन करने की चार रीतियाँ हैं: (१) कांग्रेस द्वारा प्रस्थापना तथा तीन-चौथाई राज्यों के विधान मंडलों द्वारा अनुसमर्थन; (२) कांग्रेस द्वारा प्रस्थापना तथा तीन-चौथाई राज्यों के सम्मेलनों द्वारा अनुसमर्थन; (३) दो-तिहाई राज्यों के विधान मंडलों के अनुरोध पर बुलाए गए सम्मेलन के द्वारा प्रस्थापना तथा तीन-चौथाई राज्यों के विधानमंडलों के द्वारा अनुसमर्थन;

तथा (४) दो-तिहाई राज्यों के विधानमंडलों के अनुरोध पर कांग्रेस द्वारा आमंत्रित सम्मेलन के द्वारा प्रस्थापना तथा तीन-चौथाई राज्यों के सम्मेलनों के द्वारा अनुसमर्थन।

यद्यपि संविधान में संशोधन की इन चार विधियों का उल्लेख है परन्तु व्यवहार में अब तक संविधान में किये गए केवल एक के अतिरिक्त समस्त संशोधन प्रथम विधि के द्वारा हुए हैं। केवल इक्कीसवें संशोधन के प्रस्ताव में उसके विवादग्रस्त स्वरूप के कारण कांग्रेस ने उसके तीन-चौथाई राज्यों के सम्मेलनों के द्वारा अनुसमर्थन की व्यवस्था की थी। इस प्रकार अब तक संशोधन की उपरोक्त चार विधियों में से केवल दो—प्रथम तथा द्वितीय—का ही प्रयोग हुआ है।

अन्य देशों के संविधानों में संशोधन करने की पद्धति से तुलना करने पर हम पाते हैं कि अमेरिका के संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है। ब्रिटिश संविधान में पार्लमेंट सामान्य विधेयक पारित कर संशोधन कर सकती है। सोवियत सङ्घ के संविधान में केवल सर्वोच्च सोवियत के दोनों सदन दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित कर संशोधन कर सकते हैं। स्विट्ज़रलैंड में यद्यपि सांविधानिक संशोधन के प्रस्तावों पर कैंटनों की जनता का अनुसमर्थन प्राप्त करना आवश्यक होता है; परन्तु उसके लिए तीन-चौथाई बहुमत की आवश्यकता नहीं होती। भारतीय संविधान के अनेक भागों में संसद अकेली ही संशोधन कर सकती है और कुछ भागों में संशोधन करने के लिए आधे राज्यों का अनुसमर्थन प्राप्त करना होता है। इन सभी देशों के संविधानों की तुलना में अमेरिकी संविधान में संशोधन करना अधिक कठिन और दुष्कर कार्य है। यही कारण है कि अमेरिकी संविधान में पिछले डेढ़ सौ वर्षों में केवल बारह बार संशोधन हुए हैं जबकि भारतीय संशोधन को केवल, छः वर्ष में ही दस बार संशोधित किया गया है। संविधान में उल्लिखित संशोधन की प्रक्रिया के अत्यन्त जटिल होने के कारण अमेरिकी संविधान का विकास अनौपचारिक मार्गों से हुआ है।

संविधान की रूढ़िवादिता (Conservatism)

अनेक लेखकों ने अमेरिकी संविधान को एक रूढ़िवादी (Conservative) संविधान घोषित किया है—यद्यपि इस सम्बन्ध में यह तथ्य स्मरण रखना

उचित होगा कि अपने निर्माण के समय यह एक प्रगतिवादी संविधान माना जाता था। इसे मुख्यतः दो कारणों से रूढ़िवादी घोषित किया जाता है। प्रथम, इसलिए कि इसमें वैयक्तिक सम्पत्ति के संरक्षण की व्यवस्था की गई है। निश्चय ही आज के समाजवादी आलोचक किसी ऐसे संविधान को जो वैयक्तिक सम्पत्ति को एक पवित्र संस्था मानता है प्रगतिवादी नहीं मान सकते। अमेरिकी संविधान को इसलिए भी रूढ़िवादी माना जाता है कि संविधान-निर्माताओं ने संयुक्त राज्य के लिए जनतांत्रिक शासन-व्यवस्था अंगीकृत करते हुए भी अत्यन्त सावधानी से काम लिया। संविधान में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के उपकरणों (लोक-निर्णय, उपक्रम, तथा प्रत्यावर्तन) में से किसी की व्यवस्था नहीं है। न केवल इतना ही वरन् मूल संविधान में कांग्रेस के द्वितीय सदन तथा राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था की गई थी। इससे हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि संविधान-निर्माता जनतांत्रिक सिद्धांतों में पूरी तरह विश्वास नहीं करते थे। अमेरिकी राज्यों की स्वातंत्र्य-घोषणा की तुलना में अमेरिकी संविधान की अधिक संयत भाषा भी संविधान-निर्माताओं की रूढ़िवादिता की ही ओर संकेत करती है।

संघीय शासन

अमेरिकी संविधान की प्रस्तावना में संविधान-निर्माण के उद्देश्यों का उल्लेख करते समय सर्वप्रथम 'एक अधिक पूर्ण सङ्घ' बनाने की चर्चा की गई है।[१] वस्तुतः संयुक्त राज्य के संविधान के द्वारा न केवल आधुनिक काल के संघीय शासनों में ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन शासन की स्थापना ही हुई, वरन् भावी सङ्घ-राज्यों के लिए एक आदर्श व्यवस्था की स्थापना भी हुई। अमेरिकी संविधान के प्रवर्तित किए जाने के पश्चात् जितने भी सङ्घ-राज्यों का निर्माण हुआ है उन सभी ने न्यूनाधिक मात्रा में अमेरिकी व्यवस्था का अनुकरण अवश्य किया है।

---

[१] "We, the people of the United States, in order to form a more perfect union...do ordain and establish this constitution for the United States of America."—Article I of *The U.S. Constitution.*

सुप्रसिद्ध ब्रिटिश विधिवेत्ता प्रो० डाइसी ने सङ्घ राज्य के निर्माण के लिए आवश्यक तत्वों की चर्चा करते हुए लिखा है—"प्रस्तावित राज्यों के लोगों में बहुत से उद्देश्यों के लिए एक राष्ट्र बनाने की आकांक्षा होना चाहिए, परन्तु अपने राज्यों अथवा कैंटनों के व्यक्तिगत अस्तित्व को समर्पण करने की भावना नहीं होनी चाहिए।"[१] अमेरिकी संविधान के निर्माण-काल की परिस्थितियों पर दृष्टि डालने से हम स्पष्टतया देखते हैं कि ब्रिटिश दासता से मुक्त हुए विभिन्न राज्यों के लोगों में राष्ट्रीय एकता की आकांक्षा तो थी परन्तु उनमें अपने राज्य के "वैयक्तिक अस्तित्व को बनाये रखने का निश्चय" भी था। यही कारण है कि वे एक वास्तविक सङ्घ राज्य का निर्माण करने में सफल हो सके।

सङ्घीय व्यवस्था के तीन आवश्यक लक्षण माने जाते हैं। ये लक्षण हैं—संविधान की प्रधानता, शक्तियों का वितरण तथा सङ्घीय न्यायपालिका का संविधान की व्याख्या करने का अधिकार।[२] संयुक्त राज्य के संविधान में ये लक्षण सर्वाधिक मात्रा में पाए जाते हैं और इसी कारण संयुक्त राज्य के संविधान को विश्व का सर्वाधिक पूर्ण सङ्घीय संविधान कहा जाता है। हम संक्षेप में यह देखेंगे कि ये लक्षण संयुक्त राज्य के संविधान में किस सीमा तक वर्तमान हैं।

संविधान की सर्वोपरिता—संयुक्त राज्य का संविधान "संयुक्त राज्य की सर्वोच्च विधि"[३] है, जिसका कोई भी शासनांग, अभिकरण या नागरिक अतिक्रमण नहीं कर सकता। सङ्घीय न्यायालय के न्यायाधीश संविधान का संरक्षण करने के लिए वचनबद्ध होते हैं और प्रत्येक विवाद का निर्णय सांविधानिक उपबन्धों के आधार पर करते हैं। वे ऐसी किसी भी विधि को, वह सङ्घीय शासन की हो या किसी राज्य के शासन की, मान्यता देने से इन्कार कर देते हैं जो संविधान के प्रतिकूल हो और फलस्वरूप वह विधि रद्द हो जाती है। इसी प्रकार किसी भी सङ्घीय शासनांग अथवा किसी राज्य के शासन का कोई भी ऐसा कार्य जो संविधान का अतिक्रमण करता हो सङ्घीय न्यायालय द्वारा अवैध

१ Dicey, A. V., *Law of the Constitution*, pp. 137-38.

२ Strong, C.F., *Modern Political Constitutions*, p. 103.

३ "The supreme law of the land."

घोषित कर दिया जायगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि संयुक्त राज्य में न केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से ही, वरन् व्यवहार में भी संविधान को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

शक्ति-वितरण—सङ्घीय व्यवस्था का दूसरा आवश्यक लक्षण शक्ति-वितरण होता है। संयुक्त राज्य के संविधान में सङ्घीय शासन की शक्तियों का स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है और शेष समस्त शक्तियों को राज्यों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत घोषित कर दिया गया है। अपने-अपने क्षेत्राधिकार में सङ्घ और राज्य दोनों ही संप्रभु हैं और एक दूसरे के क्षेत्रों में अनुचित हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

प्रो० मनरो का मत है कि अमेरिकी संविधान के निर्माता केन्द्र और राज्य दोनों की सरकारों को सशक्त रखना चाहते थे। साथ ही वे यह नहीं चाहते थे कि उनमें से कोई दूसरे की शक्तियों का अतिक्रमण करे। इसीलिए उन्होंने सङ्घीय शासन को विस्तृत शक्तियाँ दीं, परन्तु उनको निर्बन्धित करना भी नहीं भूले।[१] कालान्तर में न्यायिक निर्णयों के द्वारा सङ्घीय शासन की शक्तियों में अत्यधिक वृद्धि हुई, और आज ऐसी स्थिति आ गई है कि संविधान में उल्लिखित सङ्घीय शासन की शक्तियों से सङ्घीय शासन द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। परन्तु यह तथ्य ध्यान में रखना आवश्यक है कि सङ्घीय शासन की नव-प्राप्त शक्तियों का आधार संविधान में उल्लिखित शक्तियाँ ही हैं। इस सम्बन्ध में एक अन्य स्मरणीय बात यह भी है कि सङ्घीय शासन की शक्तियों में इतनी अधिक वृद्धि हो जाने पर भी राज्यों द्वारा प्रयुक्त शक्तियाँ संख्या या महत्व किसी दृष्टि से महत्वरहित नहीं हैं।[२]

---

[१] "They wanted strong central government and strong state governments. So they gave large powers to the new federal government but took care to limit these powers."—Munro, W. B, *op. cit.*, p. 63.

[२] केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्ति-वितरण के लिए देखिए इस पुस्तक का पाँचवाँ अध्याय (संयुक्त राज्य की सङ्घीय व्यवस्था)

न्यायपालिका का प्राधिकार—सङ्घीय व्यवस्था का तीसरा आवश्यक लक्षण है न्यायपालिका को संविधान का संरक्षण करने का अधिकार होना। यद्यपि संविधान-निर्माताओं ने स्पष्टत: सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का संरक्षकत्व प्रदान नहीं किया था; परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने सांविधानिक उपबन्धों की इस प्रकार व्याख्या की कि यह अधिकार उसे प्राप्त हो गया। अन्य शासनांगों तथा जनमत की सहमति के कारण सर्वोच्च न्यायालय वस्तुत: संविधान का संरक्षक बन गया है। इसमें कोई संशय नहीं है कि संयुक्त राज्य का सर्वोच्च न्यायालय संसार के सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न न्यायालयों में है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संयुक्त राज्य में सङ्घीय व्यवस्था का यह तीसरा आवश्यक लक्षण भी विद्यमान है।

मेरियट ने उपर्युक्त तीन लक्षणों के अतिरिक्त दो अन्य लक्षणों को सङ्घीय व्यवस्था के लिए आवश्यक माना है। ये लक्षण हैं—संविधान का लिखित होना तथा साथ ही उसका अनम्य भी होना।[1] हम देख चुके हैं कि संयुक्त राज्य का संविधान इन दोनों लक्षणों से भी युक्त है। इसी कारण उसे "सर्वाधिक पूर्ण सङ्घीय संविधान" कहा जाता है।

गणतांत्रिक प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र

अमेरिकी शासन-प्रणाली की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी जनतांत्रिक प्रकृति है। सन् १७७६ की स्वातंत्र्य-घोषणा में कहा गया था कि सरकारों का निर्माण नागरिकों के अनपहरणीय अधिकारों की रक्षा के हेतु होता है और सरकारों को उनकी उचित शक्तियाँ शासितों की सहमति से प्राप्त होती हैं। जब कभी कोई शासन इन उद्देश्यों का विघातक बन जाए तब जनता को यह अधिकार है कि वह उसको बदल दे अथवा उसका अंत कर दे और एक ऐसे नए शासन की स्थापना करे जिससे उसको अपनी सुरक्षा तथा कल्याण के स्थायी रहने की सर्वाधिक आशा हो। स्वातंत्र्य-घोषणा की यह स्पष्ट उक्ति लोक-प्रभुता (popular sovereignty) के सिद्धान्त का स्पष्ट और प्रबल समर्थन करती है। सन् १७८७ में संविधान-निर्माताओं ने भी लोक-प्रभुता के इस सिद्धान्त को

---

[1] Marriot, *The Mechanism of Modern State*, Vol. II, pp. 409-10.

मान्यता दी। यही कारण है कि संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है : "हम संयुक्त राज्य के लोग...इस संविधान की रचना तथा स्थापना करते हैं।"[1] अमेरिकी राजनीतिज्ञ और लेखक अपने देश की शासन-प्रणाली के जनतांत्रिक स्वरूप पर विशेष बल देते हैं। यहाँ तक कि जब सन् १९१७ में संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनी परम्परागत तटस्थता की नीति को त्याग कर महायुद्ध में प्रवेश किया था तब राष्ट्रपति विल्सन ने "विश्व को प्रजातंत्र के लिए सुरक्षित करने के लिए युद्ध" का नारा लगाया था।

वर्तमान काल में राज्यों के बड़े आकार के कारण जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से शासन का संचालन असंभव-सा हो गया है। इसी कारण प्रजातंत्र राज्यों में लोकतंत्र के प्रतिनिधिमूलक स्वरूप को अपनाया गया है। संयुक्त राज्य में भी संविधान के द्वारा प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र की व्यवस्था की गई है। यद्यपि अमेरिका के कुछ राज्यों में अभी भी प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के कुछ उपकरणों, यथा लोकनिर्णय, उपक्रम और प्रत्यावर्तन का प्रयोग होता है; परन्तु संघीय संविधान में उनकी व्यवस्था नहीं है। संयुक्त राज्य में जनता की "इच्छा" को उसके प्रतिनिधि ही व्यक्त करते हैं। यदि किसी निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाता यह अनुभव करते हैं कि उनका प्रतिनिधि उनकी इच्छाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करता तो वे अगले निर्वाचन में उसे अपदस्थ कर दूसरा प्रतिनिधि निर्वाचित कर सकते हैं।

संयुक्त राज्य में राज्य का प्रधान कोई वंशानुगत राजा या नरेश नहीं होता। जनता के द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति ही संयुक्त राज्य का राज्याध्यक्ष होता है। गणतांत्रिक शासन-प्रणाली का यही प्रधान लक्षण है। संविधान-निर्माता गणतांत्रिक शासन-प्रणाली में कितना अधिक विश्वास रखते थे यह इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने न केवल केन्द्र के लिए गणतांत्रिक शासन-व्यवस्था को ही उपयुक्त समझा वरन् संविधान में यह उपबंध भी सम्मिलित कर दिया

---

[1] वस्तुस्थिति यह है कि संविधान न तो जनता के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित हुआ था और न उसके द्वारा अनुसमर्थित किया गया था। परन्तु थोड़े ही समय में वह जनवा की श्रद्धा का केन्द्र बन गया, इसमें कोई संदेह नहीं है।

कि सङ्घीय शासन प्रत्येक राज्य में गणतांत्रिक शासन की प्रत्याभूति (guarantee) करेगा।

शक्ति पृथक्करण (Separation of Powers)

अमेरिकी शासन-प्रणाली के आधारभूत सिद्धान्तों में शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह सिद्धान्त राजदर्शन को अमेरिकी संविधान के निर्माताओं की देन नहीं है क्योंकि संविधान-निर्माण के पर्याप्त समय पूर्व फ्रांसीसी विचारक मांटेस्क्यू (Baron Montesquieu) तथा ब्रिटिश विधिवेत्ता ब्लैकस्टन(Sir Willian Blackstone) ने अपनी पुस्तकों में इस सिद्धान्त का स्पष्ट और सशक्त शब्दों में प्रतिपादन किया था। मांटेस्क्यू का विचार था कि प्रत्येक सरकार में तीन प्रकार की शक्तियाँ होती हैं : विधायनी, कार्यकारी तथा न्यायिक शक्ति। जब विधायनी तथा कार्यकारी शक्तियाँ एक ही व्यक्ति को अथवा शासनाधिकारियों के एक ही निकाय (body) को दे दी जाती हैं तब स्वतन्त्रता का उपस्थित रहना असम्भव हो जाता है। इसी प्रकार, यदि न्यायिक शक्ति को विधायनी तथा कार्यकारी शक्ति से पृथक नहीं किया जाता तो भी स्वतन्त्रता का अस्तित्व सम्भव नहीं है।[१] इसी कारण मांटेस्क्यू ने स्वतन्त्रता के संरक्षण के लिए इन तीनों शक्तियों के पृथक्करण पर बल दिया था। मांटेस्क्यू के पूर्व भी अनेक विचारकों ने, जिनमें अरस्तू भी सम्मिलित है, इन तीन शक्तियों के भेद का उल्लेख किया था। परन्तु शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने का श्रेय संयुक्त राज्य के संविधान-निर्माताओं को ही है।

संयुक्त राज्य के संविधान के किसी पृथक खंड या धारा में शक्ति-पृथक्करण के संविधान को मान्यता प्रदान नहीं की गई है। परन्तु, जैसा कि बियर्ड का मत है,[२] शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त विधानांग, कार्याङ्ग तथा न्यायांग से संबन्धित तीनों अनुच्छेदों के प्रथम वाक्यों में निहित है। इनके अनुसार संयुक्त राज्य की समस्त विधायनी शक्ति कांग्रेस में, कार्यकारी शक्ति राष्ट्रपति में,

[१] Montesquieu, *The Spirit of Laws, Book XI.*

[२] Charles A. Beard, *American Government and Politics*, p,11.

तथा न्यायिक शक्ति सर्वोच्च न्यायालय और उन अधीन न्यायालयों में जिनकी कांग्रेस समय-समय पर स्थापना करेगी निहित होगी।[1] इनमें से कोई शासनांग न तो अपनी शक्ति को किसी दूसरे शासनांग को प्रत्यायोजित (delegate) या हस्तांतरित (transfer) कर सकता है और न किसी दूसरे के कार्य में अनुचित हस्तक्षेप कर सकता है। प्रत्येक शासनांग की शक्तियाँ तथा कृत्य संविधान में उल्लिखित हैं और वे ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकते जिसे करने का अधिकार उन्हें संविधान द्वारा प्रत्यक्ष या निहित रूप से प्रदान न किया गया हो। मांटेस्क्यू और ब्लैकस्टन की भाँति अमेरिकी संविधान के निर्माता भी इस विषय में आश्वस्त थे कि शक्ति-पृथक्करण के बिना शासन को निरंकुशता की ओर अग्रसर होने से नहीं रोका जा सकता। अलैक्ज़ेंडर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) ने तो स्पष्ट शब्दों में शक्तियों के एकीकरण को "निरंकुशता की सही परिभाषा"[2] कहा है।

अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था—संयुक्त राज्य में शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त के प्रयोग के परिणामस्वरूप ब्रिटेन और अमेरिका में शासन के कार्यांङ्ग और विधानांग के बीच सम्बन्धों में बड़ा अन्तर है। इसी अन्तर के आधार पर ब्रिटिश शासन प्रणाली को संसदात्मक (Parliamentary) तथा अमेरिकी शासन-प्रणाली को अध्यक्षात्मक कहा जाता है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में संसदात्मक प्रणाली की भाँति राज्याध्यक्ष केवल नाममात्र का प्रधान नहीं होता; वह राज्य की कार्यपालिका का भी वास्तविक प्रधान होता है। अध्यक्षात्मक शासन का एक अन्य प्रमुख लक्षण यह है कि कार्यपालिका विधानांग की एक समिति मात्र नहीं होती जो कभी भी परिवर्तित की जा सके; उसकी शक्तियाँ संविधान द्वारा निर्धारित होती हैं तथा उसका कार्य-काल भी संविधान द्वारा निश्चित होता है। इस निश्चित कार्य-काल के पूर्व विधानमंडल उसे पदत्याग करने के लिए विवश नहीं कर सकता। अन्तिम महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि मन्त्रि-गण की नियुक्ति न तो विधानमंडल के द्वारा की जाती है, न वे उसके

---

[1] अनुच्छेद १, २ और ३

[2] "The very definition of tyranny."

प्रति उत्तरदायी होते हैं, न वे उसके सदस्य हो सकते हैं और न उसकी कार्यवाही में भाग ले सकते हैं। इसके विपरीत ब्रिटेन तथा संसदीय शासन वाले अन्य देशों में मन्त्रिगण वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी होते हैं, सामान्यतः उसके किसी सदन के सदस्य होते हैं और उसकी कार्यवाही में महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। उपर्युक्त समस्त अन्तरों का कारण यही है कि जहाँ संसदीय शासन शक्तियों के एकीकरण के सिद्धान्त पर आधारित होता है वहाँ अध्यक्षात्मक शासन का आधार शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त है।

अवरोध और संतुलन (Checks & Balances)

यद्यपि सामान्य रीति से यह कहना ठीक है कि अमेरिकी संविधान शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित है, परन्तु इसका यह अर्थ लगाना कि संयुक्त राज्य में विधायनी, कार्यकारी तथा न्यायिक शक्तियों का पूर्णतः पृथक्करण कर दिया गया है असंगत होगा। वस्तुतः आज के युग में शासन-कार्य इतना जटिल हो गया है कि पूर्ण पृथक्करण सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त किसी शासनांग को अपनी शक्तियों की सीमा की परिधि न लाँघने देने के लिए भी यह आवश्यक है कि एक शासनांग दूसरे शासनांग के ऊपर उचित मात्रा में नियंत्रण रखे जिससे पारस्परिक अवरोधों के कारण एक सन्तुलन स्थापित हो जाय। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राज्य के संविधान के निर्माताओं ने पारस्परिक अवरोधों और सन्तुलनों की एक अनुपम आयोजना की। संविधान के प्रत्येक भाग में यह आयोजना परिलक्षित होती है। उदाहरणार्थ न्यायाधीशों, पदाधिकारियों तथा राजदूतों आदि की नियुक्ति करना एक कार्यकारी(executive) शक्ति है परन्तु राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग सिनेट की "मंत्रणा और सहमति" से करता है। विदेशी राज्यों से सन्धियाँ भी राष्ट्रपति द्वारा सिनेट की "मंत्रणा और सहमति" से ही की जा सकती हैं। विधि-निर्माण स्पष्टतः शासन के विधानांग का कार्य है परन्तु राष्ट्रपति को सीमित अभिषेधाधिकार (veto) देकर संविधान-निर्माताओं ने उसे विधि-निर्माण-प्रक्रिया में कांग्रेस का सहकारी बना दिया है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है, यह संविधान-निर्माता भली भाँति जानते थे; परन्तु

राष्ट्रपति को न्यायाधीशों की नियुक्ति करने तथा कांग्रेस को न्यायालयों के सङ्गठन, क्षेत्राधिकार आदि के सम्बन्ध में विनिश्चय करने की शक्ति देकर उन्होंने न्यायिक शक्ति के दुरुपयोग को अवरुद्ध करने की चेष्टा की है। न्यायपालिका, कार्याङ्ग तथा विधानांग के द्वारा अपनी शक्तियों को लाँघने के प्रयत्नों को विफल करने की शक्ति रखती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संविधान-निर्माताओं ने पारस्परिक अवरोधों की एक सुगठित योजना के द्वारा शक्ति-पृथक्करण के दोषों को दूर करने का प्रयास किया है। यह संविधान-निर्माताओं की दूरदर्शिता की परिचायक तथा संविधान की एक प्रमुख विशेषता है।

न्यायिक प्रधानता (Judicial Supremacy)

अमेरिकी संविधान का एक अन्य प्रमुख सिद्धान्त न्यायिक प्रधानता है। वस्तुतः यह सिद्धान्त अमेरिका की संघीय व्यवस्था तथा शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्तों का अनुपूरक है। संघीय व्यवस्था में संविधान विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र के बीच एक संविदे (Contract) के समान होता है। इस संविदे की शर्तों का निर्वचन करने के लिये तथा उसे लागू करने के लिए एक स्वतन्त्र प्राधिकारी का होना आवश्यक है। न्यायपालिका ऐसे स्वतन्त्र प्राधिकारी के रूप में कार्य करती है और यह देखती है कि संविदे का उचित रूप से पालन हो। संयुक्त राज्य की न्यायपालिका को, जैसा कि इसके पूर्व भी उल्लेख किया जा चुका है, यह शक्ति प्राप्त है कि वह संघीय कांग्रेस अथवा किसी राज्य के विधान मंडल द्वारा पारित किसी भी अधिनियम को संविधान के प्रतिकूल होने की दशा में अवैध घोषित कर सकती है। न्यायपालिका की यह शक्ति केन्द्र तथा राज्य की सरकारों को अपनी शक्तियों की सीमा का आदर करने को बाध्य करती है। न केवल इतना ही वरन् न्यायपालिका संघीय विधानांग अथवा कार्यांग के द्वारा किये गए किसी ऐसे कार्य को भी अवैध घोषित कर सकती है जिसे करने की शक्ति उसे संविधान द्वारा प्रदान न की गई हो। इस प्रकार संयुक्त राज्य में प्रत्येक विधि तथा विभिन्न शासनांगों के कार्यों की सांविधानिकता के सम्बन्ध में न्यायपालिका का निर्णय अन्तिम होता है। इसी कारण यह कहा जाता है कि अमेरिकी संविधान का एक मुख्य सिद्धान्त न्यायिक प्रधानता है। संविधान का निर्वचन करने की शक्ति का प्रयोग करने के कारण सर्वोच्च न्यायालय, जैसा

कि जेम्स बैक का कथन है[1], अमेरिकी संविधान का संतुलन चक्र (Balance wheel) बन गया है।

संयुक्त राज्य में न्यायपालिका की महत्वपूर्ण स्थिति पर उसकी ब्रिटेन, फ्रांस आदि ऐसे देशों की न्यायपालिका से तुलना करने पर जिनको संविधान का निर्वचन करने की शक्ति प्राप्त नहीं है पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ब्रिटेन अथवा फ्रांस में कोई न्यायालय पार्लमेंट द्वारा पारित किसी विधि को संविधान के प्रतिकूल होने के कारण अवैध घोषित नहीं कर सकता। इसी कारण इन देशों की शासन-प्रणाली को विधानमांडलिक-प्रधानता (Legislative Supremacy) के सिद्धान्त पर आधारित बताया जाता है। अमेरिकी संविधान के निर्माण के पश्चात् अनेक देशों के संविधानों में न्यायिक प्रधानता के सिद्धान्त को अंगीकृत किया गया है। उदाहरणार्थ आस्ट्रेलिया तथा भारत के संविधानों की एक प्रमुख विशेषता न्यायिक प्रधानता है। परन्तु इस दृष्टि से इन देशों के संविधानों ने अमेरिकी संविधान का ही अनुकरण किया है।

नागरिकों की स्वतन्त्रताओं तथा अधिकारों का संरक्षण

अमेरिकी संविधान नागरिकों की अनेक स्वतन्त्रताओं तथा अधिकारों की प्रत्याभूति करता है। कांग्रेस की विधियाँ बनाने की शक्ति पर ऐसे अनेक निर्बंध लगाये गए हैं जिनका उद्देश्य नागरिकों के किसी अधिकार या स्वतन्त्रता की रक्षा करना है। उदाहरणार्थ, कांग्रेस धार्मिक उपासना, भाषण तथा प्रेस की स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाली कोई विधियाँ नहीं बना सकती। नागरिकों के शस्त्र रखने व धारण करने के अधिकार की भी संविधान द्वारा प्रत्याभूति की गई है। संविधान के अनुसार बिना विधिवत् कार्यवाही के किसी नागरिक को उसके जीवन, सम्पत्ति और स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जा सकेगा। संविधान में न्यायिक प्रक्रिया से संबंधित अनेक अधिकार भी नागरिकों को प्रदान किये गए हैं। संविधान ने सामान्य परिस्थितियों में बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख (Writ of Habeas Corpus) के निलंबित किये जाने तथा घटनोपरांत विधियों के बनाए जाने पर भी निर्बंध लगाया है। इस प्रकार संयुक्त राज्य के संविधान में

---

[1] James Beck, *op. cit.*

नागरिकों की स्वतन्त्रताओं और अधिकारों को एक बड़ी सीमा तक संरक्षण प्रदान किया गया है। अमेरिकी संविधान के प्रवर्तित किये जाने के पश्चात् अन्य अनेक राज्यों ने अपने संविधानों में अधिकार-पत्र सम्मिलित कर उसका मार्ग-दर्शन ग्रहण किया है।

यहाँ यह उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि सन् १७८९ में प्रवर्तित मूल संविधान में कोई पृथक् अधिकार-पत्र सम्मिलित न था, परन्तु नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिये कांग्रेस की शक्तियों पर अनेक निर्बंध लगाये गए थे। जनता की माँग पर सन् १७९१ में संविधान में दस संशोधन सम्मिलित किये गए जिनमें नागरिकों के अधिकारों का उल्लेख था। इन्हीं संशोधनों को सामूहिक रूप से 'अधिकार-पत्र' कहा जाता है। मूल संविधान में 'अधिकार-पत्र' सम्मिलित न किये जाने का कारण यह बतलाया जाता है कि अधिकांश राज्यों के संविधानों में नागरिकों के अधिकारों का उल्लेख होने के कारण सङ्घीय संविधान में उनका दोहराया जाना अनावश्यक समझा गया। संविधान के नवें संशोधन में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि संविधान में कुछ अधिकारों के उल्लेख का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि जनता को प्राप्त अन्य अधिकारों का निषेध कर दिया गया है या उन्हें गौण समझा गया है।

अमेरिकी संविधान के द्वारा न केवल नागरिकों के कुछ अधिकारों को संरक्षण ही प्रदान किया गया है, वरन् उन अधिकारों का अतिक्रमण न होने देने की भी व्यवस्था की गई है। सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के अधिकारों से सम्बन्धित समस्त प्रश्नों पर अंतिम क्षेत्राधिकार प्राप्त है और वह संघीय शासनांगों या राज्यों के शासनों की ऐसी सभी विधियों, विनियमों तथा कार्यों को अवैध घोषित करता जिनसे नागरिकों के किन्हीं संविधान द्वारा संरक्षित अधिकारों का अतिक्रमण होता है।

अध्याय ५

नागरिकता तथा मूलाधिकार

प्रत्येक राज्य की जनता को स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—नागरिक और अनागरिक, अथवा नागरिक और विदेशी। प्रो० गिलक्राइस्ट के मतानुसार 'किसी राज्य का नागरिक वह व्यक्ति होता है जो राज्य में रहता है तथा सभी विषयों में राज्य के अधीन होता है।'[1] प्रत्येक नागरिक को राज्य की ओर से अनेक सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत विदेशियों को केवल सामाजिक अधिकार ही प्राप्त होते हैं, राजनीतिक अधिकार नहीं। विदेशी भी कुछ निश्चित शर्तें पूरी करने पर किसी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सब राज्यों में नागरिकता सम्बन्धी नियम समान नहीं हैं; वे भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों पर आधारित हैं। इस अध्याय में हम संयुक्त राज्य के नागरिकता सम्बन्धी नियमों का अध्ययन करेंगे तथा नागरिकों के उन अधिकारों पर भी विचार करेंगे जिनकी संविधान द्वारा प्रत्याभूति की गई है।

नागरिकता सम्बन्धी सांविधानिक उपबंध

मूल संविधान के उपबंध—यद्यपि संयुक्त राज्य के मूल संविधान में "नागरिक" शब्द का सात बार प्रयोग किया गया था परन्तु उसमें उसका अर्थ कहीं स्पष्ट नहीं किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान-निर्माताओं ने दोहरी नागरिकता के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था, क्योंकि संविधान में "विभिन्न राज्यों के नागरिक" तथा "संयुक्त राज्य के नागरिक" वाक्य आते हैं। संविधान में संयुक्त राज्य की कांग्रेस को देशीकरण (naturalisation)

---

[1] Gilchrist, R. N., *Principles of Political Science*, p. 196.

के सम्बन्ध में समरूप नियम बनाने की शक्ति दी गई थी।[1] इसी शक्ति के अन्तर्गत कांग्रेस ने समय-समय पर नागरिकता सम्बन्धी विधियाँ पारित की हैं।

चौदहवें संशोधन द्वारा स्पष्टीकरण—मूल संविधान के उपबंधों की अस्पष्टता का परिणाम यह हुआ कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में नागरिकता के सम्बन्ध में एक तीव्र विवाद उठ खड़ा हुआ। विवादग्रस्त विषय यह था कि क्या संविधान द्वारा राष्ट्र और राज्यों की पृथक नागरिकताओं की व्यवस्था की गई है। कुछ लोगों का मत था कि जो व्यक्ति संयुक्त राज्य के किसी राज्य का नागरिक है वह स्वतः ही संयुक्त राज्य का भी नागरिक बन जाता है, जब कि इसके विपरीत कुछ लोगों का मत था कि राज्य का नागरिक बनने मात्र से ही संयुक्त राज्य की नागरिकता प्राप्त नहीं हो जाती। उनका मत था कि यह सम्भव है कि कोई व्यक्ति संयुक्त राज्य के किसी राज्य का नागरिक हो पर संयुक्त राज्य का नागरिक न हो। सन् १८५७ में ड्रेड स्काट के मामले (Dred Scott Case) में यह विवाद अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख आया। सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि कोई राज्य किसी व्यक्ति को नागरिकता के अधिकार दे सकता है और ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति संयुक्त राज्य का नागरिक नहीं भी हो सकता है।[2] इस निर्णय ने एक विचित्र स्थिति उत्पन्न कर दी। अन्तर्राष्ट्रीय विधि के समक्ष संयुक्त राज्य में सम्मिलित राज्यों का पृथक् व्यक्तित्व न होने के कारण यह सम्भव हो गया कि कोई व्यक्ति संयुक्त राज्य के किसी राज्य का नागरिक होने पर भी अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार किसी राज्य का नागरिक न माना जाय। गृह-युद्ध के पश्चात् अमेरिकी कांग्रेस ने संविधान में चौदहवाँ संशोधन जोड़ा जिससे स्थिति का स्पष्टीकरण किया गया। इस संशोधन में कहा गया है : संयुक्त राज्य में उत्पन्न अथवा देशीकृत (naturalised) और उसके क्षेत्राधिकार

---

[1] अनुच्छेद १ धारा (८)

[2] देखिए Dred Scolt v. Sandford case में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय (Saul K. Padover, *The Living U. S. Constitution*, pp. 119-130.)

के अन्तर्गत आने वाले समस्त मनुष्य संयुक्त राज्य और उसमें सम्मिलित उस राज्य के नागरिक होंगे जिसमें कि वे रहते हैं।" इस संशोधन के अंगीकृत होने का परिणाम यह हुआ कि नागरिकता-सम्बन्धी विवाद का अंत हो गया। यह निश्चित हो गया कि संयुक्त राज्य में उत्पन्न होने से अथवा देशीकृत होने से कोई व्यक्ति न केवल संयुक्त राज्य की ही नागरिकता प्राप्त कर लेता है वरन् उस राज्य की भी जिसमें वह रहता हो। इस संशोधन के अंगीकृत होने के दो वर्ष पूर्व कांग्रेस ने एक विधि पारित की थी जिसके द्वारा नागरिकता का निर्णय करने के सम्बन्ध में नियम स्पष्ट किये गए थे।

नागरिकता सम्बन्धी वर्तमान द्वैधता—चौदहवें संशोधन से संयुक्त राज्य की नागरिकता की द्वैधता का अंत नहीं हुआ, यद्यपि उसका व्यावहारिक महत्व प्रायः समाप्त हो गया। आज भी कोई विदेशी एक राज्य में नागरिकता के समस्त अधिकार प्राप्त कर लेने पर भी संयुक्त राज्य की नागरिकता से वंचित रह सकता है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति किसी राज्य का नागरिक बने बिना भी संयुक्त राज्य का नागरिक बन सकता है। ऐसा उस स्थिति में हो सकता है जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे क्षेत्र में रहता हो जो संयुक्त राज्य के क्षेत्राधिकार में हो पर जो किसी राज्य में सम्मिलित न हो।[२] द्वैधता का महत्त्व समाप्त हो जाने का कारण यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तथा राष्ट्रीय संविधान और विधियों के समक्ष केवल संयुक्त राज्य की नागरिकता ही महत्व रखती है।[3]

संयुक्त राज्य की नागरिकता कैसे प्राप्त होती है ?

संयुक्त राज्य की नागरिकता दो प्रकार से अर्जित की जा सकती है—जन्म से तथा देशीकरण (naturalisation) के द्वारा। इसी आधार पर हम संयुक्त राज्य के नागरिकों को जन्मजात नागरिकों तथा देशीकृत नागरिकों के दो वर्गों

---

[१] "All persons born or naturalised in the United States, and subject to the jurisdiction thereof, are citizens of the United States and of the state wherein they reside."—Art XIV

[२] उदाहरणार्थ, वह कोलम्बिया जिले का निवासी हो।

[3] Ogg and Ray, *op. cit.*, p. 127.

में विभक्त कर सकते हैं। नागरिकता अर्जित करने की इन दोनों रीतियों पर हम यहाँ संक्षेप में विचार करेंगे।

जन्मजात नागरिकता—जन्म से नागरिकता प्राप्त करने के सम्बन्ध में भिन्न देशों में विभिन्न नियम हैं। इनमें दो नियम मुख्य हैं: (१) जन्मस्थान नियम (*Jus Soli*) तथा (२) रक्तवंशाधिकार नियम (*Jus Sanguinis*)। प्रथम नियम के अनुसार एक राज्य की सीमा में जन्म लेने वाले समस्त बालक उस राज्य के नागरिक बन जाते हैं। उनके नागरिकता अर्जित करने में यह तथ्य बाधा नहीं डालता कि उनके माता-पिता उस राज्य के नागरिक नहीं हैं जहाँ बालक का जन्म हुआ है। द्वितीय, अर्थात् रक्तवंशाधिकार नियम के अनुसार बालक की नागरिकता का निर्णय उसके माता-पिता की नागरिकता से किया जाता है। जिस देश के माता-पिता नागरिक होंगे उनकी सन्तान को भी उसी राज्य की नागरिकता प्राप्त होगी। इस सम्बन्ध में संयुक्त राज्य की नीति बहुत उदार है। संयुक्त राज्य नागरिकता के निर्णय के लिए इन दोनों ही नियमों को मानता है अर्थात् ऐसे सभी व्यक्ति जिनका संयुक्त राज्य में जन्म हुआ है और जो उसके क्षेत्राधिकार के अधीन हैं, तथा ऐसे सभी व्यक्ति जिनके माता-पिता संयुक्त राज्य के नागरिक हैं, संयुक्त राज्य के नागरिक माने जाते हैं। सन् १९०७ में कांग्रेस द्वारा पारित की गई एक विधि के अनुसार अमेरिकी नागरिकों की विदेशों में उत्पन्न हुई सन्तति को, यदि वह उसी देश में रहना चाहे तो अठारह वर्ष की आयु हो जाने पर अमेरिकी दूतावास में अमेरिकी नागरिक बने रहने की अपनी इच्छा पंजीबद्ध करानी पड़ती है तथा इक्कीस वर्ष की आयु हो जाने पर संयुक्त राज्य के प्रति भक्ति की शपथ लेनी पड़ती है। कुछ विशेष अवस्थाओं में यदि माता-पिता में से एक भी अमेरिकी नागरिक है तो भी विदेशों में उत्पन्न हुई सन्तान को अमेरिकी नागरिक मान लिया जाता है।[1]

यहाँ ऊपर प्रयोग किये गये वाक्यांशों "संयुक्त राज्य में" तथा "क्षेत्राधिकार के अधीन" का स्पष्टीकरण कर देना भी आवश्यक है। "संयुक्त राज्य में" वाक्य

[1] Anderson, W. A., *op. cit.*, p. 255.

का अर्थ लगाते समय हनोई, अलास्का, प्यूर्टोरिको, वर्जिन द्वीपसमूह आदि क्षेत्रों तथा कोलम्बिया जिले को भी संयुक्त राज्य में सम्मिलित राज्यों के साथ संयुक्त राज्य का भाग माना जाता है। इसी प्रकार अमेरिकी दूतावासों में, अमेरिकी युद्धपोतों (ships of war) पर सर्वत्र, तथा अमेरिकी वाणिज-पोतों (merchant vessels) पर खुले समुद्र में जन्म लेने वाले व्यक्तियों को संयुक्त राज्य में उत्पन्न माना जाता है। "क्षेत्राधिकार के अधीन" वाक्य को प्रयुक्त करने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि संयुक्त राज्य के भूभाग में भी कुछ स्थान ऐसे हैं जो संयुक्त राज्य के क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं माने जाते। उदाहरणार्थ, अमेरिका स्थित विदेशी दूतावास जिनमें जन्म लेने वाले व्यक्तियों को अमेरिकी नागरिकता प्राप्त नहीं होती। यदि कभी संयुक्त राज्य के किसी भूभाग पर किसी शत्रु देश का अधिकार हो जाय तो उस भूभाग में जन्म लेने वालों को अमेरिकी नागरिक नहीं माना जायगा।[1]

देशीकरण द्वारा नागरिकता—ऊपर यह उल्लेख किया जा चुका है कि जन्मजात नागरिकों के अतिरिक्त अमेरिका में देशीकृत नागरिक भी हैं। ये देशीकृत नागरिक वे व्यक्ति हैं जो न तो अमेरिका में उत्पन्न हुए थे और न जिनके माता-पिता ही संयुक्त राज्य के नागरिक थे, परन्तु इन्हें संयुक्त राज्य की नागरिकता प्रदान कर दी गई है। देशीकरण की दो रीतियाँ हैं—सामूहिक देशीकरण (Collective naturalisation) तथा व्यक्तिगत देशीकरण (Individual naturalisation)। सामूहिक देशीकरण का अर्थ होता है एक साथ बहुत से विदेशियों को नागरिक बनाया जाना। जब संयुक्त राज्य का किसी नए प्रदेश पर अधिकार हो जाता है तब या तो तत्सम्बन्धी सन्धि की शर्तों के द्वारा अथवा कांग्रेस के द्वारा पारित की गई विधि के द्वारा उस प्रदेश के समस्त निवासियों को सामूहिक रूप से संयुक्त राज्य की नागरिकता प्रदान कर दी जाती है। सन्धि द्वारा सामूहिक देशीकरण का उदाहरण सन १८६७ की अलास्का सन्धि (Alaska Treaty) है। कांग्रेस की विधि द्वारा सामूहिक देशीकरण के उदाहरण के रूप में सन १९२७ में कांग्रेस द्वारा पारित उस विधि का उल्लेख किया जा सकता है जिसके द्वारा वर्जिन द्वीप समूह (Virgin Islands) के निवासियों को संयुक्त

---

[1] *Ibid.* p.255.

राज्य की नागरिकता प्रदान की गई थी। सामूहिक देशीकरण के उदाहरण के रूप में संविधान के चौदहवें संशोधन का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसके द्वारा नीग्रो लोगों को सामूहिक रूप से नागरिकता के अधिकार प्रदान किये गए थे। इसके विपरीत व्यक्तिगत देशीकरण का अर्थ होता है एक-एक करके विदेशियों का नागरिक बनाया जाना। सामान्यतः विदेशियों को वैयक्तिक रूप में ही देशीकृत किया जाता है। संविधान में दी गई शक्ति के अनुसार कांग्रेस ने समय-समय पर विदेशियों के देशीकरण के सम्बन्ध में विधियाँ पारित कर नियम बनाए हैं। इस विषय पर अन्तिम विधि सन् १९४० में पारित की गई थी।[१]

देशीकरण के लिए पात्रता—संयुक्त राज्य में देशीकरण के द्वारा नागरिक बनने के लिए यह आवश्यक है कि प्रार्थी "श्वेतांग व्यक्ति, या अफ्रीका का निवासी अथवा अफ्रीकी जाति" का हो, अथवा पश्चिमी गोलार्द्ध में बसने वाली किसी जाति का हो या चीनी जाति का हो।[२] स्पष्ट ही है कि एशियावासियों के बड़े भाग को संयुक्त राज्य की नागरिकता के उपयुक्त नहीं समझा जाता। देशीकरण के लिए संयुक्त राज्य में पाँच वर्ष का निवास तथा अंग्रेजी भाषा बोलने की योग्यता होना भी आवश्यक है। प्रार्थी को देशीकरण के पूर्व एक न्यायाधीश को सन्तुष्ट करना पड़ता है कि वह चरित्रवान है, सङ्गठित शासन में विश्वास रखता है, संयुक्त राज्य की शासन-प्रणाली से परिचित है, अमेरिकी संविधान तथा विधियों की रक्षा करने के लिए तत्पर है तथा किसी अन्य राज्य, नरेश, संप्रभु आदि के प्रति भक्ति नहीं रखता है। प्रार्थी से यह पूछा जा सकता है कि क्या वह संयुक्त राज्य के लिए लड़ने को प्रस्तुत रहेगा। यदि वह इन्कार करता है तो उसे नागरिकता से वंचित रखा जा सकता है।[३]

[१] The National Act, 1940

[२] "Only "White persons, persons of African nativity or descent, and descendants of races indigenous to western hemisphere" and the Chinese are entitled to become naturalised."—Anderson, *op. cit.*, p. 257.

[३] अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने दो मामलों (United States v. Schurimmer तथा United States v. Mac Intosh) में यह निर्णय दिया है कि प्रार्थी के सायुध सेना में सेवा करने से इनकार करने पर उसे नागरिकता प्रदान करने से इनकार किया जा सकता है।

देशीकरण की प्रक्रिया—संयुक्त राज्य का नागरिक बनने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को सर्वप्रथम एक न्यायालय में यह घोषणा प्रस्तुत करनी होती है कि वह संयुक्त राज्य का नागरिक बनने का इच्छुक है। इसी घोषणा के साथ उसे अपने सम्बन्ध में पूर्ण विवरण देना होता है। इस घोषणा के प्रस्तुत करने के कम से कम दो वर्ष पश्चात् तथा सात वर्ष के अन्दर उसे नागरिकता के लिए आवेदन प्रस्तुत करना होता है। यह आवेदन तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जब प्रार्थी पाँच वर्ष संयुक्त राज्य में रह चुका हो। इस आवेदन के प्रस्तुत करने के तीन मास पश्चात् न्यायालय द्वारा आवेदन पर विचार करने के लिए एक तारीख निश्चित की जाती है। उस दिन प्रार्थी को न्यायालय में उपस्थित होकर न्यायाधीश के प्रश्नों का उत्तर देना होता है। यदि न्यायाधीश प्रार्थी के उत्तरों से सन्तुष्ट हो जाता है तो वह प्रार्थी को शपथ ग्रहण कराता है तथा नागरिकता का प्रमाण-पत्र जारी करने की आज्ञा देता है। इस प्रमाण-पत्र को प्राप्त कर लेने पर प्रार्थी संयुक्त राज्य का नागरिक बन जाता है।

स्त्रियों की नागरिकता—स्त्रियों की नागरिकता के सम्बन्ध में अधिकांश राज्यों में यह नियम है कि उसका निर्णय पति की नागरिकता के आधार पर किया जाता है। इस नियम के अनुसार यदि कोई नागरिक स्त्री किसी विदेशी से विवाह कर लेती है तो वह अपनी पूर्व नागरिकता खो देती है। अधिकतर उसे अपने पति के राज्य की नागरिकता प्राप्त हो जाती है। सन् १९२२ तक संयुक्त राज्य में भी यही नियम था। उस समय तक कोई अमेरिकी स्त्री किसी विदेशी से विवाह कर लेने पर अपनी नागरिकता खो देती थी तथा कोई विदेशी स्त्री किसी अमेरिकी नागरिक से विवाह कर लेने पर अमेरिका की नागरिक बन जाती थी। प्रथम महायुद्ध के काल में इस नियम के कारण अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं और बहुत सी ऐसी अमेरिकी स्त्रियाँ जिन्होंने जर्मनों से विवाह कर लिया था विदेशी शत्रु मान ली गईं। अमेरिका की स्त्रियों ने इस नियम के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन किया और उसके परिणामस्वरूप सन् १९२२ में कांग्रेस ने एक विधि[1] पारित की जिसके द्वारा नागरिकता पर विवाह का प्रभाव प्रायः समाप्त कर दिया गया। अब न तो कोई अमेरिकी स्त्री किसी विदेशी से विवाह कर लेने

[1] The Cables Act, 1922

से ही अपनी नागरिकता से वंचित हो जाती है और न कोई विदेशी स्त्री किसी अमेरिकी नागरिक से विवाह कर लेने मात्र से ही अमेरिका की नागरिक बन जाती है। यह अवश्य है कि अमेरिकी नागरिकों से विवाह कर लेने वाली स्त्रियों के लिए देशीकरण की प्रक्रिया बहुत सरल कर दी गई है और उन्हें पाँच वर्ष के स्थान पर केवल एक वर्ष तक ही संयुक्त राज्य में निवास करने पर अमेरिकी नागरिकता प्राप्त हो सकती है।

नागरिकता का अन्त—जिस प्रकार विधि के अनुसार नागरिकता प्राप्त की जा सकती है उसी प्रकार उसका अन्त भी हो सकता है। सन् १९४० के राष्ट्रीयता अधिनियम के अनुसार किसी विदेश में देशीकरण द्वारा नागरिकता प्राप्त कर लेने से, किसी अन्य राज्य के प्रति भक्ति की शपथ लेने से, किसी विदेशी सेना में भर्ती होने से[1], किसी विदेशी राज्य में ऐसे पद पर कार्य करने से जो उसके राष्ट्रीयों को ही दिये जाते हों, किसी विदेशी निर्वाचन अथवा जनमत संग्रह में मतदान करने से, अमेरिकी राष्ट्रीयता को त्याग करने की घोषणा करने से अथवा स्थल या जलसेना की सेवा से भाग जाने से अमेरिकी राष्ट्रीयता तथा नागरिकता का अन्त हो जाता है। देशद्रोहितापूर्ण कार्य करने से भी नागरिकता का अन्त हो जाता है; पर इसको न्यायालय में प्रमाणित किया जाना आवश्यक है। उक्त अपराधों के अतिरिक्त अन्य अपराधों के लिए दंड पाने से नागरिकता का लोप नहीं होता, यद्यपि अपराधी को मताधिकार अथवा सार्वजनिक पद पर कार्य करने के अधिकार से वंचित किया जा सकता है।

नागरिकों के "सांविधानिक" अथवा "मूल" अधिकार

प्रत्येक जनतांत्रिक देश के नागरिकों को अनेक महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं। इन्हीं में से कुछ अधिक महत्वपूर्ण अधिकारों का प्रायः संविधान में उल्लेख कर दिया जाता है, जिससे शासनारूढ़ व्यक्ति उनका उल्लंघन न कर सकें। अनेक व्यक्तियों का तो यह मत है कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता की रक्षा के

---

[1] यदि संयुक्त राज्य की कोई विधि किसी विदेशी राज्य की सेना में सेवा करने की अनुमति देती हो तो उस राज्य की सेना में भरती होने से नागरिकता का अन्त नहीं होता।

लिए संविधान में नागरिकों के अधिकारों का उल्लेख होना परमावश्यक है।[1] संविधान में नागरिकों के मूलाधिकारों का उल्लेख करने की परिपाटी का आरम्भ संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान से ही हुआ था। यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि सन् १७८९ में फिलाडेल्फिया सम्मेलन द्वारा निर्मित संविधान में कोई "अधिकार-पत्र" नहीं था। इसी कारण, जैसा कि संविधान के निर्माण पर विचार करते समय उल्लेख किया गया था, राज्यों के द्वारा अनुसमर्थन के समय संविधान का अत्यन्त उग्र विरोध किया गया था। इस विरोध को शान्त करने के लिए नव-संविधान के अनुसार निर्वाचित प्रथम सङ्घीय कांग्रेस ने संविधान में दस संशोधन जोड़ने का प्रस्ताव पारित किया। ये ही संशोधन १५ दिसम्बर १७९१ को प्रवर्तित हुए और इन्हें ही सम्मिलित रूप से "अधिकार पत्र" के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन संशोधनों के अतिरिक्त भी संविधान के कुछ भाग ऐसे हैं, जिनमें नागरिकों के अधिकारों का प्रत्यक्ष या निहित रूप से उल्लेख है, यथा अनुच्छेद १ की धाराएँ (९) और (१०), अनुच्छेद ३ की धाराएँ (२) और (३), अनुच्छेद ४ की धारा (२) तथा तेरहवाँ, चौदहवाँ, पन्द्रहवाँ और उन्नीसवाँ संशोधन। नागरिकों के इन अधिकारों को संविधान में संशोधन किये बिना रद्द नहीं किया जा सकता।

मूलाधिकारों का वर्गीकरण—अध्ययन की सुविधा के लिए संयुक्त राज्य के संविधान में उल्लिखित नागरिकों के मूलाधिकारों को हम कुछ वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। विभिन्न लेखकों ने अधिकारों का विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण किया है। हम उन्हें निम्न वर्गों में विभक्त करके उनका अध्ययन करेंगे :

१. वैयक्तिक अधिकार (Personal Rights)
२. सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकार (Property Rights)

---

[1] प्रो० बर्गेस ने सन् १७८९ की प्रसिद्ध फ्रांसीसी मानवीय अधिकारों की घोषणा को उद्धृत करते हुए कहा है : "जिस समाज में अधिकारों की प्रत्याभूति सुनिश्चित नहीं होती वह समाज संविधानविहीन ही है।" ("...every society in which the guarantee of rights is not assured has no constitution."—Burgess, John W., *The Reconciliation of Government with Liberty*, p. 260).

३. राजनीतिक अधिकार (Political Rights)

४. न्यायिक-प्रक्रिया सम्बन्धी अधिकार (Procedural Rights)

वैयक्तिक अधिकार

दासता तथा अनिच्छित अधीनता से मुक्ति—नागरिकों के वैयक्तिक अधिकारों में इस अधिकार का महत्व बहुत अधिक है। वस्तुतः यह अधिकार अमेरिकी नागरिकों को बहुत कठिनाई से प्राप्त हुआ था, क्योंकि गृह युद्ध (१८६१-६५) के कारणों में मुख्य यही था कि दक्षिणी राज्य संयुक्त राज्य में दासता का अन्त करने के प्रबल विरोधी थे। गृह-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् तेरहवें संशोधन के द्वारा दासता तथा अनिच्छित अधीनता (involuntary servitude) का अंत कर दिया गया।[१] सांविधानिक शब्दावली का निर्वचन करते हुए संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि यदि कोई व्यक्ति एक निश्चित समय के लिए कोई नौकरी करे और उस अवधि के पूरा होने तक के लिए काम करने को उसे विवश किया जाय तो इसे अनिच्छित दासता नहीं माना जायगा, परन्तु किसी व्यक्ति को अपने नौकरी देने वाले का ऋण चुकाने के लिए उसके यहाँ काम करने पर विवश करना "अनिच्छित अधीनता" माना जायगा, और इस कारण ऐसा करना असांविधानिक होगा।[२] सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय के अनुसार नागरिकों को सेना, मिलिशिया तथा जूरी में काम करने के लिए शासन द्वारा विवश किया जाना असांविधानिक न होगा। इसका कारण यह बताया गया है कि तेरहवाँ संशोधन नागरिकों को राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्यों से मुक्त नहीं करता।[3] कुछ लोगों ने अपना यह मत व्यक्त किया है कि संयुक्त राज्य में आर्थिक दासता अभी भी वर्तमान है;

---

[१] "Neither slavery nor involuntary servitude, except as a punishment for crime whereof the party shall have been duly convicted, shall exist within the United States, or any place subject to their jurisdiction."—Article XIII (Amendment)

[२] Taylor *v.* State of Georgia (1942)

[3] Butler *v.* Parry (1916)

क्योंकि वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था के अन्तर्गत काम करने वाले अधिकांश श्रमिकों का जीवन दासों से भी निकृष्ट होता है, परन्तु इस प्रश्न पर विस्तार के भय से यहाँ विचार करना सम्भव नहीं है। हैराल्ड जिंक ने संयुक्त राज्य के पश्चिमी राज्यों की कुछ ऐसी विधियों का उल्लेख किया है जो नागरिकों के इस अधिकार का अतिक्रमण करती हैं, परन्तु उनका प्रभाव बहुत कम व्यक्तियों तक सीमित है।[१]

विधि का समान संरक्षण—संविधान के चौदहवें संशोधन में राज्यों पर यह निर्बंध लगाया गया है कि वे "अपने क्षेत्राधिकार के किसी व्यक्ति को विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं कर सकते।" यह उपबंध न केवल नागरिकों को वरन् संयुक्त राज्य के समस्त निवासियों को विधि के समक्ष समानता की स्थिति प्रदान करता है। अनेक विधिवेत्ताओं का मत है कि यद्यपि चौदहवें संशोधन के द्वारा केवल राज्यों के विधानमंडल की शक्ति पर प्रतिबंध लगाया गया है परन्तु प्रो॰ ऑग और रे के मतानुसार "विधि की उचित प्रक्रिया" (due process of law) वाले उपबंध के द्वारा सङ्घीय शासन पर भी यह प्रतिबंध लागू हो जाता है। यद्यपि संविधान में इस संशोधन के सम्मिलित करने का मूल उद्देश्य नीग्रो लोगों के अधिकारों के नव-प्राप्त अधिकारों को सुरक्षित करना था परन्तु व्यवहार में यह संयुक्त राज्य के सभी निवासियों के अधिकारों की रक्षा के लिए प्रयुक्त किया गया है।

इस उपबन्ध के अर्थ के सम्बन्ध में समय-समय पर विभिन्न निर्णय दिए गए हैं। इसका यह अर्थ समझना कि सभी व्यक्तियों से पूर्णतः समान व्यवहार किया जाय भ्रांतिमूलक होगा। न्यायालयों ने संयुक्त राज्य के निवासियों में युक्ति-युक्त भेदभाव को मान्यता दी है। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य में अधिक आय वालों पर कम आय वालों की अपेक्षा ऊँची दर के अनुसार कर लगाया जाता है और न्यायालयों ने इसे अवैध नहीं माना है। सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख यह प्रश्न अनेक बार आया है कि क्या श्वेतांगों और नीग्रो लोगों के लिए पृथक

---

[१] Zink, H., *Government and Politics in the United States*, p. 100.

विद्यालय स्थापित करना असांविधानिक है। कुछ समय पूर्व तक दोनों के लिए पृथक रूप से समान सुविधाएँ उपलब्ध होने पर नीग्रो और श्वेत विद्यार्थियों के पृक्करण को अवैध नहीं माना जाता था।[१] परन्तु सन् १९५० में सर्वोच्च न्यायालय ने टेक्सास और ओक्लाहोमा राज्यों में नीग्रो विद्यार्थियों के पृथक्करण को विधि के समान संरक्षण का निषेध माना।[२] उसके पश्चात् से सर्वोच्च न्यायालय के मत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

विचाराभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता—संयुक्त राज्य का संविधान समस्त नागरिकों को भाषणों और समाचारपत्रों के द्वारा अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। संविधान के प्रथम संशोधन में कहा गया है कि कांग्रेस भाषण और समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता को संकुचित करने वाली कोई विधि नहीं बनाएगी। अधिकांश राज्यों के संविधानों में भी इसी प्रकार का उपबन्ध है। वस्तुतः लोकतांत्रिक शासन के लिए विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता इतनी आवश्यक है कि बिना उसके लोकतांत्रिक शासन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। परन्तु अन्य स्वतन्त्रताओं और अधिकारों की भाँति इस स्वतन्त्रता का भी दुरुपयोग हो सकता है, और होता है। इसी कारण इस स्वतन्त्रता पर कुछ निर्बन्ध लगाए गए हैं। देशद्रोहितापूर्ण कार्यवाहियों का अन्त करने के लिए कांग्रेस ने समय-समय पर अनेक विधियाँ पारित की हैं, जिनमें सन् १७९८[३], सन् १९१७[४], सन् १९१८[५] तथा सन् १९४०[६] की विधियाँ मुख्य हैं। इन विधियों में भाषण या लेखों के द्वारा विद्रोहाग्नि भड़काने वालों, विदेशों की सहायता करने वालों तथा शासन के विरुद्ध द्वेष-भाव फैलाने वालों को कड़ा दण्ड दिए जाने की व्यवस्था की गई थी।

---

१ Missouri *ex. rel.* Gaines *v.* Canada (1938) and Plessy *v.* Ferguson (1896)

२ Zink, H., *op. cit.*, p. 106.

३ The Sedition Act (1798)

४ The Espionage Act (1917)

५ The Sedition Act (1918)

६ The Aliens Registration Act (1940)

सभा करने तथा याचिका प्रस्तुत करने की स्वतन्त्रता—प्रथम संशोधन के ही द्वारा कांग्रेस को ऐसी कोई विधि बनाने से वर्जित किया गया है जो जनता के शांतिपूर्ण एकत्र होने तथा शासन को अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिए याचिका प्रस्तुत करने के अधिकार को निर्बन्धित करती हो। राज्यों के संविधानों में भी इस उपबंध के समरूप उपबंध हैं। संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने इस उपबंध की शब्दावली का निर्वचन करते हुए यह निर्णय दिया है कि इस स्वतन्त्रता में देश में अबाध विचरण की स्वतन्त्रता भी अन्तर्ग्रहित है, क्योंकि याचिका प्रस्तुत करने के लिए अनेक राज्यों में होकर देश की राजधानी में जाने की आवश्यकता पड़ सकती है।[१] पर अबाध विचरण की स्वतन्त्रता का संविधान में स्पष्ट उल्लेख न होने के कारण कभी-कभी सङ्घीय और राज्यों के शासन इसे प्रतिबन्धित कर देते हैं।

अन्य स्वतन्त्रताओं की भाँति सभा करने की स्वतन्त्रता भी निर्बन्धों से मुक्त नहीं है। यातायात की सुविधा, जन-स्वास्थ्य तथा शांति व व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए सभा करने की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाए जा सकते हैं। प्रो० ऑग और रे के अनुसार प्रायः सदा ही नगरों में मार्गों तथा उद्यानों में सभाएँ करने के लिए मेयर या किसी अन्य अधिकारी की आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक होता है।...कभी-कभी अधिक उत्साही अधिकारी अतिवादों (Radical) विचारों के लोगों के लिए ऐसी सभाएँ करना भी कठिन कर देते हैं जिनसे किसी प्रकार के अनिष्ट की सम्भावना नहीं है।"[२] सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक बार स्थानीय एवं राज्यों के अधिकारियों द्वारा इस सम्बन्ध में लगाए गए प्रतिबन्धों को अवैध घोषित किया है। जहाँ तक याचिका प्रस्तुत करने की स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है, यह सत्य है कि कांग्रेस या राष्ट्रपति के सम्मुख याचिका प्रस्तुत करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है; परन्तु उन्हें उन पर विचार करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता और इसी कारण अधिकांश याचिकाओं पर कभी विचार नहीं होता।

---

[१] Edwards *v.* California. (1941)

[२] Ogg and Rays' *op. cit.*, p. 144.

धार्मिक स्वतन्त्रता—संयुक्त राज्य के संविधान का प्रथम संशोधन कांग्रेस को किसी धर्म की संस्थापना करने अथवा किसी धर्म के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक आचरण करने का निषेध करने वाली विधि बनाने से भी वर्जित करता है।[१] सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय के अनुसार चौदहवें संशोधन के उपबन्ध राज्यों के विधानमण्डलों को भी ऐसी विधियाँ बनाने से वर्जित करते हैं। परन्तु धर्म के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक आचरण करने का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि कोई व्यक्ति धर्म का नाम लेकर कोई दंडनीय अपराध कर सकता है। यहाँ तक कि किसी व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता की आड़ लेकर रात को जोर से गाकर शांति भङ्ग करने का अधिकार नहीं है।[२] इसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक महत्त्वपूर्ण निर्णय में यह निश्चय किया है कि धार्मिक स्वतन्त्रता के नाम पर कोई पुरुष बहुविवाह नहीं कर सकता।[३]

धार्मिक स्वतन्त्रता से सम्बन्धित अनेक ऐसे मामले सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आते रहे हैं जिनमें उसे अनेक विवादग्रस्त प्रश्नों पर निर्णय देना पड़ा है। कभी-कभी तो सर्वोच्च न्यायालय ने परस्पर विरोधी निर्णय भी दिए हैं। उदाहरणार्थ, सन् १९४० में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि सार्वजनिक विद्यालयों में विद्यार्थियों को अमेरिकी ध्वज को प्रणाम करवाने से धार्मिक स्वतन्त्रता का अतिक्रमण नहीं होता और ध्वज को प्रणाम न करने वाले विद्यार्थियों को सार्वजनिक विद्यालयों से निष्कासित किया जा सकता है।[४] परन्तु तीन वर्ष बाद ही उसने यह निर्णय दिया कि विद्यार्थी धार्मिक कारणों से अमेरिकी ध्वज को प्रणाम करने से इन्कार कर सकते हैं।[५] सन् १९४८ में सर्वोच्च न्यायालय

---

[१] "Congress shall make no law respecting an establishment of religion or prohibiting the free exercise thereof."—Article I (Amendments) of *The U. S. Constitution.*

[२] Zink, H., *op. cit.*, p. 103.

[३] Reynolds *v.* United States (1878).

[४] Minnersville School District *v.* Gobitis (1940)

[५] West Virginia State Board of Education *v.* Barnette (1943) (यह मामला जेहोवाह पंथ के लोगों के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लाया गया था और उन्होंने ध्वज को प्रणाम न करने का कारण यह बताया था कि ऐसा करना मूर्तिपूजा करना है जो उनके धर्म के विरुद्ध है।)

ने यह निर्णय दिया कि संयुक्त राज्य में धर्म और राज्य के पृथक्करण के कारण सार्वजनिक विद्यालयों के भवन में विद्यार्थियों की इच्छा होने पर भी धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती।[१] अधिकांश पर्यवेक्षकों का मत है कि यद्यपि संयुक्त राज्य में पर्याप्त धार्मिक स्वतन्त्रता विद्यमान है, परन्तु ईसाई धर्म के प्रति अपेक्षाकृत कुछ उदारता का व्यवहार किया जाता है।

शस्त्र धारण करने का अधिकार—संविधान के द्वितीय संशोधन में नागरिकों को शस्त्र रखने तथा धारण करने का अधिकार दिया गया है। इस संशोधन में कहा गया है—"एक स्वतंत्र राज्य की सुरक्षा के लिए एक सुव्यवस्थित नागरिक-सेना (Militia) आवश्यक होने के कारण, जनता के शस्त्र रखने और धारण करने के अधिकार का उल्लंघन नहीं किया जायगा।" एक स्थायी सेना के निर्माण होने और देश में अपराधों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि होने के कारण अब राज्यों की सरकारों ने इस अधिकार पर अनेक निर्बन्ध लगा दिए हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है कि यदि आज जनता को शस्त्र रखने का असीमित अधिकार दिया जाय तो निश्चय ही अपराधों की संख्या कई गुनी हो जायगी और शांति व व्यवस्था बनाए रखने की समस्या बहुत जटिल हो जायगी। वस्तुतः पुलिस और सेना की व्यवस्था स्थापित हो जाने के पश्चात् अब शस्त्रास्त्र रखने की आवश्यकता नगण्य ही हो गई है। इसीलिए कुछ विशेष प्रकार के शस्त्रास्त्र रखने के लिए अब आज्ञा लेना आवश्यक कर दिया गया है। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए ऐसे निर्बंधों को असांविधानिक नहीं माना जाता।

सैनिकों को ठहराने तथा अयुक्तियुक्त तलाशियों आदि से संरक्षण—जिस समय संयुक्त राज्य के संविधान का निर्माण हुआ था उस समय तक अनेक राज्यों में यह प्रथा थी कि सैनिकों को बलात् नागरिकों के घरों में ठहरा दिया जाता था। इसके कारण नागरिकों को बहुत कठिनाई होती थी। संविधान के तृतीय संशोधन के द्वारा यह निर्बन्ध लगा दिया गया कि "शांति-काल में गृहस्वामी की अनुमति के बिना किसी भी सैनिक को किसी घर में नहीं ठहराया जा सकेगा। युद्धकाल में भी ऐसा विधि द्वारा निर्धारित पद्धति से ही किया जा सकेगा।"

[१] McCollum *v.* Board of Education of School District (1948)

चौथे संशोधन में जनता के अयुक्तियुक्त तलाशियों एवं अपहरण से संरक्षण की व्यवस्था की गई है।[१] इस संशोधन में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि शपथ अथवा प्रतिज्ञान (affirmation) के द्वारा पुष्ट सम्भावित कारण के बिना कोई अधिपत्र (warrant) जारी नहीं किया जा सकेगा। अधिपत्र में जिस स्थान की तलाशी ली जानी हो तथा जिन व्यक्तियों को बंदी बनाया जाना हो तथा जिस सामान को जब्त करना हो उसका स्पष्ट विवरण होना आवश्यक है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों में यह स्वीकार किया है कि ऐसे अवसर आ सकते हैं जब अधिपत्र (warrant) के बिना ही तलाशी लेना आवश्यक हो जाय; उदाहरणार्थ यदि यह संभावना हो कि किसी गम्भीर अपराध का दोषी व्यक्ति किसी मकान में छिपा है तो अधिपत्र की प्रतीक्षा करना आवश्यक नहीं है। इसी प्रकार किसी नौका, मोटरगाड़ी, वायुयान आदि की भी बिना अधिपत्र के तलाशी ली जा सकती है।[२]

अयुक्तियुक्त विधेयकों तथा विधियों से संरक्षण—इंग्लैंड तथा अमेरिकी उपनिवेशों के अनुभवों से परिचित होने के कारण संयुक्त राज्य के संविधान के निर्माताओं ने नागरिकों की विधानमंडलों द्वारा पारित की जाने वाली अयुक्तियुक्त विधियों से संरक्षण की भी व्यवस्था की है। संविधान के प्रथम अनुच्छेद की धारा (९) में यह उपबंध है कि कोई अधिकार-अपहरण विधेयक (bill of attainder) तथा घटनोपरांत विधि (ex post facto law) नहीं पारित की जायगी। सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व इंगलैंड में संसद द्वारा तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व अमेरिकी उपनिवेशों में विधान मंडलों के द्वारा कभी-कभी ऐसे विधेयक पारित किए जाते थे जिनमें किसी व्यक्ति को बिना न्यायालय में मुकदमा चलाए हुए ही दंड दिए जाने की व्यवस्था होती थी तथा उसकी संपत्ति आदि ज़ब्त

[१] "The right of the people to be secure in their persons, houses, papers and effects, against unreasonable searches and seizures, shall not be violated and no warrants shall issue but upon probable cause, supported by oath or affirmation, and particularly describing the place to be searched, and the person or things to be seized."—Article IV (Amendments).

[२] Ogg and Ray, *op. cit.*, p. 150

कर ली जाती थी। इसी प्रकार कभी-कभी ऐसी विधियाँ बनाई जाती थीं जिनका प्रभाव उनके प्रवर्तित होने के पूर्व से माना जाता था। उदाहरणार्थ यदि किसी व्यक्ति ने कोई ऐसा कार्य किया जो कार्य किए जाने के समय अपराध न था परन्तु नवीन विधि के अनुसार वह अपराध होता तो उस व्यक्ति को दण्ड दिया जा सकता था। अधिकार-अपहरण विधेयकों और घटनोपरांत विधियों के निर्माण पर प्रतिबंध लगाकर संविधान-निर्माताओं ने अमेरिकी जनता को विधानमंडल की ज्यादतियों से पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया है।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए इस सांविधानिक उपबंध के निर्वचन के अनुसार घटनोपरांत विधियों से संबंधित प्रतिबंध केवल दाण्डिक (criminal) मामलों से संबंधित विधियों पर लागू होता है, और उनमें भी केवल उन पर जिनके प्रवर्तन से अभियुक्त का पक्ष निर्बल हो।[1] व्यवहार (civil) के मामलों से सम्बन्धित विधियों पर तथा उन विधियों पर जिनसे अभियुक्त को लाभ हो यह प्रतिबंध लागू नहीं होता।

संपत्ति-संबंधी अधिकार

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों का काल व्यक्तिवाद का काल था। उस समय तक समाजवादी सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार नहीं हुआ था और वैयक्तिक सम्पत्ति को एक पवित्र संस्था माना जाता था। अमेरिका में तो व्यक्तिवादी परम्परा और भी अधिक प्रबल थी। इसी कारण जब संविधान में जनता के अधिकारों को सम्मिलित करने का प्रश्न उठा तो उनमें सम्पत्ति के अधिकार को भी स्थान दिया गया। संविधान के पाँचवें संशोधन में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को उसके जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति से विधि की उचित प्रक्रिया के बिना वंचित नहीं किया जायगा और न व्यक्तिगत सम्पत्ति को सार्वजनिक उपयोग के लिए ही बिना न्यायोचित प्रतिकर दिए लिया जायगा। इस उपबंध के अनुसार किसी व्यक्ति की सम्पत्ति को राज्य दो ही प्रकार से प्राप्त कर सकता है : (१) सङ्घीय कांग्रेस या राज्य विधानमण्डल द्वारा लगाए गए किसी

[1] Calder *v.* Bull (1798).

कर के द्वारा, तथा (२) सार्वजनिक उपयोग के लिए आवश्यकता पड़ने पर न्यायोचित प्रतिकर देकर।

सङ्घीय शासन तथा राज्यों की कर लगाने की शक्ति अत्यन्त विस्तृत तथा अनिर्धारित है। उस पर केवल वही प्रतिबन्ध हैं जिनका उल्लेख संविधान में है। उदाहरणार्थ संविधान में इस निर्बन्ध का उल्लेख है कि किसी राज्य से निर्यात की गई वस्तुओं पर कोई कर नहीं लगाया जायगा।[1] एक अन्य निर्बन्ध यह है कि कांग्रेस द्वारा लगाए गए समस्त कर, शुल्क आदि देश के सभी भागों में समरूप होने चाहिए।[2] सङ्घीय संविधान में उल्लिखित निर्बन्धों के अतिरिक्त राज्यों के संविधानों में भी कुछ निर्बन्धों का उल्लेख है।

सार्वजनिक उपयोग के लिए सम्पत्ति का अर्जन—यद्यपि संविधान के पाँचवें संशोधन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य सार्वजनिक उपयोग के लिए न्यायोचित प्रतिकर देकर वैयक्तिक सम्पत्ति अर्जित कर सकता है, परन्तु इस सम्बन्ध में एक कठिनाई यह है कि संविधान में "सार्वजनिक उपयोग" और "न्यायोचित प्रतिकर" शब्दों की व्याख्या नहीं की गई है। इस उपबंध के अन्तर्गत सङ्घीय शासन और राज्यों के शासनों ने न केवल पूर्णतः शासनिक कार्यों के लिए सम्पत्ति अर्जित की है वरन् मार्ग, उद्यान आदि के निर्माण के लिए भी सम्पत्ति प्राप्त की है। विभिन्न अवसरों पर न्यायालयों ने भी "सार्वजनिक उपयोग" की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की है। इसी कारण यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि किन-किन कार्यों को "सार्वजनिक उपयोग" से सम्बन्धित माना जायगा।

राज्य द्वारा अर्जित की जाने वाली सम्पत्ति का "न्यायोचित प्रतिकर" क्या है, यह प्रशासनीय अधिकारियों अथवा न्यायालयों के द्वारा निश्चित किया जाता है। सामान्यतः शासन की ओर से प्रतिकर की एक मात्रा निश्चित की जाती है और सम्पत्ति के स्वामी से सम्पर्क स्थापित कर यह जाना जाता है कि उसे वह मात्रा मान्य है या नहीं। यदि सम्पत्ति का स्वामी उसे अपर्याप्त मानता है तो

[1] अनुच्छेद १ धारा (९)

[2] अनुच्छेद १ धारा (८)

समझौते का प्रयास किया जाता है। यदि समझौता नहीं हो पाता तो सम्पत्ति के स्वामी को यह अधिकार होता है कि वह अपने मामले को न्यायालय के समक्ष रखे। ऐसी दशा में संबंधित न्यायालय दोनों पक्षों के तर्क सुनकर यह निश्चित करता है कि "न्यायोचित प्रतिकर" क्या होना चाहिए।

अनुबंध संबंधी अधिकार (Contract Rights)—संविधान के प्रथम अनुच्छेद की दसवीं धारा में राज्यों को ऐसी विधियाँ पारित करने से वर्जित किया गया है जिनके द्वारा किसी अनुबंध से उत्पन्न होने वाले उत्तरदायित्वों में कमी की जाय। इस उपबंध के कारण कोई राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बना सकता जिसके द्वारा किसी व्यक्ति अथवा शासनांग को किसी वैध अनुबन्ध (Contract) से उत्पन्न होने वाले उत्तरदायित्वों से यथा ऋण चुकाने, पारिश्रमिक देने आदि से, मुक्त किया जा सके अथवा उनमें कोई कमी की जा सके। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यह निर्बन्ध केवल राज्यों पर ही लागू होता है, संघीय शासन पर नहीं।

राजनीतिक अधिकार

राजनीतिक अधिकारों के अन्तर्गत सामान्यतः मताधिकार, विधानमंडल का सदस्य निर्वाचित होने का अधिकार, ऐसे विभिन्न कार्यपालिका पदों पर जिनकी पूर्ति निर्वाचन द्वारा होती है निर्वाचित होने का अधिकार आदि अधिकारों को सम्मिलित किया जाता है। कुछ लेखक भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता, संगठन बनाने और एकत्र होने की स्वतंत्रता आदि को भी राजनीतिक अधिकारों में ही सम्मिलित करते हैं, परन्तु हम इनका उल्लेख वैयक्तिक अधिकारों के अन्तर्गत कर चुके हैं।

संयुक्त राज्य के संविधान में मताधिकार का कहीं उल्लेख नहीं है। प्रतिनिधि सभा और सिनेट-दोनों के निर्वाचकों के सम्बन्ध में संविधान में कहा गया है कि इनके निर्वाचकों की योग्यताएँ वही होंगी जो कि उस राज्य के जहाँ से कोई सदस्य निर्वाचित होता है विधानमंडल के सर्वाधिक संख्या वाले सदन के निर्वाचकों के लिए आवश्यक होंगी। इस कारण मताधिकार को अमेरिका के नागरिकों का "सांविधानिक" अथवा "मूल" अधिकार नहीं माना जा सकता। मताधिकार के सम्बन्ध में संविधान के पन्द्रहवें तथा इक्कीसवें संशोधनों में दो

निर्बन्ध हैं जिनके द्वारा नीग्रो लोगों तथा स्त्रियों को भी मताधिकार प्राप्त हो गया है। इन संशोधनों के अनुसार संयुक्त राज्य के नागरिकों को जाति, रंग अथवा पूर्व अधीनता के आधार पर[1] अथवा लिंग-भेद के कारण[2] मताधिकार से वंचित न किया जा सकेगा। परन्तु शिक्षा, निवास या सम्पत्ति सम्बन्धी निर्बंधों के आधार पर उन्हें मताधिकारहीन बनाने में कोई अवरोध नहीं है, और इसी छूट का सहारा लेकर अनेक दक्षिणी राज्यों ने अब तक बहुत से नीग्रो नागरिकों को मताधिकार से वंचित रखा है।

संविधान में उन अर्हताओं (qualifications) का उल्लेख है जिनके उपस्थित होने पर कोई नागरिक प्रतिनिधि सभा तथा सिनेट का सदस्य अथवा राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति आदि के पदों के लिए निर्वाचित हो सकता है। संविधान में उल्लिखित इन अर्हताओं के अतिरिक्त परम्परा के द्वारा अनेक ऐसी अर्हताएँ आवश्यक हो गई हैं जिन्हें पूरा करने पर ही कोई नागरिक उपरोक्त पदों के लिए निर्वाचित हो सकता है। इनका उल्लेख यथास्थान किया जायगा।

न्यायिक प्रक्रिया संबंधी अधिकार

यदि राज्य में न्याय की उचित व्यवस्था न हो तो जनता को कितने ही अधिकार क्यों न प्राप्त हों उनका विशेष महत्व नहीं रहता। अधिकारों का उपयोग तभी संभव हो सकता है जब नागरिक प्रशासनिक अधिकारियों के अनुचित प्रभाव से मुक्त हों। अमेरिकी संविधान के निर्माता इस तथ्य से भली भाँति अवगत थे और इसीलिए उन्होंने न्यायिक प्रक्रिया सम्बन्धी अनेक उपबन्धों का संविधान में समावेश किया है। संविधान के प्रथम दस संशोधनों में से चार में नागरिकों के न्यायिक प्रक्रिया सम्बन्धी अधिकारों का उल्लेख है। यहाँ हम उन्हीं पर विचार करेंगे।

बंदीप्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus)—संयुक्त राज्य के संविधान के प्रथम अनुच्छेद की नवीं धारा में कहा गया है—"जब तक विद्रोह या आक्रमण के कारण सार्वजनिक सुरक्षा के लिए ऐसा करना आवश्यक न हो

[1] पन्द्रहवाँ संशोधन

[2] उन्नीसवाँ संशोधन

जाय 'बंदीप्रत्यक्षीकरण लेख' (Writ of Habeas Corpus) के विशेषाधिकार को निलंबित (suspend) नहीं किया जायगा।" बंदी प्रत्यक्षीकरण का लेख किसी न्यायालय द्वारा किसी ऐसे अधिकारी के नाम जारी किया गया आदेश होता है जिसने किसी व्यक्ति को बंदी या नजरबंद बनाया हो तथा इस लेख में उस व्यक्ति को न्यायालय के सम्मुख इस बात का निश्चय करने के लिए कि क्या वह वैधानिक रूप से नजरबन्द बनाया गया है प्रस्तुत किये जाने का आदेश होता है।[१] यदि न्यायालय के मतानुसार उस व्यक्ति की नजरबन्दी विधिसंगत होती है तो उसे पुनः कारावास भेज दिया जाता है, अन्यथा न्यायालय को तुरन्त उसकी मुक्ति का आदेश देना होता है। इस प्रकार यह लेख (writ) नागरिकों को अधिकारियों की मनमानी ज्यादतियों से बचाता है।

उपर्युक्त सांविधानिक उपबंध से यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में बंदीप्रत्यक्षीकरण के लेख को निलंबित किया जा सकता है। यह निलंबन किसके द्वारा किया जा सकता है, इसके विषय में संविधान मौन है। यह उपबंध उन उपबंधों के मध्य है जिनमें कांग्रेस की शक्तियों पर निर्बन्ध लगाये गए हैं, इसीलिए यह माना जाता है कि कांग्रेस ही बंदीप्रत्यक्षीकरण के लेख को निलंबित कर सकती है। गृह-युद्ध के समय सन् १८६३ में राष्ट्रपति लिंकन ने कांग्रेस से प्राप्त प्राधिकार का प्रयोग कर सैनिक अपराधों के लिए बंदी बनाये गए व्यक्तियों के मामलों के सम्बन्ध में बन्दीप्रत्यक्षीकरण की व्यवस्था को निलंबित किया था। उसी काल के एक मामले पर निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह निश्चय किया था कि सैनिक शासन केवल उन क्षेत्रों तक ही सीमित रह सकता है जहाँ यथार्थ में युद्ध हो रहा हो तथा जहाँ न्यायालय अपना कार्य न कर सकें। अन्य क्षेत्रों में सामान्य रीति से ही न्याय होना चाहिए तथा विधि के अनुसार दण्ड दिया जाना चाहिए।[२]

जूरी द्वारा विचार (Jury Trial)—संयुक्त राज्य के संविधान द्वारा प्रत्याभूतित न्यायिक प्रक्रिया संबंधी दूसरा महत्वपूर्ण अधिकार मुकदमे पर विचार में जूरी की सहायता का अधिकार है। संविधान के तृतीय अनुच्छेद की द्वितीय

[१] Anderson, *op.cit.*, p. 284.

[२] *Ex parte* Milligan (1866)

धारा में कहा गया है—"महाभियोग (Impeachment) के अतिरिक्त समस्त अपराधों के मुकदमों का विचार जूरी द्वारा होगा।" संविधान के छठवें संशोधन में भी यह स्पष्ट उल्लेख है कि समस्त दाण्डिक अभियोजनों (Criminal Prosecutions) में अभियुक्त को द्रुत और सार्वजनिक रूप से, उस राज्य तथा जिले की जिसमें अपराध किया गया हो तथा जिसकी सीमा विधि द्वारा पहले ही निर्धारित की जा चुकी हो, निष्पक्ष जूरी द्वारा विचार कराने और अभियोग के स्वरूप और कारण की सूचना पाने का अधिकार होगा।" सातवें संशोधन में लोक-विधियों (Common law) के मुकदमों में जूरी द्वारा विचार के अधिकार का उल्लेख है। इस संशोधन के अनुसार "लोक विधि के ऐसे सभी मुकदमों में जिनमें विवादग्रस्त धनराशि बीस डॉलर से अधिक होगी जूरी द्वारा विचार का अधिकार सुरक्षित रखा जायगा, तथा जूरी द्वारा परीक्षित किसी तथ्य की संयुक्त राज्य के किसी न्यायालय में लोक विधि के नियमों के अतिरिक्त पुनर्परीक्षा न की जा सकेगी।" संविधान तथा संशोधनों के उपर्युक्त उपबन्ध इस तथ्य को स्पष्ट कर देते हैं कि जूरी द्वारा विचार को संविधान-निर्माताओं द्वारा कितना महत्व दिया गया है।

सामान्यतः जूरी के सदस्यों की संख्या बारह होती है और उनका निर्णय तभी लागू होता है जब वह सर्वसम्मत (unanimous) हो। सर्वोच्च न्यायालय ने अपना यह मत व्यक्त किया है कि यदि अभियुक्त चाहे तो वह बिना जूरी के ही अपने मुकदमे पर विचार करा सकता है और इस कारण अब अनेक ऐसे मामलों पर जिनमें सांविधानिक उपबन्धों के अनुसार जूरी की सहायता ली जानी चाहिए बिना जूरी के ही विचार हो जाता है। न्यायालय के अपमान सम्बन्धी मुकदमों (Contempt of Court), साधारण अपराधों तथा दुर्व्यवहार के मामलों, तथा 'इक्विटी न्यायालयों (Court of Equity) में सुने जाने वाले मामलों में भी जूरी की सहायता नहीं ली जाती। यदि ऐसे सभी मामलों पर जूरी द्वारा विचार हो तो न्यायालयों के लिए कार्य करना ही कठिन हो जाय।

ग्रांड जूरी द्वारा अभियोगारोपण—संविधान के पाँचवें संशोधन के अनुसार किसी व्यक्ति को ग्रांड जूरी (Grand jury) द्वारा अभियोगारोपण (indictment) के बिना मृत्यु दण्ड अथवा किसी निन्दनीय अपराध की

जवाबदेही के लिए बाध्य न किया जायगा। इस नियम का अपवाद केवल वे मामले हैं जो स्थल, जल और नागरिक सेनाओं (militia) में उनके युद्ध अथवा अन्य सार्वजनिक संकट के समय सक्रिय सेवा करने के समय उत्पन्न हो।[१] इस उपबंध में प्रयुक्त "निन्दनीय अपराध" का अर्थ संविधान में स्पष्ट नहीं किया गया है, परन्तु व्यवहार में ऐसे सभी अपराधों को निन्दनीय माना जाता है जिनमें एक वर्ष कारावास का दण्ड दिया जाता है। ऐसे सभी मामलों में ग्रांड जूरी द्वारा अभियोगारोपण आवश्यक होता है।

ग्रांड जूरी कम से कम सात और अधिकतम तेईस सदस्यों की एक समिति होती है जिसके सदस्य लॉटरी या किसी अन्य रीति से चुने जाते हैं। यह न्यायवादियों (Prosecutors) द्वारा लगाये गये आरोपों की जाँच कर अभियुक्त के विरुद्ध आरोप निश्चित करती है। यदि ग्रांड जूरी किसी व्यक्ति को निरपराधी माने तो उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राज्य के अनेक राज्यों ने ग्रांड जूरी द्वारा अभियोगारोपण की प्रथा समाप्त कर दी है और उनमें केवल न्यायवादी (Prosecutor) द्वारा प्रस्तुत आरोप-पत्र (information) को ही पर्याप्त मान लिया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रथा को वैध बताया है।[२]

वैधानिक प्रतिरक्षा का अधिकार—संघीय संविधान के छठे संशोधन के द्वारा प्रत्येक दाण्डिक अपराध के अभियुक्त को यह अधिकार दिया गया है कि विरोधी साक्षियों (witnesses) की गवाही उसकी उपस्थिति में हो, उसके पक्ष के साक्षियों को न्यायालय में उपस्थित होने के लिए बाध्य किया जाय तथा उसे अपनी प्रतिरक्षा के लिए वकील की सहायता प्रदान की जाय। यदि अभियुक्त चाहे तो अपने व्यय पर अपनी इच्छानुसार वकील की सहायता प्राप्त कर सकता है। यदि वह यह व्यय वहन करने में असमर्थ हो तो उसे राज्य की ओर से वकील की सहायता उपलब्ध कराई जाती है। ऐसी अवस्था में उसे प्रायः

---

१ "No person shall be held to answer for a capital or other infamous crime unless on a presentment or indictment of a grand jury, except in cases arising in the land or naval forces or in militia when in actual service in time of war or public danger..." Amendment V.

२ Hurtado *v.* California (1814)

अनुभवी वकील की सहायता प्राप्त नहीं होती। इसी कारण अधिकतर अभियुक्त स्वयं अपना वकील चुनते हैं।

पाँचवें संशोधन में यह निर्बन्ध है कि किसी दाण्डिक मामले में अभियुक्त को अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जायगा। इस उपबंध के परिणामस्वरूप प्रत्येक अभियुक्त न्यायालय में अपना वक्तव्य देने या न देने के लिए स्वतंत्र है। कुछ लेखकों का मत है कि इस उपबंध का निम्न वर्ग के लोगों को विशेष लाभ नहीं होता क्योंकि कभी-कभी पुलिस उन पर बल प्रयोग कर उनसे "अपराध" स्वीकार करा लेती है।

दोहरे दण्ड से संरक्षण—संयुक्त राज्य के किसी नागरिक को एक ही अपराध के लिए दो बार दण्डित नहीं किया जा सकता। यदि एक बार किसी नागरिक को किसी अपराध के अभियोग से न्यायालय मुक्त कर देता है अथवा उस अभियोग में दण्ड दे देता है तो उस पर उसी अभियोग के लिए दोबारा मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। इस संरक्षण का उल्लेख संविधान के पाँचवें संशोधन में है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि निम्न न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। अपीलों को एक ही मुकदमे की कार्यवाही का भाग माना जाता है। यद्यपि कभी-कभी इस उपबंध के कारण अनेक व्यक्ति अपराधी होते हुए भी मुक्त विचरण कर सकते हैं और पुलिस मुकदमा समाप्त होने के पश्चात् प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकती, परन्तु यदि पुलिस को एक ही अपराध के लिए किसी व्यक्ति पर पुनः-पुनः मुकदमा चलाने का अधिकार दे दिया जाय तो राजनीतिक विरोधियों को अकारण त्रस्त करना अत्यन्त सरल हो जायगा।

अत्यधिक जमानतों तथा क्रूर एवं असाधारण दण्डों से संरक्षण—संविधान के आठवें संशोधन के अनुसार किसी अभियुक्त से "अत्यधिक जमानत नहीं माँगी जायगी, अत्यधिक जुर्माने नहीं किये जायेंगे। क्रूर और असाधारण दण्ड नहीं दिये जायेंगे।" यह उपबंध जितना अस्पष्ट है उतना ही विलक्षण भी, क्योंकि अन्य देशों के संविधानों में इसके समरूप कोई उपबंध नहीं मिलता। परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह उपबंध ऐसे समय में संविधान में सम्मिलित किया गया था जब अधिकांश देशों में निरंकुश शासन थे

और साधरण अपराधों के लिए भी अत्यन्त क्रूर दण्ड दिये जाते थे। संविधान में इस उपबंध को सम्मिलित करने का तात्पर्य यही था कि संयुक्त राज्य के न्यायालय अन्य देशों का अनुकरण न कर इस सम्बन्ध में नई परम्परा स्थापित करें।

विधि की उचित प्रक्रिया का संरक्षण—न्यायिक प्रक्रिया सम्बन्धी जिस अंतिम अधिकार का उल्लेख आवश्यक है वह "विधि की उचित प्रक्रिया" (due process of law) का संरक्षण है। पाँचवें संशोधन के एक अनुबन्ध के अनुसार किसी व्यक्ति को उसके "जीवन, स्वतन्त्रता और संपत्ति से विधि की उचित प्रक्रिया के बिना वंचित नहीं किया जायगा।" चौदहवें संशोधन में राज्यों के शासनों पर भी यही निर्बन्ध लगाया गया है।

"विधि की उचित प्रक्रिया" की कोई निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती। समय-समय पर न्यायालयों द्वारा की गई व्याख्याओं के आधार पर कुछ निष्कर्ष मात्र ही संकलित किये जा सकते हैं। न्यायिक प्रक्रिया के सम्बन्ध में सामान्यतः न्यायालयों ने "विधि की उचित प्रक्रिया" का यह अर्थ लगाया है कि अभियुक्त के मुकदमे पर निष्पक्षता से विचार हो, जिस न्यायालय में उसका मुकदमा जाता है उसे उस पर विचार करने का क्षेत्राधिकार हो, अभियुक्त को आरोपों का ज्ञान कराया जाय तथा गवाहियाँ उसके सामने ली जायँ तथा उसे वकील से सहायता लेने का अवसर हो। यदि किसी मुकदमे में इनमें से किसी भी बात का अभाव रहता है तो अपील के समय उच्च न्यायालय यह घोषित कर सकता है कि विधि की उचित प्रक्रिया का पालन नहीं हुआ है।

विधि की उचित प्रक्रिया के उपबन्ध के अधीन न्यायालय कार्यपालिका तथा प्रशासनिक अधिकारियों एवं विधानमण्डलों के कार्यों पर भी नियंत्रण रखते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने संघीय कांग्रेस तथा राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा पारित अनेक ऐसी विधियों को अवैध घोषित किया है जो उसके मतानुसार इस विधि की उचित प्रक्रिया वाले उपबन्ध का उल्लंघन करती थीं। इस सम्बन्ध में दिये गए सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णय परस्पर विरोधी हैं और इस कारण यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि किस समय सर्वोच्च न्यायालय इस उपबन्ध का क्या अर्थ लगायेगा। यह बहुत कुछ न्यायाधीशों के व्यक्तिगत विचारों तथा उनके संस्कारों पर निर्भर रहता है।

अध्याय ६

संयुक्त राज्य अमेरिका की संघीय व्यवस्था

संयुक्त राज्य के संविधान की विशेषताओं पर विचार करते समय यह उल्लेख किया जा चुका है कि वर्तमान संघ-राज्यों (Federal States) में संयुक्त राज्य अमेरिका सर्वाधिक प्राचीन है। डा० फ़ाइनर का मत है कि आधुनिक राज्यों में संघवाद (Federalism) का सिद्धान्त और व्यवहार अमेरिकी संघ-राज्य से, जिसका जन्म सन् १७८७ में हुआ था, अधिक प्राचीन नहीं है।[1] इस कथन का यह अर्थ समझना असंगत होगा कि सन् १७८७ के पूर्व संघवाद की धारणा का अस्तित्व ही नहीं था। प्राचीन ग्रीस तथा मध्यकालीन इटली के नगर-राज्यों के संघ तथा स्विस राज्यमंडल (Swiss Confederation), जिसका जन्म तेरहवीं शताब्दी में हुआ था, इस तथ्य के प्रमाण हैं कि संघ-राज्य की धारणा पूर्णतः नवीन नहीं है। परन्तु संघवाद की कल्पना का विकसित रूप हमें सर्वप्रथम संयुक्त राज्य के संविधान में ही देखने को मिलता है।

संघ-राज्य का अर्थ तथा उसके आवश्यक तत्व—राज्य-शास्त्र के विभिन्न विद्वानों ने संघ-राज्य की भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषा की है। इनमें अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और सरल परिभाषा डा० फ़ाइनर की है। उनके मतानुसार "संघ-राज्य वह है जिसमें प्राधिकार और शक्ति का एक भाग स्थानीय क्षेत्रों में निहित होता है तथा दूसरा भाग एक केन्द्रीय संस्था में जो कि स्वतन्त्र स्थानीय क्षेत्रों के स्वेच्छित सम्मिलन से निर्मित होती है। इन दोनों में से किसी को दूसरे के

---

[1] "Federalism is of extreme modernity. Its theory and practice in the modern states are not older than the American federation which came into existence in 1787."—Finer, Herman, *Theory and Practice of Modern Government*, p. 164.

प्राधिकार और शक्ति को अपहृत करने का अधिकार नहीं होता।"[१] प्रो० डाइसी ने संघ-राज्य को एक राजनीतिक युक्ति (political contrivance) बताया है जिसके द्वारा राष्ट्रीय एकता का राज्यों के अधिकारों के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाता है।[२] प्रो० गिलक्राइस्ट के मतानुसार "आधुनिक संघ-राज्य की एक आवश्यक विशेषता यह है कि दो या दो से अधिक स्वतन्त्र राज्य एक नवीन राज्य स्थापित करने का निश्चय करते हैं।[3] इन परिभाषाओं से संघ-राज्य का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। जैसा कि प्रो० फाइनर और प्रो० गिलक्राइस्ट की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है, यद्यपि संघ-राज्य का निर्माण एकाधिक स्वतन्त्र राज्यों के सम्मिलन से होता है, परन्तु उन राज्यों का अस्तित्व पूर्णतः विलीन नहीं हो जाता। संघ-राज्य के निर्माण के बाद भी उन्हें कुछ ऐसी शक्तियाँ प्राप्त रहती हैं जिनका संघीय शासन अतिक्रमण नहीं कर सकता।

जैसा कि एक पिछले अध्याय में उल्लेख किया जा चुका है, प्रो० स्ट्रांग ने संघवाद के तीन आवश्यक लक्षण बताए हैं। ये हैं—संविधान की सर्वोपरिता, शक्तियों का वितरण तथा न्यायपालिका का संविधान का निर्वचन करने का प्राधिकार।[४] संविधान की सर्वोपरिता (Supremacy of the Confederation) के आवश्यक होने का कारण यह है कि संघ राज्य विभिन्न स्वतन्त्र राज्यों के बीच हुए एक संविदे का परिणाम होता है। संविधान में इस संविदे की शर्तों का ही उल्लेख होता है। इनका उल्लंघन किये जाने से संघ-राज्य के अस्तित्व के लिए ही संकट उत्पन्न हो जायगा। शक्ति-वितरण (Distribution of Powers) इसलिए आवश्यक है कि संघ में सम्मिलित होने वाले राज्य अपना

---

[१] "...a federal state is one in which part of the authority and power is vested in the local areas while another part is vested in a central institution deliberately constituted by an association of the previously independent local areas. Neither has the right to take away power and authority belonging to the other."—Finer, *Ibid*, p. 164.

[२] Dicey, A. V., *Law of the Constitution*, p. 137.

[3] Gilchrist; R. N., *Principles of Political Science*, p. 341.

[४] Strong, C. F., *Modern Political Constitution*, p. 101.

अस्तित्व पूर्णतः विलीन नहीं करते तथा संघ-राज्य के निर्माण के पश्चात् भी अनेक विषयों पर उन्हें विधि-निर्माण की अनन्य शक्ति प्राप्त रहती है। यदि संविधान में स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख न हो कि कौन विषय किसके क्षेत्राधिकार में होगा तो क्षेत्राधिकार सम्बन्धी अनेक विवादों का उत्पन्न होना अवश्यम्भावी है। संघ-राज्य का तीसरा आवश्यक लक्षण है, न्यायपालिका को संविधान का निर्वचन करने की शक्ति प्राप्त होना। संघीय व्यवस्था की सफलता के लिए इस लक्षण की आवश्यकता में संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि संघ और राज्यों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों तथा अन्तर्राज्यिक विवादों का निर्णय करने के लिये एक स्वतन्त्र प्राधिकारी का होना आवश्यक है और इस कार्य के लिए सर्वाधिक योग्य प्राधिकारी न्यायालय ही हो सकते हैं। परन्तु अनेक संघ-राज्यों में न्यायपालिका को यह अधिकार नहीं दिया जाता, और इसी कारण ऐसे राज्यों की संघात्मकता के सम्बन्ध में प्रायः शंका व्यक्त की जाती है।[1] संविधान की विशेषताओं पर विचार करते समय हम यह देख चुके हैं कि उपर्युक्त तीनों लक्षण संयुक्त राज्य के संविधान में विद्यमान हैं।

संयुक्त राज्य में संघीय व्यवस्था अपनाये जाने के कारण—गत एक अध्याय में हम अमेरिका के प्रारम्भिक इतिहास तथा उन परिस्थितियों पर विचार कर चुके हैं जिनमें संयुक्त राज्य के वर्तमान संविधान का निर्माण किया गया था। संविधान-निर्माताओं द्वारा संघीय व्यवस्था को प्रश्रय दिये जाने का कारण मुख्यतः वे परिस्थितियाँ ही थीं जिनमें संविधान का निर्माण हुआ था। एक प्रसिद्ध लेखक के अनुसार एक संघ-राज्य के निर्माण के लिए दो अवस्थाओं का होना आवश्यक है। ये अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं :—

१. संघ-राज्य का निर्माण करनेवाले एककों (Units) में राष्ट्रीयता का भाव उपस्थित होना, तथा

---

[1] सोवियत संघ में न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त नहीं है और इसी कारण अनेक लेखक उसे संघ-राज्य मानने को ही प्रस्तुत नहीं हैं। स्विट्ज़रलैंड में भी न्यायपालिका को यह शक्ति प्राप्त नहीं है, परन्तु वहाँ प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के उपकरणों के प्रयोग के कारण स्थिति में पर्याप्त भिन्नता है।

२. संघ-राज्य का निर्माण करने वाले राज्यों में संगठन (Union) की इच्छा होते हुए भी एकता (Unity) की आकांक्षा न होना।[१]

सन् १७८७ में संयुक्त राज्य में ये दोनों ही अवस्थाएँ वर्तमान थीं। समस्त अमेरिकी उपनिवेशों की जनता ने इंग्लैंड के सम्राट् की अधीनता के काल में समान दुःख और कष्ट सहे थे। इससे उनमें राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ था। इस भावना को उस समय बहुत बल मिला जब तेरहों उपनिवेशों ने एक नेतृत्व में संगठित होकर इंग्लैंड के सम्राट् के विरुद्ध युद्ध किया और उसमें विजय पाई। यद्यपि उपनिवेशों की जनता में धर्म तथा भाषा सम्बन्धी अन्तर वर्तमान थे परन्तु ये अन्तर इतने गम्भीर न थे कि वे राष्ट्रीयता की भावना के विकास को अवरुद्ध करते। विदेशियों तथा आदिवासियों के आक्रमणों के भय ने राष्ट्रीयता की भावना के प्रसार का मार्ग और भी प्रशस्त कर दिया।

स्वाधीनता प्राप्त कर लेने के पश्चात् उपनिवेशों के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि उसकी रक्षा किस प्रकार की जाय। नवप्राप्त स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए वे एक केन्द्रीय सङ्गठन बनाने को तैयार थे परन्तु वे इस केन्द्रीय सङ्गठन को पूर्ण सत्ता समर्पित करने को प्रस्तुत न थे। उनमें अपने पृथक् व्यक्तित्व की रक्षा करने का भाव इतना प्रबल था कि जिस केन्द्रीय संस्था का उन्होंने निर्माण किया वह नितान्त अशक्त तथा अनुपयोगी सिद्ध हुई। राज्यमण्डल के अनुच्छेदों (Articles of Confederation) के स्वीकृत किये जाने के पश्चात् कुछ ही समय में यह सिद्ध हो गया कि उनके अनुसार शासन सञ्चालित होना अत्यन्त कठिन है। उनकी अनुपयुक्तता का उल्लेख करते हुए वुडरो विल्सन ने उन्हें बालू से निर्मित एक ऐसी शृङ्खला बताया है जो किसी को बाँध नहीं सकती।[२] राज्य मण्डल की असफलता ने उपनिवेशों को यह स्पष्ट रूप से बतला दिया कि जब तक एक वास्तविक सङ्घ-राज्य का

---

[१] Strong, C. F., *op. cit.*, p. 102.

[२] "A rope of sand which could bind no one."—Woodrow Wilson as quoted by C. F. Strong in *Modern Political Constitution* on p. 102.

निर्माण नहीं किया जायगा, जब तक एक ऐसे केन्द्रीय शासन की स्थापना नहीं की जायगी जिसे पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त हों, तब तक उनकी स्वतन्त्रता सङ्कट में रहेगी। व्यापार और उद्योगों के विकास की आवश्यकता भी एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना की ओर ही निर्देश कर रही थी।

यद्यपि उपर्युक्त कारणों से उपनिवेशों को एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी, परन्तु वे किसी भी दशा में एकीय राज्य (Unitary State) की स्थापना करने को प्रस्तुत न थे। उन्हें इस बात का भय था कि कहीं ब्रिटिश शासन का स्थान शक्तिशाली केन्द्रीय शासन न ले ले और इस प्रकार उनकी स्वतन्त्रता पुनः विलुप्त हो जाय। इस कठिनाई को हल करने का उपाय हैमिल्टन, वाशिंगटन और मेडीसन सरीखे प्रतिभासम्पन्न नेताओं ने सङ्घवाद का समर्थन कर सुझाया। सङ्घीय व्यवस्था ही एक मात्र ऐसी युक्ति थी जिसके द्वारा राष्ट्रीय एकता तथा राज्यों की स्वतन्त्रता जैसे विरोधी भावों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता था और इसी कारण संयुक्त राज्य के संविधान के निर्माताओं ने उसे प्रश्रय दिया।[1]

संयुक्त राज्य के एकक

संविधान-निर्माण के समय संयुक्त राज्य के एककों (units) की संख्या तेरह थी, परन्तु अब यह बढ़ते-बढ़ते अड़तालीस हो गई है। यह वृद्धि क्रमशः हुई है, यकायक नहीं। सांविधानिक उपबंधों के अनुसार संयुक्त राज्य के एककों की संख्या में अपरिमित वृद्धि हो सकती है, परन्तु ऐसा अनुमान किया जाता है कि अब इस संख्या में अधिक वृद्धि नहीं होगी। इसका कारण यह है कि कनाडा और मेक्सिको के बीच का समस्त महाद्वीपीय क्षेत्र संयुक्त राज्य में सम्मिलित हो चुका है।

नवीन राज्यों को सम्मिलित करने की प्रक्रिया—संयुक्त राज्य में नवीन राज्यों को सम्मिलित करने की प्रक्रिया के सम्बन्ध में संविधान मौन है। उसमें

---

[1] देखिये अलैक्जेंडर हैमिल्टन कृत 'दि कान्टिनेंटलिस्ट' तथा सन् १७८६ के सम्मेलन की आख्या।

केवल इतना ही उल्लेख है कि कांग्रेस सङ्घ (union) में नवीन राज्यों को प्रविष्ट कर सकेगी।[१] यद्यपि अब तक राज्यों को सम्मिलित करते समय सदैव पूर्णतः समान प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया है, परन्तु व्यवहार के आधार पर हम प्रक्रिया सम्बन्धी निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

सर्वप्रथम जो क्षेत्र संयुक्त राज्य में सम्मिलित होने की इच्छा रखता है वह कांग्रेस के समक्ष तत्सम्बन्धी याचिका प्रस्तुत करता है। कभी-कभी कांग्रेस को इस बात का विश्वास दिलाने के लिए कि उस क्षेत्र के निवासी वस्तुतः संयुक्त राज्य के अंग बनना चाहते हैं, जन-मत-संग्रह कराया जाता है। कांग्रेस का याचिका पर निर्णय बहुत-सी बातों पर आश्रित रहता है। यदि केन्द्र में सत्तारूढ़ दल यह अनुभव करता है कि उस क्षेत्र के निवासियों में से अधिकांश उसका समर्थन करेंगे तो कांग्रेस शीघ्र ही याचिका को स्वीकृत कर लेती है और एक अधिनियम पारित कर उस क्षेत्र के निवासियों से संविधान का निर्माण करने के लिये एक सांविधानिक सम्मेलन के सदस्य निर्वाचन करने को कहती है। यदि सत्तारूढ़ दल यह अनुभव करे कि उस क्षेत्र में उसके विरोधियों का प्रभाव अधिक है तो तब तक उसकी याचिका स्वीकृत होना कठिन है जब तक विरोधी दल को सत्ता प्राप्त नहीं होती।[२] सांविधानिक सम्मेलन द्वारा निर्मित संविधान को पहले क्षेत्र के मतदाताओं के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और उनके द्वारा बहुमत से अंगीकृत किये जाने पर कांग्रेस उस पर विचार करती है। उस स्थिति में कांग्रेस के सामने तीन विकल्प होते हैं। वह उसे बिना किसी संशोधन के अंगीकृत कर सकती है, पूर्णतः अस्वीकृत कर सकती है अथवा उसमें ऐसे संशोधन प्रस्तावित कर सकती है जिनको सम्मिलित करने पर वह उसे अंगीकृत कर लेगी। जब कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित समस्त शर्तें पूरी कर दी जाती हैं तथा कांग्रेस संविधान को अंगीकृत कर लेती है तो वह एक प्रस्ताव पारित कर क्षेत्र को राज्य-पद प्रदान कर देती है। इस प्रक्रिया से स्पष्ट हो जाता है कि किसी

---

[१] अनुच्छेद ४ धारा (३)

[२] न्यू मेक्सिको और एरिजोना को इसी कारण वर्षों तक कांग्रेस की स्वीकृति नहीं प्राप्त हुई थी।

क्षेत्र को संयुक्त राज्य में सम्मिलित करने या न करने के लिए कांग्रेस पूर्णतः स्वतन्त्र है।

कांग्रेस द्वारा लगाई गई शर्तों की वैधता—यद्यपि नये राज्यों को प्रविष्ट करते समय कांग्रेस उनसे मनचाही शर्तें मनवाने को स्वतन्त्र है, परन्तु बाद में वे शर्तें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी वैध मानी जायँगी यह आवश्यक नहीं है। ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जब कांग्रेस द्वारा लगाई गई शर्तों को सर्वोच्च न्यायालय ने इस कारण मान्यता देने से असमर्थता प्रकट की कि वे राज्यों की समानता के सिद्धान्त का अतिक्रमण करती हैं। कांग्रेस ने ओक्लाहॉमा (Oklahoma) को राज्य-पद प्रदान करते समय उसे यह शर्त मानने के लिए बाध्य किया था कि वह सन् १९१३ के पूर्व अपनी राजधानी परिवर्तित नहीं करेगा। परन्तु उसने सन् १९१० में ही अपनी राजधानी परिवर्तित की और सर्वोच्च न्यायालय ने इसे अवैध नहीं माना।[1] यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि कांग्रेस को सङ्घ में राज्यों को केवल प्रविष्ट करने की शक्ति प्राप्त है, उन्हें निष्कासित करने की नहीं। सर्वोच्च न्यायालय जिन शर्तों को "राजनीतिक" नहीं मानता उन्हें उसने सम्बन्धित राज्य द्वारा मनवाया है। परन्तु यह निश्चित रूप से कभी नहीं कहा जा सकता कि सर्वोच्च न्यायालय किन शर्तों को मान्यता प्रदान करेगा और किन्हें नहीं।

वर्तमान राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन—संयुक्त राज्य के वर्तमान एककों की सीमाओं में परिवर्तन करने अथवा किसी राज्य के क्षेत्र में नया राज्य बनाने का अधिकार कांग्रेस को प्राप्त नहीं है। इसके लिए उसे सम्बन्धित राज्य या राज्यों की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है।[2] यह उपबन्ध इस बात का स्मरण दिलाता है कि संयुक्त राज्य का निर्माण करने वाले राज्य केन्द्रीय शासन की ओर से कितने सशंक थे। यद्यपि भारत में भी संघीय व्यवस्था है, परन्तु यहाँ केवल केन्द्रीय संसद् ही राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है अथवा नवीन राज्यों का निर्माण कर सकती है। उसे केवल संबंधित राज्यों के विधानमण्डलों

---

[1] Coyle *v.* Smith (1911).

[2] अनुच्छेद ४ धारा (३)

का मत जानना होता है; उनकी अनुमति नहीं प्राप्त करनी होती।[1] हाल ही में राज्य-पुनर्गठन के सम्बन्ध में अपनायी गई प्रक्रिया इसका प्रमाण है।

संघ और राज्यों के संबंधों की अविच्छिन्नता—संयुक्त राज्य के संविधान में इस प्रश्न का कहीं उत्तर नहीं दिया गया है कि क्या संघ में सम्मिलित होने वाले राज्य किसी समय सङ्घ से अपना सम्बन्ध-विच्छेद भी कर सकते हैं। वस्तुत: केवल सोवियत सङ्घ के संविधान के अतिरिक्त, जिसे अनेक लेखक सङ्घीय संविधान मानते ही नहीं हैं, अन्य किसी देश के संविधान में राज्यों को सङ्घ से सम्बन्ध-विच्छेद करने का अधिकार नहीं दिया गया है।[2] स्विट्जरलैण्ड में सन् १८४७ में इस प्रश्न का निर्णय गृह-युद्ध के द्वारा हुआ और कैथोलिक जनता वाले कैंटनों को बाध्य होकर राज्यमण्डल में रहना पड़ा। संयुक्त राज्य में भी इस प्रश्न का निर्णय गृह-युद्ध के द्वारा ही हुआ। गृह-युद्ध में उत्तरी राज्यों की विजय से यह सदैव के लिए निश्चित हो गया कि कोई राज्य संयुक्त राज्य से अपना सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर सकता। संयुक्त राज्य में एक बार सम्मिलित होने का अर्थ है सदा के लिए संयुक्त राज्य का अंग बन जाना। यहाँ यह तथ्य भी विचारणीय है कि संयुक्त राज्य का अंग बने रहने से एक राज्य को इतने लाभ होते हैं कि अब शायद ही कोई राज्य पृथक होने का विचार करे।

राज्यों की समानता

प्राय: यह कहा जाता है कि संयुक्त राज्य में सम्मिलित सभी एकक, अर्थात् राज्य, समान हैं। इस वाक्य से भ्रम उत्पन्न होने की संभावना है। संयुक्त राज्य के एकक न तो क्षेत्रफल की दृष्टि से समान हैं, न जनसंख्या की और न भौतिक समृद्धि की ही दृष्टि से। क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से उनमें कितना

---

[1] भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३ और ४

[2] अधिकांश लेखकों का मत है कि सोवियत सङ्घ में भी कोई एकक सङ्घ से सम्बन्ध विच्छेद करने के अधिकार को व्यवहार में प्रयुक्त नहीं कर सकता। ऐसी माँग करने वाले नेताओं को 'जनता के शत्रु' घोषित कर प्राणदण्ड दे दिया जायगा।

अन्तर है यह इसी तथ्य से ज्ञात हो जायगा कि जहाँ टेक्सास राज्य का क्षेत्रफल २६५,७८० वर्गमील है वहाँ से रोड द्वीप (Rhode Island) का केवल १२५० वर्गमील ही है; जहाँ न्यूयार्क राज्य की जनसंख्या एक करोड़ चौंतीस लाख से अधिक है वहाँ नेवाडा राज्य की जनसंख्या केवल एक लाख दस हजार के लगभग है। इसी कारण कांग्रेस के निम्न सदन में जहाँ न्यूयार्क राज्य के चालीस प्रतिनिधि होते हैं वहाँ नेवाडा का केवल एक प्रतिनिधि होता है। अन्य राज्यों के क्षेत्रफल तथा जनसंख्या उपर्युक्त संख्याओं के मध्य हैं। क्षेत्रफल तथा जनसंख्या में इतना अंतर होने पर भौतिक समृद्धि में अंतर होना स्वाभाविक ही है। तब किस आधार पर समस्त राज्यों को समान कहा जाता है। इस प्रश्न का उत्तर यही है कि राज्यों की समानता वैधानिक है, यथार्थ नहीं। संविधान द्वारा जो शक्तियाँ एक राज्य को दी गई हैं वे ही शेष समस्त राज्यों को भी प्राप्त हैं। यद्यपि कांग्रेस के निम्न सदन में समस्त राज्यों को समान संख्या में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं है, परन्तु इस असमानता का महत्त्व इस कारण नष्ट-प्राय हो जाता है कि सिनेट में समस्त राज्यों को समान संख्या में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है और बिना सिनेट द्वारा पारित हुए कोई विधेयक विधि का रूप नहीं ले सकता। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राज्य में भारत अथवा सोवियत सङ्घ की भाँति एककों के विभिन्न वर्ग नहीं हैं।

संघ और राज्यों के बीच शक्ति-वितरण

एक सङ्घ-राज्य का सर्वाधिक आवश्यक तथा विशिष्ट लक्षण सङ्घ तथा एककों के बीच शक्ति-वितरण होता है। परन्तु समस्त सङ्घीय राज्यों में शक्ति-वितरण समरूप नहीं होता। सामान्यतः यह माना जाता है कि सङ्घ-राज्य में शक्ति-वितरण का आधार यह सिद्धान्त होता है कि राष्ट्रीय महत्त्व के विषय सङ्घीय शासन के क्षेत्र में हों तथा स्थानीय महत्त्व के विषय एककों के क्षेत्र में। परन्तु समस्त सङ्घ-राज्यों में शक्ति-वितरण अनन्य रूप से इसी सिद्धान्त के आधार पर नहीं होता। विभिन्न सङ्घ-राज्यों में शक्ति-वितरण की पद्धति के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण अंतर हैं। कुछ सङ्घ राज्यों के संविधानों में सङ्घ तथा एककों में से केवल किसी एक की शक्तियों का उल्लेख है तथा अवशिष्ट शक्तियाँ अन्य को दी गई हैं। कुछ सङ्घ-राज्यों के संविधानों में सङ्घ तथा एककों दोनों की

शक्तियों का उल्लेख है तथा अवशिष्ट शक्तियाँ उनमें से किसी एक को सौंपी गई हैं। कुछ सङ्घ-राज्यों में ऐसा भी किया गया है कि कुछ विषयों पर सङ्घ अथवा एककों को अनन्य (exclusive) अधिकार दिया गया है तथा कुछ अन्य विषयों पर दोनों का क्षेत्राधिकार माना गया है। यहाँ हम संयुक्त राज्य के संविधान में संघ और राज्यों के बीच किये गए शक्ति-वितरण पर विचार करेंगे।

संयुक्त राज्य में शक्ति-वितरण के आधार-सिद्धान्त—संयुक्त राज्य के संविधान में मुख्यतः संघीय शासन की ही शक्तियों का उल्लेख किया गया है तथा शेष समस्त शक्तियों को राज्यों के लिए सुरक्षित घोषित किया गया है। इसका कारण यह है कि सङ्घीय संविधान के निर्माण के पूर्व राज्य समस्त विषयों में पूर्णतः स्वतन्त्र थे। सङ्घ में सम्मिलित होते समय उन्होंने अपनी केवल कुछ निश्चित शक्तियाँ ही संघीय शासन को सौंपीं तथा शेष का प्रयोग करने के लिए वे पूर्ववत् स्वतन्त्र रहे। इसी कारण प्रायः राज्यों की शक्तियों को "मौलिक" (original) तथा सङ्घीय शासन की शक्तियों को "प्रत्यायोजित" (delegated) कहा जाता है। परन्तु सङ्घीय संविधान में राज्यों की भी कुछ शक्तियों का उल्लेख है तथा कुछ ऐसी शक्तियों का वर्णन है जिन्हें सङ्घ तथा एकक दोनों प्रयुक्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त संविधान में सङ्घ तथा राज्यों की शक्तियों पर अनेक निषेधों का उल्लेख है। स्पष्टता के लिए हम संयुक्त राज्य में शासनिक शक्तियों के वितरण का इस प्रकार उल्लेख कर सकते हैं :

१. वे शक्तियाँ जो स्पष्टतः केवल सङ्घीय शासन को ही दी गई हैं। इन्हें हम संघीय शासन की अनन्य शक्तियाँ कह सकते हैं।
२. वे शक्तियाँ जो स्पष्टतः केवल राज्यों को दी गई हैं। इन्हें हम राज्यों की संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त अनन्य शक्तियाँ कह सकते हैं।
३. वे शक्तियाँ जो सङ्घीय शासन अथवा राज्यों के द्वारा समान रूप से प्रयुक्त हो सकती हैं। इन्हें हम समवर्ती शक्तियाँ कह सकते हैं।
४. वे शक्तियाँ जिन्हें संघीय शासन के लिए निषिद्ध किया गया है।
५. वे शक्तियाँ जो राज्यों के लिए निषिद्ध घोषित की गई हैं।
६. वे शक्तियाँ जो संघ और राज्य दोनों के लिए निषिद्ध हैं।

अब हम इन शक्तियों पर क्रमशः संक्षेप में विचार करेंगे।

सङ्घीय शासन की अनन्य शक्तियाँ—संविधान में किसी एक स्थान पर संघीय शासन की समस्त शक्तियों का उल्लेख नहीं है। उसमें विभिन्न संघीय शासनांगों—कांग्रेस, राष्ट्रपति, सर्वोच्चन्यायालय—की शक्तियों का पृथक्-पृथक् उल्लेख है। इन सब शासनांगों की शक्तियों को सामूहिक रूप से हम संघीय शासन की शक्तियाँ कह सकते हैं। मुख्यतः ये शक्तियाँ वैदेशिक सम्बन्धों, स्थल तथा जल सेना, अन्तर्राज्यिक व्यापार, करेंसी, तौल और माप, डाक व्यवस्था आदि से सम्बन्धित हैं।

संविधान में संघीय कांग्रेस को विदेशी व्यापार, अन्तर्राज्यिक (inter-state) व्यापार तथा नीग्रो लोगों से व्यापार को नियमित करने तथा सिक्के बनाने, उनका तथा विदेशी सिक्कों का मूल्य निश्चित करने, जाली सिक्के बनाने वालों का दण्ड निश्चित करने एवं तोल और माप के परिमाण निर्धारित करने का अनन्य अधिकार दिया गया है। कांग्रेस को डाकखाने स्थापित करने तथा डाक-मार्गों की व्यवस्था करने एवं सर्वोच्च न्यायालय से निम्न श्रेणी के न्यायालय स्थापित करने का कार्य भी सौंपा गया है। कांग्रेस युद्ध घोषित कर सकती है, जल और थल सेना की व्यवस्था कर सकती है तथा समुद्री दस्युओं को दण्ड देने की व्यवस्था कर सकती है। उसे कोलम्बिया जिले के लिए विधियाँ बनाने तथा ऐसी समस्त विधियाँ, जो उपर्युक्त शक्तियों के प्रयोग के लिए अथवा किसी अन्य शासनांग को दी गई शक्तियों के प्रयोग के लिए आवश्यक हों, बनाने का अनन्य अधिकार भी प्राप्त है।[१]

उपर्युक्त शक्तियों के अतिरिक्त संघीय शासन को विदेशों से संधियाँ करने तथा विदेशों में दौतिक प्रतिनिधि नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त है।[२] नये राज्यों को संयुक्त राज्य में संघीय कांग्रेस ही प्रविष्ट कर सकती है। संघीय कांग्रेस को दासता का अन्त करने, नागरिकता के अधिकार को सुरक्षित करने तथा जाति, रंग, लिंग आदि के आधार पर मताधिकार में असमानता का अन्त करने के लिए विधियाँ बनाने का अधिकार भी प्राप्त है।

---

[१] अनुच्छेद १ धारा (८)
[२] अनुच्छेद २ धारा (२)

राज्यों की अनन्य शक्तियाँ—अमेरिकी संविधान में राज्यों की शक्तियों का उल्लेख नहीं है और इस कारण उनकी अनन्य शक्तियों की पूर्ण सूची प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु उनमें से कुछ मुख्य शक्तियों का उल्लेख किया जा सकता है। राज्यों को जो अनन्य शक्तियाँ प्राप्त हैं वे मुख्यत: आंतरिक शासन से सम्बन्धित हैं, यथा शिक्षा, स्वास्थ्य तथा निर्धनों की सहायता की व्यवस्था करना, व्यवहार तथा दण्ड सम्बन्धी विधियाँ बनाना, अपने क्षेत्र में शांति व व्यवस्था बनाये रखना, स्थानीय शासन संस्थाओं का निर्माण करना, यातायात सम्बन्धी विधियाँ बनाना, आदि। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अनेक संघ-राज्यों में इनमें से अनेक विषयों को समवर्ती विषयों में स्थान दिया जाता है। यद्यपि संविधान में संघीय शासन की शक्तियों का उल्लेख करने का आशय ही यह था कि शेष शक्तियाँ राज्यों अथवा जनता को प्राप्त हैं, परन्तु इस स्थिति को दसवें संशोधन के द्वारा पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया। इस संशोधन के अनुसार "संविधान द्वारा जो शक्तियाँ संयुक्त राज्य को प्रत्यायोजित नहीं की गई हैं तथा जिनका उसके द्वारा राज्यों के लिए निषेध नहीं किया गया है, वे राज्यों अथवा जनता के लिए सुरक्षित रहेंगी।"[1]

समवर्ती शक्तियाँ—संविधान में कुछ विषयों को सङ्घ या एककों में से किसी एक के क्षेत्र में न रख समवर्ती क्षेत्र में रखने का कारण यह होता है कि उन विषयों को सामान्यत: स्थानीय महत्व का माना जाता है, परन्तु विशेष परिस्थितियों में सङ्घीय शासन उन विषयों पर विधियाँ बना कर देश भर में एकरूपता ला सकता है। एक कारण यह भी है कि केन्द्र और एककों दोनों को ही धन की आवश्यकता होती है और इस कारण दोनों को कर लगाने की शक्ति देना आवश्यक हो जाता है। संयुक्त राज्य के संविधान में निम्न विषयों पर सङ्घ और राज्यों दोनों को समवर्ती शक्ति प्रदान की गई है :

कांग्रेस और राज्य के विधानमण्डल दोनों ही दिवालियापन (bankruptcy), देशीकरण (naturalisation) तथा कुछ वाणिज्य सम्बन्धी

---

[1] "The powers not delegated to the United States by the constitution, nor prohibited by it to the states, are reserved to the states respectively, or to the people."—Tenth Amendment.

मामलों पर विधियाँ बना सकते हैं। यदि दोनों की विधियों में प्रतिकूलता होती है तो सङ्घीय विधि को प्रधानता दी जाती है।

सङ्घीय शासन और राज्यों को, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के कर लगाने तथा एकत्र करने की शक्ति प्राप्त है। इनकी कर लगाने की शक्ति पर कुछ निर्बन्ध हैं जिनका आगे उल्लेख किया जायगा। इसी प्रकार केन्द्र और राज्य दोनों को सार्वजनिक ऋण लेने का अधिकार है।

कांग्रेस के दोनों सदनों के सदस्यों के निर्वाचन से सम्बन्धित अनेक विषयों पर केन्द्र और राज्य दोनों ही व्यवस्था कर सकते हैं।

केन्द्रीय शासन की शक्तियों पर निषेध—संविधान द्वारा केन्द्रीय शासन की शक्तियों पर निर्बन्ध (restrictions) लगाने के दो उद्देश्य थे—प्रथम राज्यों के अधिकारों की रक्षा तथा द्वितीय जनता के अधिकारों की रक्षा। जैसा कि निम्न निषेधों से स्पष्ट है मुख्यत: इनका उद्देश्य जनता के अधिकारों की रक्षा करना ही था। मुख्य निषेध निम्नलिखित हैं :

१. आन्तरिक विद्रोह अथवा विदेशी आक्रमण के कारण उत्पन्न परिस्थिति को छोड़ कर अन्य किसी स्थिति में 'बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख' को निलंबित नहीं किया जा सकेगा। कांग्रेस अधिकार-अपहरण विधेयक (Bill of Attainder) अथवा कोई घटनोपरांत विधि (ex post fact law) भी नहीं बना सकती।

२. व्यापारिक मामलों में किसी राज्य को अन्य राज्यों की तुलना में प्रश्रय नहीं दिया जायगा और न किसी राज्य से निर्यात किये जाने वाले माल पर कोई शुल्क या कर लगाया जायेगा।

३. किसी व्यक्ति को कोई आभिजात्यवर्गीय खिताब नहीं दिया जायगा।

४. राज-कोश से तब तक धन नहीं लिया जावेगा जब तक उसके लिए विधि द्वारा विनियोग (Appropriations) की व्यवस्था न की गई हो।[1]

---

[1] उपर्युक्त समस्त निषेधों के लिए देखिए : अनुच्छेद १ धारा (९)

५. किसी धर्म की विधि द्वारा स्थापना न की जायगी और न किसी धर्म के पालन का निषेध किया जायगा। जनता की भाषण देने एवं समाचार पत्र प्रकाशित करने की स्वतन्त्रता तथा शांतिपूर्ण सभा करने एवं याचिका प्रस्तुत करने के अधिकार को अपहृत या सीमित न किया जायगा।[१] संयुक्त राज्य के किसी पद के लिए किसी धार्मिक परीक्षा को अर्हता (qualification) का रूप न दिया जा सकेगा।[२]

६. किसी प्राणदंड वाले अथवा अन्य निंदनीय अपराध के लिए किसी व्यक्ति पर ग्रांड जूरी द्वारा अभियोगारोपण के बिना मुकदमा न चलाया जा सकेगा,[३] तथा व्यवहार सम्बन्धी कोई ऐसा मुकदमा जिसमें विवादग्रस्त धनराशि बीस डालर से अधिक हो बिना जूरी की सहायता के निर्णीत किया जायगा।[४]

संघीय शासन की शक्तियों पर इसी प्रकार के अन्य अनेक निर्बन्ध संविधान द्वारा लगाये गए हैं जिनका प्रथम आठ संशोधनों में उल्लेख है। इनका नागरिकों के मूलाधिकारों पर विचार करते समय उल्लेख किया गया है।

राज्यों की शक्तियों पर निषेध—संविधान में न केवल संघीय शासन को अनेक कार्य करने से वर्जित किया गया है वरन् राज्यों के शासनों पर भी इसी प्रकार के निषेध लगाये गए हैं। मुख्य निषेध निम्नलिखित हैं :

१. कोई राज्य किसी प्रकार की संधि या मित्रता (Alliance) न करेगा, सिक्के नहीं चलायेगा; अधिकार-अपहरण विधेयक अथवा घटनोपरांत विधि नहीं बनायेगा अथवा आभिजात्यवर्गीय खिताब नहीं प्रदान करेगा।

२. कोई राज्य कांग्रेस की स्वीकृति के बिना आयात और निर्यात पर किसी प्रकार का कर नहीं लगायेगा और यदि वह कोई ऐसा कर लगायेगा तो उसकी आय संघीय कोश में जायगी। बिना कांग्रेस की स्वीकृति के कोई राज्य सेना अथवा शांति-काल में युद्ध-पोत नहीं रखेगा, किसी दूसरे राज्य अथवा किसी

---

[१] प्रथम संशोधन

[२] अनुच्छेद ६

[३] पाँचवाँ संशोधन

[४] छठवाँ संशोधन।

विदेशी सत्ता से किसी प्रकार का समझौता (Agreement) नहीं करेगा, बिना आक्रमण हुए अथवा ऐसी स्थिति उत्पन्न हुए जिसमें देर करना अनिष्टकर हो युद्ध में भाग नहीं लेगा।[1]

३. कोई राज्य शासन के गणतांत्रिक रूप के अतिरिक्त अन्य कोई रूप स्वीकार नहीं करेगा।

४. कोई राज्य दास-प्रथा को जारी नहीं रखेगा, किसी व्यक्ति को विधि की उचित प्रक्रिया के बिना जीवन, स्वतंत्रता या सम्पत्ति से वंचित नहीं करेगा तथा किसी व्यक्ति को विधि के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।[2]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ऐसे अनेक निर्बन्ध जो संघीय शासन पर लगाये गए हैं वे राज्यों पर नहीं लगाये गए हैं, यथा धर्म की स्थापना, भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता, जूरी प्रथा आदि से सम्बन्धित निर्बन्ध। सम्भवत: इसका कारण यही है कि उस समय राज्यों के संविधानों में जनता की स्वतंत्रताओं का उल्लेख था और संविधान-निर्माताओं ने संघीय संविधान में इन निर्बन्धों के उल्लेख करने का विवादग्रस्त प्रश्न उठाना उचित नहीं समझा।

संघीय शासन और राज्यों की शक्तियों पर समरूप निर्बंध—संविधान में कुछ ऐसे निर्बन्धों का भी उल्लेख किया गया है जो राज्यों और संघ दोनों पर लागू होते हैं। उदाहरणार्थ, घटनोपरांत विधियों तथा अधिकार-अपहरण विधेयकों के निर्माण से सम्बन्धित निर्बन्ध दोनों के लिए है। इसी प्रकार दोनों में से किसी को किसी नागरिक को जाति, रंग, पूर्ववर्ती अधीनता अथवा लिंग के आधार पर मताधिकार से वंचित करने का अधिकार नहीं है। दसवें संशोधन की शब्दावली भी यही संकेत करती है कि संघीय शासन और राज्यों की शक्तियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी शक्तियाँ हैं जो जनता के लिए सुरक्षित हैं। इन शक्तियों का प्रयोग संघ अथवा राज्यों में से किसी के द्वारा नहीं किया जा सकता।

---

[1] उपर्युक्त तथा अन्य अनेक निर्बन्धों के लिए देखिए, अनुच्छेद १ धारा (१०)

[2] देखिए, तेरहवाँ, चौदहवाँ, तथा पन्द्रहवाँ संशोधन।

संघीय शासन की शक्तियों में वृद्धि

संयुक्त राज्य के संविधान के निर्माताओं ने सन् १७८७ में संघीय शासन को जो शक्तियाँ प्रदान की थीं, आज उनमें इतनी अधिक वृद्धि हो चुकी है कि उसकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की होगी। यदि आज उनमें से कोई आकर संयुक्त राज्य के संघीय शसन द्वारा किये जाने वाले कृत्यों पर दृष्टि डाले तो वह आश्चर्यचकित हुए बिना न रहेगा। इस वृद्धि के अनेक कारण हैं। सर्वप्रथम महत्वपूर्ण कारण तो यही है कि सन् १७८७ की और आज की परिस्थितियों में पृथ्वी और आकाश का अन्तर है। आजकल सभी देशों के शासनों के द्वारा ऐसे कार्य किये जाते हैं जिनके बारे में अठारहवीं शताब्दी के लोगों ने कभी सुना भी न होगा। आज राज्य को अनेक नवीन तथा अति गम्भीर आर्थिक व सामाजिक समस्याओं को सुलझाना पड़ता है। वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि आज सभी देश एक दूसरे के बहुत निकट आ गये हैं। यही कारण है कि आज प्रतिरक्षा (Defence) और विदेशी नीति की समस्याएँ अत्यन्त जटिल हो गई हैं। इन समस्याओं का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए देश में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार का होना आवश्यक हो गया है। इसी कारण आज विश्व के सभी संघ-राज्यों की प्रवृत्ति सत्ता के केन्द्रीकरण की ओर है। परन्तु इन सामान्य कारणों के अतिरिक्त संयुक्त राज्य में संघीय शासन की शक्तियों में वृद्धि होने के कुछ विशेष कारण भी हैं। इनमें प्रथम है, संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संविधान की उदार व्याख्या तथा द्वितीय है अमेरिकी गृह-युद्ध (१८६१-६५) का प्रभाव। गृह-युद्ध के पश्चात् अनेक संशोधनों के द्वारा संघीय शासन की शक्तियों में वृद्धि की गई थी, परन्तु सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों द्वारा हुई वृद्धि के सम्मुख इन संशोधनों द्वारा हुई वृद्धि का महत्व अधिक नहीं है।

सांविधानिक संशोधनों द्वारा वृद्धि—संविधान के तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, सोलहवें तथा उन्नीसवें संशोधनों में सङ्घीय कांग्रेस को विधि-निर्माण सम्बन्धी शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें तथा उन्नीसवें संशोधनों में जिन विषयों के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है, उनके सम्बन्ध में आवश्यक विधियाँ बनाने की शक्ति कांग्रेस को प्रदान की गई है। इनमें से प्रथम तीन दासों की मुक्ति, उनके मताधिकार एवं अन्य अधिकारों से सम्बन्धित

हैं तथा अंतिम के द्वारा स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया गया था। सोलहवें संशोधन के द्वारा कांग्रेस को सभी स्रोतों से प्राप्त आय पर कर लगाने तथा एकत्र करने का अधिकार दिया गया, जो कि एक महत्वपूर्ण अधिकार है। अन्य संशोधनों से सङ्घीय शासन की शक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

निहित शक्तियों के सिद्धान्त द्वारा वृद्धि—सङ्घीय शासन की शक्तियों की वृद्धि के सम्बन्ध में निहित शक्तियों का सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers) अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन सर्वप्रथम सन् १७९० में अलेक्जेंडर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) ने किया था जो उस समय राजकोष का सचिव (Secretary of Treasury) था तथा इसके पूर्व सांविधानिक सम्मेलन का सदस्य रह चुका था। हैमिल्टन ने एक 'संयुक्त राज्य का बैंक' (Bank of the United States) स्थापित करने का प्रस्ताव रखा था, तथा जब इस प्रस्ताव के विरोधियों ने यह तर्क किया कि संविधान में सङ्घीय शासन को ऐसा करने की शक्ति नहीं दी गई है तो हैमिल्टन ने उत्तर दिया था कि यह शक्ति सङ्घीय शासन को प्रदान की गई अन्य शक्तियों में निहित है। हैमिल्टन के इस सिद्धान्त को अप्रत्यक्ष रूप से उसी समय मान्यता प्राप्त हो गई जब संयुक्त राज्य के बैंक की स्थापना हुई, परंतु उसे वैधानिक मान्यता प्रदान करने का श्रेय संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश जॉन मार्शल (John Marshall) को है।

सन् १८१६ में कांग्रेस ने एक अधिनियम पारित कर संयुक्त राज्य के बैंक के निगमन (incorporation) की व्याख्या की थी। इस बैंक की एक शाखा मेरीलैंड राज्य में भी स्थापित की गई थी। सन् १८१८ में मेरीलैंड राज्य ने ऐसे सभी बैंकों के द्वारा जारी किये गये नोटों पर जिन्हें राज्य के शासन की ओर से अधिकृत नहीं किया गया था कर लगाया। मेरीलैण्ड राज्य में स्थित बैंक की शाखा के खजांची मैकुलॉच (McCulloch) ने यह कर देने से इंकार किया और अंत में यह मामला सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख आया। अन्य प्रश्नों के साथ सर्वोच्च न्यायालय को इस प्रश्न पर भी निर्णय देना था कि क्या कांग्रेस को बैंकों के निगमन की व्यवस्था करने का अधिकार है, क्योंकि संविधान में इस अधिकार का कहीं उल्लेख न था। मुख्य न्यायाधिपति मार्शल

ने अपने निर्णय में कहा कि संविधान की प्रकृति ही ऐसी होती है कि उसमें प्रत्येक शक्ति के सब अर्थों तथा उसको कार्यान्वित करने के सब उपायों का उल्लेख नहीं किया जा सकता। उसमें केवल विस्तृत रूप-रेखा का ही उल्लेख किया जा सकता है जिससे विस्तार की बातों को घटित किया जा सकता है।[१] न्यायाधीश मार्शल का मत था कि अमेरिकी संविधान के निर्माता इस बात से भिज्ञ थे और इसी कारण उन्होंने कांग्रेस को ऐसी समस्त विधियाँ बनाने की शक्ति दी थी जो कांग्रेस को दी गई शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिए तथा संविधान के द्वारा संयुक्त राज्य के शासन को अथवा उसके किसी विभाग अथवा अधिकारी को दी गई शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक तथा उचित हों।[२] यह तथ्य इस बात से भी स्पष्ट है कि संविधान में उसकी पक्षपातरहित तथा न्याय्य व्याख्या किये जाने पर किसी प्रकार का निर्बंध नहीं लगाया गया है। जॉन मार्शल ने अपने निर्णय में इस प्रश्न का निश्चय करते हुए कहा—"उद्देश्य उचित होना चाहिए, उसे संविधान की सीमा के अन्तर्गत होना चाहिये, तब ऐसे सभी उपाय जो उचित हों, जो उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनाये गये हों, जिनका निषेध न किया गया हो और जो संविधान की शब्दावली तथा भावना के अनुकूल हों, सांविधानिक हैं।[3] न्यायाधीश मार्शल

[१] "A constitution to contain an accurate detail of all the subdivisions of which its great powers will admit, and of all means by which they may be carried into execution would partake of the prolixity of a legal code, and could scarcely be embraced by the human mind. It would probably be never understood by the public. Its nature, therefore, requires that only its great outlines should be marked; its important objects designated, and the minor ingredients which compose those objects be deduced from the nature of the objects themselves."—McCulloch *v.* Maryland (1819)

[२] अनुच्छेद १ की धारा (८) का अन्तिम खंड।

[3] Let the end be legitimate, let it be within the scope of the constitution, and all means which are appropriate, which are plainly adapted to that end, which are not prohibited, but consist with the letter and spirit of the constitution, are constitutional."—McCulloch *v.* Maryland (1916)

का यह निर्णय अमेरिका के सांविधानिक इतिहास में युगान्तकारी था। उनके जीवनी-लेखक ने तो यहाँ तक कहा है कि इस निर्णय द्वारा "राष्ट्र की मूल-विधि का पुनर्लेखन हुआ।"[१]

'निहित शक्ति के सिद्धांत' ने अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था को कितना अधिक प्रभावित किया है यह इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि आज सङ्घीय कांग्रेस द्वारा पारित की जाने वाली अधिकांश विधियाँ इस सिद्धांत के अभाव में कभी पारित न हो सकतीं। उसके लिए पग-पग पर सांविधानिक संशोधन की आवश्यकता पड़ती। उदाहरणार्थ, अमेरिकी संविधान में कांग्रेस को विदेशी व्यापार तथा अन्तर्राज्यिक वाणिज्य का नियमन करने की शक्ति दी गई है। इस शक्ति के अन्तर्गत कांग्रेस ने स्थल, जल तथा वायु मार्गों से यात्रियों तथा माल के आवागमन पर नियन्त्रण किया है। इसी शक्ति के अन्तर्गत उसने तार, टेलीफोन तथा रेडियो आदि से सम्बन्धित विधियाँ बनाई हैं तथा विद्युत, तेल इत्यादि के स्थानान्तरण को विधियों के द्वारा नियंत्रित किया है। आज कांग्रेस इसी शक्ति के अधीन किसी वस्तु के एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए जाने पर निर्बन्ध लगा सकती है तथा लगाती रही है। इसी प्रकार संविधान में कांग्रेस को संयुक्त राज्य की साख पर धन ऋण लेने की जो शक्ति दी गई है उसके अधीन कांग्रेस ने राष्ट्रीय बैंक, सङ्घीय आरक्षित बैंक (Federal Reserve Banks), आंतरिक ऋण बन्धक निगम (Home Loan Mortgage Corporation) आदि की स्थापना की है तथा उनकी कार्यवाहियों का अधीक्षण करती है। संविधान में कांग्रेस को सेना संगठित करने तथा उसका पोषण करने की जो शक्ति दी गई है उसका युद्ध काल में इतना विस्तृत अर्थ लगाया गया था कि उसकी कल्पना करना भी कठिन होता। इस शक्ति के अधीन कांग्रेस ने लाखों लोगों को सेना में भरती किया, विदेशी भेदियों के लिए अत्यन्त कड़े दण्ड की व्यवस्था की, रेल, तार और टेलीफोन लाइनों का संचालन किया, यह आदेश दिया कि अमुक उद्योग सप्ताह के अमुक दिन बन्द रहेंगे तथा यह निश्चित किया कि सप्ताह के इन दिनों जनता को अन्न या मांस नहीं

[१] The decision "rewrote the fundamental law of the nation."—Beveridge, A. J., *Life of John Marshall*, Vol. IV, p. 308.

मिलेगा।[1] सङ्घीय शासन को ये सब शक्तियाँ निहित शक्तियों के सिद्धांत से ही प्राप्त हुई।

संविधान-निर्माताओं का यह विश्वास था कि नव-संविधान के अन्तर्गत संयुक्त राज्य के सङ्घीय शासन की शक्तियाँ इनी-गिनी तथा अत्यन्त सीमित रहेंगी तथा अधिकांश विषयों में राज्यों की स्वतन्त्रता पूर्ववत् बनी रहेगी। शायद होता भी ऐसा ही; पर 'निहित शक्तियों के सिद्धांत' ने स्थिति को पूरी तरह परिवर्तित कर दिया। राज्यों के द्वारा किये जाने वाले कार्यों की संख्या आज भी कम नहीं है, परन्तु अधिक महत्त्व के अधिकांश कार्य सङ्घीय शासन द्वारा ही किये जाते हैं।

सङ्घ तथा राज्यों की यथार्थ स्थिति

सङ्घ तथा राज्यों के बीच शक्ति-वितरण से परिचित हो जाने पर तथा यह जान लेने पर कि संविधान-निर्माण के समय से अब तक सङ्घीय शासन की शक्तियों में निरन्तर वृद्धि होती रही है, यह जानने की जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है कि संघ तथा राज्यों की यथार्थ स्थिति क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देना अत्यन्त कठिन है क्योंकि उनकी स्थिति में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। संविधान के प्रवर्तन के पश्चात् पर्याप्त समय तक राज्यों की स्थिति बहुत अच्छी थी। संघीय शासन को जनता के हृदयों में स्थान पाने में पर्याप्त समय लगा क्योंकि नागरिकों में अपने-अपने राज्य के प्रति अत्यन्त ममत्व और सम्मान का भाव था। परन्तु जैसे-जैसे संघीय शासन अपने कार्यों को दक्षतापूर्वक सम्पादित करता रहा वैसे-वैसे नागरिकों में भी अपने को एक राष्ट्र के अङ्ग मानने का भाव दृढ़ होता गया। ऐसी स्थिति में राज्यों का महत्व स्वाभाविकतया कम होता गया और संघीय शासन का प्रभाव बढ़ता गया। गृह-युद्ध के समय तक राज्य अपनी प्रधानता की स्थिति को बनाये रखने का प्रयत्न करते रहे, परन्तु सन् १८६५ में दक्षिणी राज्यों की पराजय के पश्चात् से निश्चय ही सङ्घ का प्रभाव बहुत बढ़ गया। सङ्घीय शासन का प्रभाव बढ़ने का दूसरा कारण वे न्यायिक निर्णय थे जिन्होंने उसे अनेक नवीन शक्तियों से युक्त कर दिया। बीसवीं शताब्दी में प्रथम

[1] Munro, W. B., *op. cit.*, p. 79.

महायुद्ध, महान् आर्थिक संकट तथा द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों ने सङ्घीय शासन को असीमित शक्ति-सम्पन्न बना दिया। वस्तुतः राष्ट्रपति रूजवेल्ट की 'नई योजना' (New Deal) के काल में तो ऐसा लगने लगा था कि सङ्घीय शासन सब कुछ करने में समर्थ है। प्रो० इलियट सरीखे कुछ लेखकों ने यह मत व्यक्त किया था कि परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण अब राज्यों के अस्तित्व की आवश्यकता ही समाप्त हो गई है। उनका मत था कि राज्यों को समाप्त कर संयुक्त राज्य को कुछ क्षेत्रों में विभक्त कर देना चाहिए और इन क्षेत्रों को वे कार्य सौंप दिये जाने चाहिए जिन्हें राष्ट्रीय सरकार को करने में कठिनाई होती है।[1] परन्तु उनकी योजना को व्यापक समर्थन प्राप्त न हो सका। भविष्य में भी उनकी योजना के कार्यान्वित किये जाने की कोई आशा नहीं है क्योंकि ऐसा करने के लिए तीन-चौथाई राज्यों की सहमति प्राप्त करना आवश्यक होगा, जिसका प्राप्त होना लगभग असंभव-सा ही है। राज्यों का अधिकार-क्षेत्र कितना ही सीमित क्यों न हो गया हो तथा सङ्घीय शासन की शक्तियों में कितनी ही वृद्धि क्यों न हो गई हो, पर राज्यों में अपना अस्तित्व बनाये रखने की प्रबल भावना विद्यमान है।

यह सम्भव है कि भविष्य में संघीय शासन की शक्तियों में और अधिक वृद्धि हो जाय और लगभग समस्त महत्वपूर्ण विषयों में निर्देशन उसी के द्वारा किया जाय, परन्तु फिर भी राज्यों के शासनों का पर्याप्त महत्व रहेगा। इसका एक मुख्य कारण यह है कि 'निहित शक्तियों के सिद्धान्त' से संघीय शासन की शक्तियों में एक सीमा तक ही वृद्धि हो सकती है। उससे अधिक वृद्धि के लिए संविधान में संशोधन करना आवश्यक होगा जिसके लिए तीन-चौथाई राज्यों का अनुसमर्थन आवश्यक होगा। राज्य कभी भी अपना अस्तित्व नष्ट करने के प्रस्ताव का समर्थन करेंगे यह आशा करना कठिन ही है।

संयुक्त राज्य की संघीय व्यवस्था की अन्य संघ-राज्यों से तुलना

संयुक्त राज्य के संविधान के निर्माण के पश्चात् अन्य अनेक देशों में सङ्घीय व्यवस्था अपनाई गई है। इन देशों में मुख्य स्विट्जरलैंड, आस्ट्रेलिया,

[1] Elliot, W. Y., *The Need for Constitutional Reform*, Chapter 9.

कनाडा, भारत तथा सोवियत संघ हैं। परन्तु उपर्युक्त समस्त देशों में संघीय व्यवस्था का रूप पूर्णतः समान नहीं है; यहाँ तक कि इनमें से कुछ राज्यों की संघीय व्यवस्था में संघवाद के कुछ आवश्यक तत्वों का भी अभाव है। इसी कारण संयुक्त राज्य की सङ्घीय व्यवस्था का अध्ययन समाप्त करने के पूर्व हम उसका अन्य संघ-राज्यों की सङ्घीय व्यवस्था से तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

संयुक्त राज्य, आस्ट्रेलिया तथा स्विट्जरलैंड—स्विट्जरलैंड तथा आस्ट्रेलिया में सङ्घवाद क्रमशः सन् १८४८ तथा १९०० में अंगीकृत किया गया। आस्ट्रेलिया की सङ्घीय व्यवस्था बहुत कुछ अमेरिका की व्यवस्था के अनुरूप है। दोनों ही देशों में लिखित तथा अनम्य (rigid) संविधान हैं, सङ्घ का निर्माण विभिन्न राज्यों के सम्मिलन से हुआ है, तथा दोनों के संविधानों के सङ्घ और एककों के मध्य शक्ति-वितरण में पर्याप्त साम्य है। दोनों में ही अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को प्रदान की गई हैं। सङ्घीय विधानमण्डल के उच्च सदन, सिनेट, का निर्माण दोनों राज्यों में एककों के समान प्रतिनिधित्व के आधार पर होता है। संयुक्त राज्य तथा आस्ट्रेलिया दोनों में सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त है। दोनों सङ्घ-राज्यों में एककों के अपने संविधान हैं।

स्विट्जरलैंड के संविधान में भी उपर्युक्त विशेषताओं में से एक के अतिरिक्त प्रायः सभी विद्यमान हैं। स्विट्जरलैंड के संघीय न्यायालय (Federal Tribunal) को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इसी कारण स्विट्जरलैंड का सङ्घीय न्यायालय सङ्घीय विधानमण्डल द्वारा पारित की गई किसी विधि को संविधान के प्रतिकूल होने पर भी अवैध घोषित नहीं कर सकता। परन्तु स्विट्जरलैंड में न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) की व्यवस्था के अभाव की पूर्ति एक अन्य व्यवस्था से हो जाती है; वहाँ नागरिकों की एक निश्चित संख्या को किसी विधि पर लोक-निर्णय (Referendum) की माँग करने का अधिकार दिया गया है। ऐसी माँग किये जाने पर वह विधि नागरिकों के समक्ष प्रस्तुत की जाती है और वे मतदान में उसे स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकते हैं। अधिकांश लेखकों का मत है कि स्विट्जरलैंड में लोक-निर्णय की व्यवस्था के कारण न्यायिक-पुनर्विलोकन की आवश्यकता रह ही नहीं जाती।

इस प्रकार स्विट्ज़रलैंड में संघवाद को संशोधित रूप में ही स्वीकृत किया गया है।

संयुक्त राज्य, आस्ट्रेलिया और स्विट्ज़रलैंड के संविधानों में संघ और एककों के बीच किये गए शक्ति-वितरण में पर्याप्त अंतर है। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय तथा सिनेट की शक्तियों में भी अंतर है। इन विभेदों का विस्तृत उल्लेख करने के स्थान पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इन देशों की सङ्घीय व्यवस्था में अन्तर अवश्य हैं परन्तु उनकी तुलना में समानताओं का ही आधिक्य है।

संयुक्त राज्य, कनाडा तथा भारत—कनाडा तथा भारत की सङ्घीय व्यवस्था से संयुक्त राज्य की सङ्घीय व्यवस्था की तुलना करने पर हमें समानताएँ कम और अन्तर अधिक मिलते हैं। भारत तथा कनाडा दोनों के संविधानों में अवशिष्ट शक्तियाँ संघीय शासन को दी गई हैं, जब कि संयुक्त राज्य में वे राज्यों को प्राप्त हैं। भारत तथा कनाडा दोनों में एककों की कार्यपालिका के प्रधान अर्थात् गवर्नरों की नियुक्ति केन्द्रीय शासन द्वारा की जाती है जब कि संयुक्त राज्य में वे राज्य की जनता के द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। भारत तथा कनाडा के संघीय विधानमंडलों के उच्च सदन का निर्माण संयुक्त राज्य की सिनेट की भाँति एककों की समानता के सिद्धान्त के आधार पर नहीं होता। जहाँ तक एककों की स्वायत्तता का सम्बन्ध है इतना उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा कि जहाँ संयुक्त राज्य में एकक संघ को हस्तांरित किये गए विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों में संप्रभु हैं, वहाँ कनाडा में संघीय शासन एककों द्वारा बनाई गई विधियों पर अभिषेधाधिकार (Veto) का प्रयोग कर सकता है। संयुक्त राज्य के संविधान में स्पष्ट उल्लेख है कि किसी राज्य की सीमाओं में उसकी इच्छा के बिना परिवर्तन नहीं किया जायगा और न उसके क्षेत्र में से कोई नवीन राज्य बनाया जायगा, परन्तु भारतीय संविधान के अनुसार संघीय विधानमण्डल राज्यों की इच्छा के अभाव में भी उनकी सीमाओं में परिवर्तन कर सकता है। उपर्युक्त तथ्य इसी निष्कर्ष की ओर इंगित करते हैं कि भारत तथा कनाडा की संघीय व्यवस्था का रूप अमेरिकी संघवाद से पर्याप्त भिन्न है। भारत तथा कनाडा दोनों में संयुक्त राज्य की तुलना में केन्द्र अधिक सशक्त है, तथा एककों की स्थिति तुलनात्मक दृष्टि से निर्बल है।

संयुक्त राज्य तथा सोवियत सङ्घ—सोवियत संघ की गणना भी संघ-राज्यों में की जाती है, यद्यपि कुछ लेखक उसे यथार्थ संघ-राज्य मानने को प्रस्तुत नहीं हैं। संयुक्त राज्य की संघीय व्यवस्था से तुलना करने पर हम पाते हैं कि सोवियत संघ में संघवाद के तीन आवश्यक समझे जाने वाले तत्वों में से एक—न्यायपालिका का संविधान की व्याख्या करने के अधिकार, का पूर्णतः अभाव है। सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत द्वारा बनाई हुई किसी विधि को सर्वोच्च न्यायालय अवैध घोषित नहीं कर सकता। जहाँ तक अन्य तत्वों का सम्बन्ध है; यद्यपि सोवियत संघ का संविधान लिखित भी है और अनम्य भी परन्तु उसे संयुक्त राज्य के संविधान के समान महत्ता प्राप्त नहीं है। उसमें संशोधन करने के लिए एककों की सहमति की भी आवश्यकता नहीं होती। केवल सङ्घीय सर्वोच्च सोवियत दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित कर उसमें संशोधन कर सकती है और प्रायः उसके प्रत्येक सत्र में ही संविधान में संशोधन किये जाते हैं। यद्यपि सोवियत संविधान में संघ में सम्मिलित होने वाले गणराज्यों को "संप्रभु" (Sovereign) कहा गया है, तथा उन्हें पृथक सेनाएँ रखने और विदेशों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार दिया गया है। परन्तु सोवियत संविधान की एक विशेषता यह है कि एककों को विस्तृत शक्तियाँ देकर भी प्रायः प्रत्येक विषय में सामान्य निर्देशन की शक्ति सङ्घीय शासन को प्रदान की गई है। इस शक्ति के अन्तर्गत केन्द्र को एककों पर पर्याप्त नियन्त्रण रखने का अवसर मिल जाता है। इसके अतिरिक्त कम्यूनिस्ट पार्टी के सर्वव्यापी प्रभाव के कारण सोवियत सङ्घ और एकीय राज्यों में विशेष अन्तर शेष नहीं रह जाता। तुलनात्मक दृष्टि से अमेरिकी राज्यों की स्थिति बहुत अच्छी है।

सोवियत प्रवक्ता इस बात पर बहुत बल देते हैं कि केवल सोवियत संविधान में ही एककों को सङ्घ से पृथक होने का अधिकार प्राप्त है और इस कारण सोवियत संविधान ही एकमेव पूर्णतः सङ्घीय संविधान है। परन्तु व्यवहार में इस अधिकार का कभी प्रयोग किया जा सकेगा, यह अति सन्देहजनक है। अब तक के अनुभव के आधार पर यही कहा जा सकता है कि इस अधिकार का प्रयोग किया जाना सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में इस अधिकार का सारा महत्व ही नष्ट हो जाता है।



अध्याय ७

संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति-पद

संयुक्त राज्य के संविधान में न केवल केन्द्र और राज्यों के बीच ही शक्ति का वितरण किया गया है, वरन् विभिन्न सङ्घीय शासनांगों को भी पृथक शक्तियाँ दी गई हैं तथा एक बड़ी सीमा तक उन्हें एक दूसरे के प्रभाव से मुक्त रखा गया है। संविधान के अनुसार संयुक्त राज्य की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में, विधायक शक्ति कांग्रेस में तथा न्यायिक शक्ति संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय में निहित है। संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता है, तथा उसका पद न केवल संयुक्त राज्य का सर्वाधिक गौरवशाली तथा सम्मानित पद है वरन् संसार के समस्त राजनीतिक पदों में अद्वितीय है। इसी कारण सङ्घीय शासन के अन्य अङ्गों का अध्ययन आरम्भ करने के पूर्व हम राष्ट्रपति पद पर विचार करेंगे।

राष्ट्रपति-पद का सृजन तथा विकास—राज्यमण्डल (Confederation) के काल में संयुक्त राज्य में कार्यपालिका के नाम पर कुछ शासन-विभाग मात्र ही थे, जिनका अधिकार अत्यन्त सीमित था। वस्तुतः राज्यमण्डल के प्रयोग की असफलता का एक मुख्य कारण केन्द्रीय शासन में सशक्त कार्यपालिका का अभाव भी था। इसी कारण सन् १७८७ में फिलाडेल्फिया में एकत्र हुए प्रतिनिधियों में इस प्रश्न पर प्रायः मतैक्य-सा ही था कि नव-संविधान के अन्तर्गत केन्द्र में एक शक्तिशाली कार्यपालिका होना चाहिए। परन्तु जहाँ उनमें इस प्रश्न पर मतैक्य था वहाँ इस प्रश्न पर तीव्र विवाद भी था कि सङ्घीय कार्यपालिका का स्वरूप क्या हो। सङ्घीय कार्यपालिका के प्रधान की नियुक्ति, कार्यकाल तथा शक्तियों आदि के सम्बन्ध में उनमें पर्याप्त मतभेद थे। जहाँ एक ओर ऐसे प्रतिनिधि थे जो संयुक्त राज्य के प्रधान कार्यपालिका अधिकारी के रूप में एक वंशानुगत राजा चाहते थे, वहाँ दूसरी ओर ऐसे प्रतिनिधि भी थे जो जनता के द्वारा कार्यपालिका के प्रधान के प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित किये जाने

के पक्ष में थे। इन दो अतिवादी मतों के अतिरिक्त भी अन्य अनेक मत थे। कुछ प्रतिनिधि कार्यपालिका के प्रधान की जीवन भर के लिए नियुक्ति के पक्ष में थे, कुछ उसे सदाचारपर्यन्त अपने पद पर कार्य करते रहने देना चाहते थे और कुछ उसके एक निश्चित अवधि के लिए नियुक्त या निर्वाचित किये जाने का समर्थन कर रहे थे। कार्यपालिका के प्रधान को दी जाने वाली शक्तियों के सम्बन्ध में भी उनमें तीव्र मतभेद थे। कुछ प्रतिनिधि चाहते थे कि वह विधान-मण्डल के अधीन रहे जबकि कुछ का मत था कि कार्यपालिका विधानमण्डल के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त रहे। यह प्रश्न भी विवादग्रस्त था कि सङ्घ की कार्य-पालिका एकल (single) हो या बहुल (plural); अर्थात् सङ्घ की कार्य-पालिका शक्ति एक व्यक्ति में निहित हो अथवा अनेक व्यक्तियों की एक परिषद् या समिति में।

संविधान-निर्माताओं ने पर्याप्त वाद-विवाद और विचार के पश्चात् वंशाधिकार के स्थान पर निर्वाचन प्रथा, अनिश्चित कार्यकाल के स्थान पर निर्धारित कार्यकाल, तथा बहुल के स्थान पर एकल कार्यपालिका को प्रश्रय दिया। उन्होंने यह निश्चय किया कि सङ्घ की कार्यपालिका शक्ति संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति में निहित रहे, जो कि चार वर्ष के लिए अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित हो। जिन कारणों ने उन्हें उपर्युक्त निश्चय पर पहुँचने के लिए प्रेरित किया, उन पर विस्तार से विचार करना यहाँ सम्भव नहीं है। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ब्रिटेन के सम्राट् की दासता से मुक्त होने के पश्चात् वे अन्य किसी व्यक्ति की दासता स्वीकार करने को प्रस्तुत न थे और इसी कारण उन्होंने एक निर्धारित कार्यकाल वाले निर्वाचित राष्ट्रपति के पद की व्यवस्था की। कार्यपालिका शक्ति एक व्यक्ति के हाथ में सौंपने का प्रधान कारण यह था कि संविधान निर्माण के पूर्व संयुक्त राज्य के अनेक राज्यों में एक व्यक्ति, गवर्नर, को ही कार्यपालिका शक्ति प्राप्त थी, और उन राज्यों के अनुभव ने भी संविधान-निर्माताओं का मार्गदर्शन किया। यहाँ यह प्रश्न भी हमारे सम्मुख आता है कि संविधान-निर्माताओं ने राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचन की व्यवस्था क्यों की। क्या जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचन की व्यवस्था अमेरिका की जनतांत्रिक परम्पराओं के अधिक अनुरूप न होती? इस प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर यही है कि संविधान-निर्माताओं में से अधिकांश को जनसाधारण की

विद्वता में विश्वास न था। वे नहीं चाहते थे कि जनता किसी ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसे राष्ट्रपति निर्वाचित कर ले जो पदासीन होकर निरंकुश हो जाय। निरंकुशता के भय के कारण ही उन्होंने राष्ट्रपति को इनी-गिनी शक्तियाँ दी थीं। वे चाहते थे कि राष्ट्रपति की शक्तियाँ सीमित हों, पर उसे अतुलनीय सम्मान प्राप्त हो और उन्हें राष्ट्रपति-पद से आशा भी यही थी।

राष्ट्रपति के निर्वाचन, कार्यकाल तथा शक्तियों के सम्बन्ध में मूल संविधान के उपबन्धों में अधिक परिवर्तन नहीं हुए हैं। संविधान के संशोधनों में राष्ट्रपति-पद से सम्बन्ध रखने वाले तीन संशोधन हैं—बारहवाँ, उन्नीसवाँ तथा बाईसवाँ। इनमें बारहवें संशोधन का ही अधिक महत्व है। इसके द्वारा यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का निर्वाचन पृथक-पृथक हुआ करेगा। उन्नीसवें संशोधन के द्वारा राष्ट्रपति के कार्यभार ग्रहण करने की तिथि में परिवर्तन किया गया है तथा बाईसवें संशोधन के द्वारा इस पूर्वप्रचलित प्रथा को वैधानिक रूप दिया गया है कि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति-पद के लिए दो बार से अधिक निर्वाचित न हो सकेगा। परन्तु व्यवहार में राष्ट्रपति-पद के निर्वाचन की प्रणाली, उसकी शक्तियों तथा महत्व में इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि स्वयं संविधान-निर्माताओं को भी आश्चर्यचकित होना पड़ेगा। इन्हीं परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए मनरो ने लिखा है—"उन्होंने (संविधान-निर्माताओं ने) यह अनुभव नहीं किया कि राष्ट्र के विकास के साथ-साथ यह पद संघीय शक्ति का केन्द्र तथा राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन जायगा।"[१] प्रो० मनरो के शब्दों में ही संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति पद आज "संसार का सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न निर्वाचनीय पद"[२] बन गया है। प्रो० लास्की ने भी राष्ट्रपति-पद की महत्ता में हुए परिवर्तन को सङ्घीय व्यवस्था में हुआ सबसे बड़ा परिवर्तन माना है।[3]

[१] Munro, W. B., *op. cit.*, p. 156.

[२] "The most powerful elective office in the world."

[3] "The greatest change in the federal system is in the significance of the presidential office."—Laski, *American Democracy*, p. 72.

राष्ट्रपति का निर्वाचन

निर्वाचन संबंधी सांविधानिक उपबंध—संयुक्त राज्य के संविधान के द्वितीय अनुच्छेद की प्रथम धारा में राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रणाली का उल्लेख है। इस प्रणाली में बारहवें संशोधन के द्वारा कुछ परिवर्तन किये गये हैं। जैसा कि इसके पूर्व उल्लेख किया जा चुका है, संविधान में राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित किये जाने की व्यवस्था है, जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से नहीं। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने के लिए प्रत्येक राज्य अपने विधान मंडल द्वारा निर्धारित रीति से उतने निर्वाचक (electors) नियुक्त करेगा जितने कांग्रेस के दोनों सदनों में मिलाकर उसके प्रतिनिधि हों। उदाहरणार्थ, यदि किसी राज्य के प्रतिनिधि-सभा (House of Representatives) में चार प्रतिनिधि हों और सिनेट (Senate) में दो, तो वह राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने के लिए छः प्रतिनिधि निर्वाचित करेगा। कोई भी ऐसा व्यक्ति जो कांग्रेस के दोनों सदनों में से किसी का सदस्य हो, अथवा संयुक्त राज्य के अधीन किसी लाभ या उत्तरदायित्व के पद पर कार्य कर रहा हो, राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए निर्वाचक नियुक्त नहीं किया जा सकता। निर्वाचक अपने-अपने राज्य में एकत्र होकर दो ऐसे प्रत्याशियों (Candidates) को मत देंगे जिनमें से कम से कम एक उनके राज्य का निवासी न हो। मतदान के पश्चात् संविधान में मत-पत्रों को सील बन्द कर सिनेट के अध्यक्ष के पास भेजे जाने का आदेश दिया गया है। सिनेट के अध्यक्ष को कांग्रेस के दोनों सदनों के समक्ष मत-पत्रों की गणना करने को कहा गया है। सर्वाधिक मत पाने वाला व्यक्ति, यदि उसे निर्वाचकों की पूर्ण संख्या के आधे से अधिक मत प्राप्त हों, तो वह राष्ट्रपति निर्वाचित हो जायगा। मूल संविधान में यह भी उपबंध था कि जिस व्यक्ति को राष्ट्रपति निर्वाचित होने वाले प्रत्याशी के अतिरिक्त अन्य समस्त प्रत्याशियों से अधिक मत मिलें तथा यदि उसे निर्वाचकों की पूर्ण संख्या के आधे से अधिक भाग के मत भी प्राप्त हों, वह संयुक्त राज्य का उपराष्ट्रपति (Vice President) निर्वाचित घोषित किया जाय।

उपर्युक्त व्यवस्था में यह सम्भव है कि एक से अधिक व्यक्तियों को निर्वाचकों की पूर्ण संख्या के अर्द्धभाग से अधिक मत प्राप्त हों तथा उनको प्राप्त मतों की संख्या समान हो। यह भी सम्भावना है कि किसी भी प्रत्याशी को

निर्वाचकों की पूर्ण संख्या के अर्द्धभाग से अधिक मत प्राप्त न हों। संविधान में इन दोनों ही अवस्थाओं के लिए विकल्प व्यवस्था की गई है। एक से अधिक प्रत्याशियों के निर्वाचकों की बहुसंख्या द्वारा समर्थित होने तथा समान मत पाने पर प्रतिनिधि-सभा (House of Representatives) को यह अधिकार दिया गया था कि वह उनमें से किसी एक को राष्ट्रपति चुन ले। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के निर्वाचकों की बहुसंख्या के मत न पाने पर प्रतिनिधि-सभा को यह अधिकार दिया गया था कि वह पाँच सर्वाधिक मत पाने वाले व्यक्तियों में से किसी एक को राष्ट्रपति चुन ले। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रतिनिधि-सभा द्वारा चुनाव किये जाने की दशा में मतदान के समय एक राज्य के समस्त प्रतिनिधियों को मिल कर एक मत प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में एक राज्य के समस्त प्रतिनिधियों को परस्पर सर्वसम्मति या बहुमत से यह निश्चय करना पड़ेगा कि वे किस व्यक्ति को राष्ट्रपति-पद के लिए मत देना चाहते हैं। वे स्वतंत्र रूप से पृथक-पृथक मत नहीं दे सकते। प्रत्येक अवस्था में राष्ट्रपति-पद के लिए चुने जाने वाले व्यक्ति के बाद सर्वाधिक मत पाने वाले व्यक्ति के उपराष्ट्रपति चुने जाने की मूल संविधान में व्यवस्था थी। संविधान में यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि यदि एक से अधिक व्यक्तियों को समान संख्या में मत प्राप्त हों तो उपराष्ट्रपति सिनेट द्वारा निर्वाचित किया जाय।

संविधान में निर्वाचकों की नियुक्ति के समय तथा उनके द्वारा मतदान की तिथि आदि का उल्लेख नहीं है। इन्हें निश्चित करने का अधिकार कांग्रेस को दिया गया है। संविधान में केवल इतना ही उपबंध है कि मतदान का दिन समस्त संयुक्त राज्य में एक ही होगा।

उपर्युक्त निर्वाचन-प्रणाली के संबंध में यहाँ दो शब्द कहना अनुपयुक्त न होगा। इससे जनता के प्रति अविश्वास की भावना का तो बोध होता ही है, साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मूल संविधान में राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध में राज्यों को पर्याप्त स्वतंत्रता दी गई थी। उनके विधानमंडल निर्वाचकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में मनचाही व्यवस्था करने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र थे। प्रतिनिधि-सभा द्वारा निर्वाचन की अवस्था में भी मतदान राज्यों के अनुसार होने के कारण छोटे राज्यों को पर्याप्त सुविधा प्रदान की गई थी। इस निर्वाचन

प्रणाली में राजनीतिक दलों का तथा प्रत्याशियों के नामांकन (nomination) का कहीं उल्लेख न था। इसका कारण यही था कि संविधान-निर्माता राष्ट्रपति-पद को दलबन्दी की दलदल से दूर ही रखना चाहते थे। उनकी यह इच्छा थी कि निर्वाचकगण परस्पर स्वतंत्रतापूर्वक विचार-विनिमय कर योग्यतम व्यक्तियों को ही इस उच्च पद के लिए चुनें।

प्रारम्भिक निर्वाचन तथा राजनीतिक दलों का उदय—संविधान में उल्लिखित उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार केवल प्रथम दो निर्वाचन हुए। इन दोनों निर्वाचनों में जार्ज वाशिंगटन को, जिन्होंने स्वातंत्र्य संग्राम में अमेरिकी उपनिवेशों का सफलतापूर्वक नेतृत्व किया था तथा तत्पश्चात् फिलाडेल्फिया के सांविधानिक सम्मेलन का कुशलता के साथ सभापतित्व किया था, निर्वाचकों द्वारा सर्वसम्मति से (unanimously) राष्ट्रपति चुना गया। तृतीय निर्वाचन सन् १७९६ में हुआ, पर उस समय तक परिस्थिति में परिवर्तन होना आरम्भ हो गया था। राजनीतिक दलों का उदय होने लगा था और यह प्रायः निश्चित-सा हो गया था कि निर्वाचक जॉन एडम्स अथवा टॉमस जैफरसन में से ही किसी को मत देंगे। चतुर्थ निर्वाचन पूर्णतः दलीय आधार पर हुआ। इस समय तक जनतांत्रिक गणराज्यवादी (Democratic Republicans) तथा संघवादी (Federalists) नामक दो दल क्षेत्र में आ गए थे और उन्होंने निर्वाचन में अपने दो-दो प्रत्याशी खड़े किये थे। उस समय से अब तक निर्वाचन निरन्तर दलीय आधार पर ही होता है। संविधान-निर्माताओं का सुखद स्वप्न कि निर्वाचकगण दलगत राजनीति से मुक्त रह कर परस्पर विचार-विनिमय कर स्वतंत्रतापूर्वक मतदान करेंगे, सदैव के लिए छिन्न-भिन्न हो गया।

सन् १८०० का चुनाव तथा बारहवाँ संशोधन—सन् १८०० के निर्वाचन में एक व्यावहारिक कठिनाई प्रस्तुत हुई जिसका उस समय तो समाधान हो गया, पर भविष्य में वैसी कठिनाई को उत्पन्न न होने देने के लिए संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता अनुभव की गई। मूल संविधान में यह उपबंध था कि प्रत्येक निर्वाचक दो व्यक्तियों को मत दे। सन् १८०० में दो व्यक्तियों को समान संख्या में मत प्राप्त हुए। उस समय यह कठिनाई उत्पन्न हुई कि उनमें से किसे राष्ट्रपति घोषित किया जाय। इस कठिनाई को हल करने

के लिए सांविधानिक उपबंध के अनुसार प्रतिनिधि-सभा के द्वारा निर्वाचन कराया गया। संघर्ष इतना तीव्र था कि छत्तीस बार मतदान करना पड़ा। भाग्यवश, जैसी कि जनतांत्रिक दल की इच्छा थी, जैफर्सन ही राष्ट्रपति निर्वाचित हुए, परन्तु इस कठिनाई को स्थायी रूप-से दूर करने के लिए सन् १८०४ में संविधान में बारहवाँ संशोधन सम्मिलित कर यह व्यवस्था की गई कि निर्वाचक अपने मत-पत्रों में यह स्पष्ट उल्लेख करें कि वे किसे राष्ट्रपति-पद के लिए मत दे रहे हैं और किसे उपराष्ट्रपति-पद के लिए।

प्रतिनिधि-सभा द्वारा किया गया अन्य चुनाव—सन् १८०० के बाद से अब तक केवल एक बार और प्रतिनिधि-सभा ने राष्ट्रपति को निर्वाचित किया है। सन् १८२४ के निर्वाचन में राष्ट्रपति-पद के प्रत्याशियों में किसी को निर्वाचकों की पूर्ण संख्या का बहुमत नहीं प्राप्त हुआ। तब प्रतिनिधि सभा ने राष्ट्रपति का चुनाव किया। यद्यपि निर्वाचकों द्वारा मतदान में ऐण्ड्रयू जैकसन (Andrew Jackson) को अधिक मत प्राप्त हुए थे, पर प्रतिनिधि-सभा ने जॉन क्विन्सी एडम्स (John Quincy Adams) को राष्ट्रपति निर्वाचित किया।

निर्वाचन की वर्तमान प्रणाली

यद्यपि राष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित सांविधानिक उपबंध अभी भी मुख्यत: वही हैं जिन्हें सन् १७८७ में अंगीकृत किया गया था और जिनके अनुसार राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचन की व्यवस्था की गई थी, पर व्यवहार में अब राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष रीति से ही होता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि हम केवल सांविधानिक उपबंधों के अध्ययन से ही संतुष्ट न होकर निर्वाचन की वास्तविक प्रणाली पर दृष्टि डालें। निर्वाचन की पूर्ण प्रणाली को हम दो स्थूल भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) संविधानेतर प्रक्रिया (non-Constitutional procedure) ,तथा (२) सांविधानिक प्रक्रिया (Constitutional procedure)। संविधानेतर प्रक्रिया में दो चरण (stages) होते हैं—राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशियों का नामांकन (nomination) तथा राष्ट्रपति के निर्वाचकों का नामांकन। सांविधानिक प्रक्रिया इसके पश्चात् प्रारम्भ होती है और उसमें तीन चरण होते हैं—निर्वाचकों का निर्वाचन, निर्वाचकों द्वारा मतदान, तथा मतों की

गणना। सिनेट के अध्यक्ष द्वारा मतों की गणना राष्ट्रपति के निर्वाचन का अंतिम चरण है और उसके पश्चात् राष्ट्रपति-पद के लिए निर्वाचित व्यक्ति के नाम की घोषणा कर दी जाती है। यहाँ हम संक्षेप में उपर्युक्त पाँचों चरणों पर प्रकाश डालेंगे।

१. राष्ट्रपति-पद के लिए नामांकन—सामान्यत: निर्वाचनों में प्रत्याशियों के नामांकन किसी सरकारी अधिकारी के सम्मुख होते हैं, पर संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति-पद के निर्वाचन में नामांकन इस प्रकार नहीं होते। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है संविधान-निर्माताओं ने नामांकन संबंधी कोई व्यवस्था नहीं की थी। इसी कारण राष्ट्रपति-पद के प्रत्याशियों का नामांकन प्रमुख राजनीतिक दलों के राष्ट्रीय सम्मेलनों में किया जाता है। प्रत्याशियों के नामांकन की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है इस कारण हम केवल उसकी मुख्य बातों पर ही विचार करेंगे।

राष्ट्रपति के निर्वाचन की तिथि के प्रायः एक वर्ष पूर्व दिसम्बर या जनवरी में मुख्य राजनीतिक दलों की राष्ट्रीय समितियों के द्वारा अपने-अपने दल के राष्ट्रीय सम्मेलन की तिथि तथा स्थान के संबंध में निश्चय किया जाता है तथा राज्यों के संगठनों को एक निश्चित संख्या में प्रतिनिधि भेजने को कहा जाता है। राष्ट्रीय सम्मेलन प्राय: जून या जुलाई में होते हैं और परम्परा के अनुसार पहले रिपब्लिकन दल का सम्मेलन होता है और उसके कुछ समय पश्चात् डेमोक्रेट दल का सम्मेलन होता है। राष्ट्रीय सम्मेलन में पर्याप्त संख्या में प्रतिनिधि एकत्र होते हैं इस कारण सम्मेलन बड़े नगरों में ही होते हैं।

सन् १९१२ तक संयुक्त राज्य के दोनों प्रमुख राजनीतिक दलों—रिपब्लिकन तथा डेमाक्रेट—के राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रत्येक राज्य को अपने प्रतिनिधि सभा तथा सिनेट के सदस्यों की संख्या के दुगुने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था। परन्तु उसके बाद रिपब्लिकन दल ने उन राज्यों को जिनमें रिपब्लिकन दल के अधिक प्रत्याशी विजयी होते थे अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने की व्यवस्था की। सन् १९४० के बाद डेमोक्रेट दल ने भी अपने समर्थक राज्यों को राष्ट्रीय सम्मेलन में अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने की व्यवस्था की है। प्रतिनिधियों के अतिरिक्त प्रत्येक राज्य उतने ही विकल्प प्रतिनिधि (alternates) भी

भेजता है। इस प्रकार रिपब्लिकन तथा डेमोक्रेट दलों के सम्मेलनों में प्रायः दो-ढाई हजार प्रतिनिधि तथा विकल्प प्रतिनिधि भाग लेते हैं। सन् १९०५ तक राष्ट्रीय सम्मेलनों के लिए प्रतिनिधि दलों के राज्य सम्मेलनों के द्वारा निर्वाचित किये जाते थे पर उस वर्ष कुछ राज्यों ने प्रत्यक्ष प्रारंभिक निर्वाचन (direct primaries) की प्रणाली को अपनाया। इस प्रणाली के अनुसार राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रतिनिधियों का निर्वाचन राज्य सम्मेलनों द्वारा न किया जा कर प्रत्यक्ष रीति से मतदाताओं द्वारा किया जाता है। सामान्यतः मतदाता अपने दल के राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने के लिए प्रतिनिधियों को प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित करते हैं। सन् १९१६ तक अनेक राज्यों ने इस प्रणाली को स्वीकृत कर लिया था पर उसके बाद इसे किसी नवीन राज्य ने नहीं अपनाया तथा अनेक राज्यों ने इसे त्याग दिया।

अपने निर्वाचन के पश्चात् प्रतिनिधि दल राष्ट्रीय समिति द्वारा पूर्व-निर्धारित समय तथा स्थान पर एकत्र होते हैं, तथा राष्ट्रीय सम्मेलन की कार्य-वाही आरंभ होती है। राष्ट्रीय सम्मेलन का वातावरण अत्यंत भव्य तथा दर्शनीय होता है। प्रायः अत्यंत गम्भीर प्रकृति के तथा प्रौढ़ावस्था प्राप्त व्यक्ति भी कुछ समय के लिए किशोरावस्था के बालकों जैसा व्यवहार करते हैं।[१] सम्मेलन के प्रथम दिनों में सभापति का निर्वाचन तथा प्रतिनिधियों के प्रमाण-पत्रों का परीक्षण किया जाता है तथा पार्टी के घोषणा-पत्र (platform) को अंगीकृत किया जाता है। तीसरे या चौथे दिन सभापति द्वारा राष्ट्रपति-पद के लिए नामांकित प्रत्याशियों की घोषणा की जाती है। नामांकन के पश्चात् कभी-कभी

---

[१] "The inhibitions and restraints of years of maturity are cast to the winds. Almost every type of prank and trick associated with school boys and college fraternities is to be observed. The most pompous and conservative men of affairs surrender their dignity and display the exuberance and enthusiasm of callow youth. (In 1944 the Democratic convention drank 125,000 bottles of "pop" 300 quarts of whisky and some 200,000 bottles of bear along with eating 100,000 hot dogs.)"—Zink, *op. cit.*, p. 191.

प्रत्याशियों के समर्थन में वक्तृताएँ भी दी जाती हैं और इसमें प्राय: दो दिन का समय लग जाता है।

नामांकन की कार्यवाही के समाप्त होने के पश्चात् प्रत्येक प्रत्याशी के नाम पर मतदान कराया जाता है। सन् १९३६ तक डेमोक्रेट दल के सम्मेलन में "एकक नियम" (unit rule) का पालन किया जाता था जिसके अनुसार एक राज्य के समस्त प्रतिनिधि एक ही व्यक्ति को मत दे सकते थे। परन्तु अब दोनों दलों के सम्मेलनों में प्रतिनिधियों को स्वतन्त्रतापूर्वक मत देने का अधिकार है। वस्तुत: मतदान मतपत्रों (ballots) के द्वारा नहीं होता। प्रत्येक राज्य का बारी-बारी से नाम पुकारा जाता है और राज्य के प्रतिनिधिमंडल का सभापति अपने राज्य के प्रतिनिधियों का सर्वसम्मत मत घोषित करता है। यदि सर्वसम्मति से निर्णय नहीं हो पाता तभी व्यक्तिश: मतदान कराया जाता है।

सन् १९३६ के पूर्व डेमोक्रेटिक दल के सम्मेलन में राष्ट्रपति-पद के लिए प्रत्याशी का निर्णय दो तिहाई बहुमत से किया जाता था परन्तु अब दोनों दल साधारण बहुमत से ही निर्णय करते हैं। प्रत्याशियों की संख्या अधिक होने पर कभी-कभी अनेक बार मतदान कराना आवश्यक हो जाता है। प्रति बार मतदान में कुछ कम मत पाने वाले प्रत्याशी अपना नाम वापस ले लेते हैं और उनके समर्थक किसी दूसरे प्रत्याशी के समर्थक बन जाते हैं। इस प्रकार अन्त में एक प्रत्याशी बहुमत पाने में सफल हो जाता है। अब तक सर्वाधिक मतदान कराने की आवश्यकता सन् १९२४ के डेमोक्रेटिक सम्मेलन में पड़ी। नौ दिन के गतिरोध तथा १०३ बार मतदान के पश्चात् ही जॉन डेविस (John Davis) को राष्ट्रपति-पद के लिए डेमोक्रेटिक प्रत्याशी घोषित किया जा सका। इसके विपरीत सन् १९२८ में रिपब्लिकन तथा डेमोक्रेट दोनों दलों के राष्ट्रीय सम्मेलनों में एक बार मतदान के द्वारा ही निर्णय किया जा सका। नामांकन का निर्णय हो जाने के पश्चात् विजयी प्रत्याशी को औपचारिक रूप से सूचना दी जाती है और यदि सम्भव हो सकता है तो वह स्वयं सम्मेलन में आ उपस्थित होता है।

उपराष्ट्रपति-पद के लिए नामांकन—राष्ट्रपति-पद के लिए प्रत्याशी का निर्णय हो जाने के पश्चात् प्राय: उसी प्रक्रिया से उपराष्ट्रपति-पद के लिए

प्रत्याशी नामांकित किया जाता है। परन्तु उस समय तक सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधि इतने अधिक थक और ऊब जाते हैं कि वे उसमें विशेष रुचि नहीं लेते। सामान्यत: राष्ट्रपति-पद के लिए नामांकित व्यक्ति द्वारा समर्थित व्यक्ति को ही उपराष्ट्रपति-पद के लिए नामांकित कर दिया जाता है। परन्तु यह अपवादरहित नियम नहीं है। कभी-कभी राष्ट्रपति-पद के लिए चुने गए व्यक्ति के विरोधियों को संतुष्ट करने के लिए उनके द्वारा समर्थित व्यक्ति को ही उपराष्ट्रपति-पद के लिए नामांकित कर दिया जाता है।

२. राष्ट्रपति के निर्वाचकों का नामांकन—राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया का द्वितीय चरण निर्वाचकों का नामांकन होता है। प्रत्येक राज्य उतने निर्वाचक नियुक्त कर सकता है जितने कांग्रेस के दोनों सदनों में उसके प्रतिनिधि हों।[1] निर्वाचकों के नामांकन तथा निर्वाचन की विधि राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्धारित की जाती है। प्रत्येक राज्य में राजनीतिक दल निर्वाचकों के पद के लिए अपने प्रत्याशियों की सूची प्रस्तुत करते हैं। सामान्यतः दल के प्रमुख कार्यकर्ताओं को ही निर्वाचक-पद के लिए नामांकित किया जाता है, परन्तु ऐसा होना आवश्यक नहीं है। कभी-कभी ऐसे व्यक्ति भी नामांकित किये जाते हैं जिनका जनता ने नाम भी न सुना हो।

३. निर्वाचकों का चुनाव—निर्वाचकों का चुनाव राष्ट्रपति के निर्वाचन की सांविधानिक प्रक्रिया का प्रथम चरण है। आजकल लगभग सभी राज्यों में उनका निर्वाचन वयस्क-मताधिकार के आधार पर होता है। निर्वाचन के अवसर पर मतदाताओं को जो मतपत्र (ballot papers) दिये जाते हैं उनमें पृथक कालमों में विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रत्याशियों की सूची छपी होती है। कुछ राज्यों में निर्वाचक-पद के प्रत्याशियों के नाम के नीचे राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति-पद के उस प्रत्याशी का नाम भी छपा रहता है जिसका वे समर्थन करेंगे। वस्तुतः मतदाता निर्वाचक-पद के प्रत्याशियों को मत न देकर राष्ट्रपति-पद के प्रत्याशी को ही मत देते हैं क्योंकि वे इस तथ्य से भली भाँति अवगत होते हैं कि निर्वाचक चुने जाने पर अमुक व्यक्ति राष्ट्रपति-पद के लिए अमुक प्रत्याशी को

---

[1] अनुच्छेद २ धारा (१)

मत देगा। इसी कारण कुछ राज्य मतपत्रों पर निर्वाचकों का नाम देने के स्थान पर राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशियों का नाम ही देते हैं।[1] अधिकतर अधिकांश मतदाता यह जानते ही नहीं कि उन्होंने किन व्यक्तियों को निर्वाचक-पद के लिए मत दिया है।[2]

समस्त राज्यों में यह नियम है कि मतदान में बहुमत पाने वाले दल के ही समस्त प्रत्याशी निर्वाचक निर्वाचित घोषित कर दिये जाते हैं और अल्पमत पाने वाले दल या दलों का एक भी नहीं। इस कारण कुछ थोड़े से मतदाताओं के मत परिवर्तन का भी निर्वाचन पर गम्भीर प्रभाव पड़ सकता है। निर्वाचन की उपर्युक्त प्रणाली संविधान-निर्माताओं की इच्छा पर सीधा प्रहार है क्योंकि वे राष्ट्रपति के निर्वाचन में राजनीतिक दलों का प्रभाव नहीं चाहते थे।

४. निर्वाचकों द्वारा मतदान—यद्यपि निर्वाचकों का चुनाव सम्पन्न हो जाने पर यह ज्ञात हो जाता है कि अगले चार वर्षों में 'ह्वाइट हाउस' (White House) में बैठ कर न केवल संयुक्त राज्य वरन् समस्त विश्व से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर कौन व्यक्ति निर्णय करेगा परन्तु इसके बाद भी निर्वाचन की प्रक्रिया के दो औपचारिक चरण शेष रह जाते हैं। इनमें से प्रथम है निर्वाचकों द्वारा राष्ट्रपति-पद के लिए मतदान तथा द्वितीय है सिनेट के अध्यक्ष द्वारा मतों की गणना और फल की घोषणा। कांग्रेस द्वारा बनाई गई एक विधि के अनुसार दिसम्बर के द्वितीय बुधवार के पश्चात् प्रथम् सोमवार को निर्वाचक चुने गए व्यक्ति अपने-अपने राज्यों की राजधानी में एकत्र होते हैं तथा राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति-पद के लिए मत देते हैं। एक राज्य के समस्त निर्वाचकों के एक ही दल के होने के कारण इस मतदान का महत्व औपचारिक ही होता है, वे सभी एक ही प्रत्याशी के पक्ष में मत देते हैं और यह पहले से ही विदित रहता है कि वे किसे मत देंगे। यद्यपि ऐसा कोई वैधानिक निर्बंध नहीं है कि निर्वाचक जिस राजनीतिक दल के सदस्य हों उसी दल के प्रत्याशियों को राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति-पद के लिए मत दें,

---

[1] प्रो० ज़िंक के अनुसार ऐसे राज्यों की संख्या तेईस है। देखिए : Zink, H., *Government in the United States*, p. 255.

[2] *Ibid*, p.256.

परन्तु किसी अन्य दल के प्रत्याशी को मत देने के लिए असाधारण साहस की आवश्यकता होगी। ऐसा करने वाला निर्वाचक न केवल पुष्ट परम्परा को ही तोड़ता है, वरन् समाचार पत्रों में चर्चा का विषय भी बन जाता है।

५. मतगणना तथा फल की घोषणा—सिनेट के अध्यक्ष द्वारा कांग्रेस के दोनों सदनों के समक्ष मतों की गणना राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया का अंतिम चरण है। निर्वाचकों द्वारा मतदान के पश्चात् प्रत्येक राज्य की राजधानी में ही मतगणना होती है तथा मतदान के परिणाम का विवरण तैयार किया जाता है। इस विवरण को प्रमाणित कर राष्ट्रीय राजधानी वाशिंगटन में सिनेट के अध्यक्ष के पास भेज दिया जाता है। छः जनवरी को प्रतिनिधि सभा के भवन में कांग्रेस के दोनों सदनों के सदस्य एकत्र होते हैं तथा सिनेट का अध्यक्ष सभापति का आसन ग्रहण करता है। सिनेट के अध्यक्ष की अनुपस्थिति में एक अस्थायी सभापति सभापतित्व ग्रहण करता है। इसके पश्चात् राज्यों से आये हुए प्रमाणपत्र खोले जाते हैं और मतगणना की जाती है और उसका परिणाम घोषित कर दिया जाता है। परिणाम के विषय में किसी को कोई उत्सुकता नहीं होती क्योंकि वह निर्वाचकों के चुनाव के पश्चात् ही ज्ञात हो जाता है।

विकल्प प्रणाली द्वारा निर्वाचन—मतगणना के परिणामस्वरूप यदि यह पता चले कि राष्ट्रपति-पद के लिए दो प्रत्याशियों को समान मत मिले हैं अथवा उनमें से किसी को निर्वाचकों की पूर्ण संख्या का बहुमत प्राप्त नहीं हुआ है, तो प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) सर्वाधिक मत पाने वाले तीन प्रत्याशियों में से किसी एक को राष्ट्रपति निर्वाचित करती है। इस मतदान में एक राज्य के समस्त सदस्यों को मिल कर एक मत देने का अधिकार होता है। इसी प्रकार यदि उपराष्ट्रपति-पद के लिए किसी प्रत्याशी को निर्वाचकों की संख्या का पूर्ण बहुमत न प्राप्त हो, अथवा ग्रंथि (tie) पड़ जाय तो सिनेट सर्वाधिक मत पाने वाले दो प्रत्याशियों में से एक को उपराष्ट्रपति चुनती है।[1]

---

[1]अब तक विकल्प पद्धति (alternative method) द्वारा केवल दो बार (सन् १८०० और १८२४ में) राष्ट्रपति को निर्वाचित किया गया है तथा केवल एक बार (सन् १८३७ में) उपराष्ट्रपति सिनेट द्वारा चुना गया है।

राष्ट्रपति द्वारा पदभार ग्रहण—संविधान के प्रवर्तित किये जाने के समय से सन् १९३३ तक नव-निर्वाचित राष्ट्रपति द्वारा कार्य-भार ग्रहण करने की तिथि ४ मार्च थी। सन् १९३३ में बीसवाँ संशोधन अंगीकृत किया गया जिसके अनुसार राष्ट्रपति द्वारा पदभार ग्रहण करने की तिथि २० जनवरी कर दी गई। इस परिवर्तन की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि नवीन राष्ट्रपति के निर्वाचन के पश्चात् पिछले राष्ट्रपति का कार्य करते रहना उचित नहीं प्रतीत होता था। बीसवें संशोधन में यह व्यवस्था की गई थी कि नव-निर्वाचित कांग्रेस का सत्र ३ जनवरी को आरंभ हो। इसलिए भी यह उचित समझा गया कि नव-निर्वाचित राष्ट्रपति को नवीन कांग्रेस से सम्पर्क स्थापित करने का अवसर प्रदान किया जाय। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार अपने निर्वाचन के पश्चात् २० जनवरी को नव-निर्वाचित राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति परभार ग्रहण करते हैं।

बीसवें संशोधन में कुछ अन्य महत्वपूर्ण उपबंध भी हैं। उसके अनुसार यदि राष्ट्रपति-पद के लिए निर्वाचित होने वाले किसी व्यक्ति की कार्यभार ग्रहण करने के पूर्व मृत्यु हो जाती है तो नव-निर्वाचित उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति-पद पर आसीन होगा। इसी प्रकार यदि २० जनवरी तक राष्ट्रपति का निर्वाचन नहीं हो पाता,[1] तो नव-निर्वाचित उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के निर्वाचन तक कार्यकारी राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा। संशोधन में उस स्थिति के लिए जब राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति दोनों में से कोई निर्वाचित न किया जा सका हो व्यवस्था करने का अधिकार कांग्रेस को दिया गया है।[2] कांग्रेस को ऐसी स्थिति में भी विधि द्वारा व्यवस्था करने का अधिकार दिया गया है जब प्रतिनिधि सभा को राष्ट्रपति चुनना हो अथवा सिनेट को उपराष्ट्रपति चुनना हो और उन व्यक्तियों में से जिन में से राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति का निर्वाचन किया जाना हो किसी की मृत्यु हो जाय।[3]

---

[1] ऐसा उस स्थिति में होना संभव है जब राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रतिनिधि सभा को करना पड़े।

[2] बीसवाँ संशोधन, धारा (३)

[3] बीसवाँ संशोधन, धारा (४)

राष्ट्रपति की निर्वाचन-प्रणाली की आलोचना

संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की निर्वाचन-प्रणाली की अनेक लेखकों द्वारा कठोर आलोचना की गई है। आलोचकों का मत है कि जब व्यवहार में राष्ट्रपति का निर्वाचन लगभग प्रत्यक्ष रीति से ही होता है तब क्यों न संविधान में संशोधन कर निर्वाचकों द्वारा निर्वाचन की प्रणाली का अंत कर दिया जाय तथा जनता के द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन की प्रणाली को अंगीकृत कर लिया जाय। उनका यह सुझाव सारहीन नहीं प्रतीत होता। आज जबकि नागरिक निर्वाचक-पद के लिए प्रत्याशी को मत देते समय यह निश्चित रूप से जानते हैं कि अमुक प्रत्याशी राष्ट्रपति-पद के लिए अमुक व्यक्ति को मत देगा, निर्वाचकों के निर्वाचन की आवश्यकता रह ही नहीं जाती।

राष्ट्रपति की वर्तमान निर्वाचन प्रणाली की इस कारण भी आलोचना की जाती है कि निर्वाचकों के निर्वाचन के समय एक राज्य में जिस दल को प्रयुक्त मतों का बहुमत प्राप्त होता है उसी दल के समस्त प्रत्याशी निर्वाचक निर्वाचित घोषित कर दिये जाते हैं। इस प्रणाली के परिणामस्वरूप बहुमत पाने वाले दल से केवल कुछ कम मत पाने वाले दल का एक भी प्रत्याशी निर्वाचित नहीं होता। इस पद्धति के पक्ष में भी अधिक नहीं कहा जा सकता।

उपर्युक्त दोनों पद्धतियों में सुधार की आवश्यकता स्पष्ट ही है। इसके अतिरिक्त भी अनेक बातों में सुधार की आवश्यकता है। राजनीतिक दलों के सम्मेलनों में प्रत्याशियों के नामांकन के समय जैसा वातावरण रहता है, उनमें जैसी छल-कपटपूर्ण युक्तियाँ प्रयुक्त की जाती हैं, और नामांकन तथा निर्वाचन में धन का जिस प्रकार अनुचित रूप से प्रयोग होता है उसे किसी भी प्रकार उचित नहीं माना जा सकता। इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रो० लास्की[1] सरीखे अनेक पर्यवेक्षकों ने निर्वाचन-प्रणाली को अत्यंत दोषपूर्ण बताते हुए उसमें सुधार की आवश्यकता पर बल दिया है।

शपथ, कार्यकाल, वेतनादि तथा उन्मुक्तियाँ

शपथ—नव-निर्वाचित राष्ट्रपति को अपना कार्यभार ग्रहण करने के पूर्व

---

[1] Laski, H. J, *American Presidency.*

निम्नलिखित शपथ अथवा प्रतिज्ञान (Affirmation) ग्रहण करनी होती है:—

"मैं दृढ़ संकल्प होकर शपथ लेता हूँ (प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति के पद का कार्य श्रद्धापूर्वक करूँगा तथा अपनी पूर्ण सामर्थ्य से संयुक्त राज्य के संविधान का परिरक्षण, संरक्षण तथा प्रतिरक्षा करूँगा।"[1]

राष्ट्रपति को सामान्यतः सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के द्वारा शपथ ग्रहण कराई जाती है। परन्तु यदि राष्ट्रपति की पदावधि समाप्त होने के पूर्व किसी कारण से उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति बन जाये तो उसे तुरन्त शपथ ग्रहण कराई जाती है। ऐसे अवसर पर किसी भी न्यायाधीश के द्वारा शपथ ग्रहण कराई जा सकती है। जब तक राष्ट्रपति शपथ ग्रहण नहीं कर लेता तब तक वह कोई पद सम्बन्धी कार्य नहीं कर सकता।

कार्यकाल—जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं; सन् १७८७ के सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों में राष्ट्रपति के कार्यकाल के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं था। दो वर्ष से लेकर जीवनपर्यन्त कार्यकाल निश्चित किये जाने के सुझाव प्रस्तुत किये गये थे। एक बार सम्मेलन ने इस निर्बन्ध के साथ कि एक व्यक्ति एक बार ही राष्ट्रपति चुना जायगा राष्ट्रपति का कार्यकाल सात वर्ष निर्धारित भी कर दिया था, परन्तु उसे इस विनिश्चय में परिवर्तन करना पड़ा। अंत में यह निश्चय किया गया कि राष्ट्रपति का कार्यकाल चार वर्ष हो।[2] पुनर्निर्वाचन सम्बन्धी निर्बन्ध भी समाप्त कर दिया गया।

संविधान में पुनर्निर्वाचन पर कोई निर्बन्ध न होने पर भी संयुक्त राज्य में यह एक सुदृढ़ परम्परा बन गई थी कि कोई व्यक्ति दो बार से अधिक इस पद पर कार्य न करेगा। इस परम्परा का आरम्भ करने का श्रेय संयुक्त राज्य के प्रथम तथा द्वितीय राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन तथा टॉमस जैफ़रसन को है। इन दोनों से तृतीय बार राष्ट्रपति पद के लिए खड़े होने का अनुरोध किया गया था, परन्तु उन्होंने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। वाशिंगटन ने अपनी वृद्धा-

---

[1] अनुच्छेद १ धारा (७)

[2] देखिए, अनुच्छेद २ धारा (१)

वस्था को तृतीय बार न खड़े होने का कारण बताया था, पर जैफरसन ने स्पष्ट रूप से कहा कि तृतीय पदावधि सार्वजनिक हित के अनुकूल न होगी।[1] जैफरसन के पश्चात् लगभग सौ वर्ष तक किसी राष्ट्रपति ने तृतीय पदावधि के लिए खड़े होने की इच्छा न की। राष्ट्रपति ग्रान्ट और थियोडोर रूजवेल्ट ने इस परम्परा को तोड़ने का प्रयत्न किया, पर असफल रहे। इनमें प्रथम को दलीय सम्मेलन द्वारा नामांकित नहीं किया गया और द्वितीय को निर्वाचन में पराजित होना पड़ा। सन् १९४० में राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी० रूज़वेल्ट के तृतीय पदावधि के लिए चुने जाने का कारण यद्यपि.मुख्यतः विश्वयुद्धजनित परिस्थितियाँ थीं, परन्तु उससे इस परम्परा का अंत हो गया। सन् १९४४ में रूज़वेल्ट चतुर्थ बार राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। यह एक असाधारण महत्व की घटना थी। इसकी पुनरावृत्ति रोकने के लिए कांग्रेस के समक्ष संविधान में संशोधन करने का प्रस्ताव रखा गया। सन् १९४७ में कांग्रेस के द्वारा पारित हो जाने पर बाइसवाँ संशोधन राज्यों के पास भेजा गया और तीन-चौथाई राज्यों का अनुसमर्थन प्राप्त होने पर सन् १९५१ में प्रवर्तित हो गया। इस संशोधन के अनुसार कोई व्यक्ति दो बार से अधिक राष्ट्रपति-पद के लिए निर्वाचित नहीं किया जा सकता तथा कोई ऐसा व्यक्ति जिसने किसी ऐसी पदावधि (term) में जिसके लिए कोई अन्य व्यक्ति राष्ट्रपति चुना गया हो, दो वर्ष से अधिक तक राष्ट्रपति पद पर कार्य किया है अथवा जो दो वर्ष से अधिक तक कार्यकारी राष्ट्रपति रहा है, एक बार से अधिक राष्ट्रपति निर्वाचित नहीं किया जा सकेगा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रपति पद के लिए पुनर्निर्वाचन पर प्रतिबंध लगवाने के प्रयत्न सन् १९१२ से किये जा रहे थे, पर कांग्रेस के दोनों सदनों ने इस सम्बन्ध में सन् १९४७ में ही प्रस्ताव पारित किया।[2]

वेतन, भत्ते आदि—संयुक्त राज्य के संविधान में राष्ट्रपति को दिये जाने वाले वेतनादि का उल्लेख नहीं है। उसमें केवल यही उपबन्ध है कि राष्ट्रपति

---

[1] Munro, W. B., *op. cit.*, p. 157.

[2] सन् १९१२ में सिनेट ने राष्ट्रपति का कार्यकाल छः वर्ष करने तथा राष्ट्रपति-पद के लिए पुनर्निर्वाचन पर प्रतिबंध लगाने का प्रस्ताव पारित कर दिया था, पर प्रतिनिधि सभा ने उसे पारित नहीं किया।

को निर्धारित समय पर अपनी सेवाओं के लिए प्रतिकर (compensation) मिलेगा।[1] आजकल राष्ट्रपति को एक लाख डालर वार्षिक वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने उसे नब्बे हजार डालर वार्षिक कर-मुक्त भत्ता दिये जाने की व्यवस्था की है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को अन्य बहुत से भत्ते आदि मिलते हैं। राष्ट्रपति को एक सुसज्जित वायुयान, जलयान तथा निवास-स्थान (White House) भी मिलता है। यद्यपि राष्ट्रपति का वेतन तथा उसे उपलब्ध सुविधाएँ स्पष्टत: ही पर्याप्त हैं, परन्तु अनुमान किया गया है कि ब्रिटेन के के नरेश तथा कुछ यूरोपीय देशों के प्रधान कार्यपालिका अधिकारी को संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति से भी अधिक आय तथा सुख-सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। किसी राष्ट्रपति की पदावधि में उसके वेतन में वृद्धि या कमी नहीं की जा सकती। राष्ट्रपति अपनी पदावधि में संयुक्त राज्य अथवा उसके किसी राज्य से अन्य किसी प्रकार की उपलब्धियाँ (emoluments) प्राप्त नहीं कर सकता।

राष्ट्रपति की उन्मुक्तियाँ—प्रत्येक देश में कार्यपालिका के प्रधान को कुछ उन्मुक्तियाँ (immunities) प्राप्त होती हैं। संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की उन्मुक्तियों के सम्बन्ध में यद्यपि संविधान मौन है परन्तु न्यायालयों ने उनका अस्तित्व स्वीकार किया है। राष्ट्रपति को किसी न्यायालय में साक्षी या प्रतिवादी के रूप में नहीं बुलाया जा सकता। केवल सिनेट में महाभियोग (Impeachment) की सुनवाई के समय ही राष्ट्रपति को बुलाया जा सकता है। एक बार संयुक्त राज्य के एक दौरा न्यायालय (Circuit Court) ने राष्ट्रपति जैफरसन को न्यायालय में उपस्थित होने को कहा था, परन्तु उन्होंने ऐसा करने से इस कारण इन्कार कर दिया कि न्यायालय को उन्हें बुलाने का अधिकार ही नहीं है। उन्होंने प्रश्न किया कि यदि कार्यपालिका का प्रधान न्यायपालिका की आज्ञाओं के अधीन हो और उसकी आज्ञा के उल्लंघन के लिए दण्ड का भागी हो तो क्या कार्यपालिक न्यायपालिका के प्रभाव से स्वतन्त्र होगी?[2] बाद में सर्वोच्च न्यायालय

---

[1] अनुच्छेद २ धारा (१)

[2] "Would the executive be independent of the judiciary, if he were subject to the commands of the latter, and to imprisonment for disobedience ?"—*Jefferson's Writings*, edited by P. L. Ford, pp. 59-60.

ने अपने एक निर्णय में यह स्वीकार किया कि राष्ट्रपति अपनी सांविधानिक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अन्य सभी विभागों के प्रभाव से मुक्त है।[1] एक अन्य मामले में यह निश्चित हुआ कि राष्ट्रपति के विरुद्ध परमादेश (mandamus) अथवा आदेश (injunction) के लेख भी जारी नहीं किये जा सकते।[2] राष्ट्रपति यदि स्वयं चाहे तो वह साक्षी (witness) के रूप में न्यायालय में उपस्थित हो सकता है।

राष्ट्रपति पद के लिए आवश्यक अर्हताएँ

संविधान में उल्लिखित अर्हताएँ—संविधान में राष्ट्रपति-पद के लिए जिन अर्हताओं (qualifications) का होना आवश्यक बताया गया है उनकी संख्या अधिक नहीं है।[3] सर्व प्रथम, राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिये प्रत्याशी को संयुक्त राज्य का जन्मजात नागरिक होना आवश्यक है। इस निर्बन्ध से उन व्यक्तियों को मुक्त रखा गया था जो संविधान के अङ्गीकृत किये जाने के समय संयुक्त राज्य के नागरिक थे। इस उपबंध के संविधान में सम्मिलित किये जाने का कारण यह था कि सांविधानिक सम्मेलन के अनेक सदस्यों का जन्म संयुक्त राज्य के राज्य-क्षेत्र के बाहर हुआ था। राष्ट्रपति-पद के लिए निर्वाचित होने वाले व्यक्ति की आयु पैंतीस वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये। यह भी आवश्यक है कि उसने कम से कम चौदह वर्ष तक संयुक्त राज्य में निवास किया हो, यद्यपि चौदह वर्ष तक अनवरत (consecutive) निवास की आवश्यकता नहीं है।

अन्य अर्हताएँ—यद्यपि संविधान में राष्ट्रपति पद के लिये उपर्युक्त अर्हताओं के अतिरिक्त अन्य किसी अर्हता का उल्लेख नहीं है, परन्तु यह समझना असङ्गत होगा कि राष्ट्रपति-पद के लिये अन्य किसी अर्हता की आवश्यकता नहीं है। संविधान में उल्लिखित न होने पर भी कुछ अर्हताएँ सांविधानिक अर्हताओं के समान ही आवश्यक सिद्ध हुई हैं, जिनका उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक है।

---

[1] Kendall *v.* U.S. (1838)

[2] Missisipe *v.* Johnson. (1867)

[3] अनुच्छेद २, धारा (१)

अब तक का अनुभव यह सिद्ध करता है कि संविधान में विभिन्न जातियों तथा धर्मों के लोगों की समानता की घोषणा किये जाने के बावजूद भी किसी नीग्रो नागरिक अथवा किसी कैथोलिक या यहूदी का राष्ट्रपति निर्वाचित होना लगभग असम्भव ही है। वस्तुतः कोई प्रमुख राजनीतिक दल निकट भविष्य में किसी श्वेतांग तथा प्रोटेस्टेंट मतावलम्बी के अतिरिक्त अन्य किसी नागरिक को अपना प्रत्याशी नामांकित करेगा, यह संदेहजनक है। इसी प्रकार किसी स्त्री के राष्ट्रपति-पद के लिये निर्वाचित होने पर कोई प्रतिबन्ध न होते हुए भी ऐसा होना असम्भव ही है। प्रो० ब्रॉगन का मत है कि यदि कोई दल किसी स्त्री को राष्ट्रपति-पद के लिए नामांकित करेगा तो वह जितने पुरुषों का मत अधिक पायेगी उससे अधिक स्त्रियों के मतों से हाथ धो बैठेगी।[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रपति-पद पर बड़े तथा घनी जनसंख्या वाले राज्यों का एकाधिकार-सा है। ऐसे अनेक राज्यों के नाम गिनाये जा सकते हैं जहाँ से आज तक कोई राष्ट्रपति नहीं चुना गया। इसका कारण स्पष्ट ही है; बड़े राज्य के निवासी को प्रत्याशी घोषित करने वाला राजनीतिक दल एक छोटे राज्य के निवासी को प्रत्याशी घोषित करने वाले दल से अधिक मत पाने की आशा कर सकता है। इस सम्बन्ध में एक रोचक तथ्य यह है कि राजनीतिक दलों के नेता उस राज्य से अपना प्रत्याशी नामांकित नहीं करते जिसके मतदाताओं पर उनका अत्यधिक प्रभाव होता है। राष्ट्रपति-पद के लिए ऐसे राज्य के प्रत्याशी को नामांकित किया जाता है जहाँ दल का प्रभाव अपेक्षाकृत कम होता है और जहाँ के प्रत्याशी के व्यक्तिगत प्रभाव के कारण अधिक मत पाने की आशा रहती है।

यद्यपि संविधान में राष्ट्रपति-पद पर निर्वाचित होने के लिए किसी प्रकार के अनुभव को आवश्यक नहीं ठहराया गया है, परन्तु व्यवहार में ऐसे ही व्यक्ति राष्ट्रपति चुने जाते हैं जिन्हें राजनीतिक क्षेत्र में कार्य का पर्याप्त अनुभव हो। स्वभावतया राजनीतिक दल प्रत्याशी नामांकित करते समय यह ध्यान रखते हैं कि प्रत्याशी लोकप्रिय हो और इस बात का निर्णय कि कौन व्यक्ति कितना लोक-

---

[1] Brogan, D. W., *An Introduction to American Politics*, p. 199.

प्रिय है पिछली सफलताओं के आधार पर ही किया जा सकता है। यही कारण है कि बड़े राज्यों के गवर्नरों की राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशी नामांकित किये जाने की अधिक सम्भावना रहती है। सिनेट के सदस्यों की लोकप्रियता भी उन्हें निर्वाचन में प्राप्त मतों से विदित हो जाती है और इस कारण गवर्नरों के पश्चात् सिनेट के सदस्यों को ही राष्ट्रपति पद के लिए प्रश्रय दिया जाता है। कभी-कभी मंत्रिमण्डल के सदस्यों में से भी किसी को राष्ट्रपति-पद के लिए प्रत्याशी चुन लिया जाता है। राष्ट्रपति टैफ्ट और हूवर राष्ट्र के सर्वोच्च पद के लिए निर्वाचित होने के पूर्व मन्त्रिमण्डल के सदस्य रह चुके थे। परन्तु कुछ लेखकों का मत है कि दीर्घ काल का राजनीतिक अनुभव राष्ट्रपति बनने में सहायक नहीं होता। यह स्वाभाविक ही है कि दीर्घ काल तक राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति से बहुत-से व्यक्ति असंतुष्ट हों और इस कारण उसका प्रबल विरोध करें। ऐसे व्यक्ति की दुर्बलताएँ भी स्पष्ट हो जाती हैं। इसी कारण दीर्घकालीन राजनीतिक अनुभव राष्ट्रपति बनने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के लिये अनिष्टकर सिद्ध होता है। प्रो० मनरो का मत है कि राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी को अनुभव होना चाहिए, पर बहुत अधिक नहीं।[१]

यद्यपि संविधान में राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए न्यूनतम आयु पैंतीस वर्ष निश्चित की गई है पर व्यवहार में प्राय: पचास वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति ही राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशी नामांकित किये जाते हैं।

जनता द्वारा राष्ट्रपति में अपेक्षित वैयक्तिक गुण—लार्ड ब्राइस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'माडर्न डेमाक्रेसीज' में उन वैयक्तिक गुणों का भी उल्लेख किया है जिनकी जनता राष्ट्रपति से अपेक्षा करती है।[२] उनके मतानुसार प्रबल व्यक्तित्व जनता को सर्वाधिक आकृष्ट करता है। ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति से ही वह सफल नेतृत्व की आशा कर सकती है। उत्साह, साहस, चतुराई तथा बौद्धिक शक्ति वाला व्यक्ति सहज ही जनता को प्रिय लगता है। यदि प्रत्याशी उत्तम वक्ता हो तो यह उसके लिए लाभकर सिद्ध होता है। इन गुणों के

[१] "Experience..., but not too much of it, seems to be what is required."—Munro, *op. cit.*, p. 171.

[२] Bryce, James, *Modern Democracies*, Vol. II, pp. 71-73.

अतिरिक्त जनता यह भी चाहती है कि राष्ट्रपति-पद पर कार्य करने वाला व्यक्ति सच्चरित्र तथा ईमानदार हो। कम से कम उसके विरुद्ध भ्रष्टाचार का कोई आरोप तो नहीं ही होना चाहिए। इन सब गुणों के अतिरिक्त प्रत्याशी को सदैव प्रसन्नवदन दिखना चाहिए। इससे जनता बहुत अधिक प्रभावित होती है। राजनीतिक दल अपने प्रत्याशी का चुनाव करते समय जनता की रुचि का विशेष ध्यान रखते हैं, क्योंकि यदि उनका प्रत्याशी जनता को प्रभावित नहीं कर सकता तो उसके सफल होने की आशा कैसे की जा सकती है।

राष्ट्रपति को पद से हटाने की पद्धति—संयुक्त राज्य के किसी राष्ट्रपति को उसका कार्यकाल समाप्त होने के पूर्व केवल महाभियोग (Impeachment) की कार्यवाही के द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है। महाभियोग का कारण देशद्रोह, भ्रष्टाचार अथवा कोई अन्य गम्भीर अपराध, तथा असदाचरण (misdemeanour) ही हो सकते हैं। राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने का अनन्य अधिकार प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) को प्राप्त है। यदि प्रतिनिधि सभा बहुमत से राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाती है, तो सिनेट में उसकी सुनवाई होती है। इस अवसर पर सिनेट की अध्यक्षता सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश करता है। राष्ट्रपति को दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके ही दोषी ठहराया जा सकता है। महाभियोग के द्वारा दंड के रूप में राष्ट्रपति को केवल पद से हटाया जा सकता है तथा अनर्हीकृत (disqualify) किया जा सकता है। परन्तु बाद में उस पर सामान्य प्रक्रिया के अन्तर्गत मुकदमा चलाया जा सकता है।

अब तक किसी भी राष्ट्रपति को महाभियोग की प्रक्रिया के द्वारा पदच्युत नहीं किया गया है। राष्ट्रपति जॉनसन के विरुद्ध महाभियोग लगाया गया था परन्तु उन्हें दोषी न ठहराया जा सका। अन्य किसी राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग नहीं लगाया गया है।

अध्याय ८

राष्ट्रपति की शक्तियाँ तथा कृत्य

संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति को आज इतनी विस्तृत तथा व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं कि उसे विश्व के सांविधानिक राज्यों के पदाधिकारियों में सर्वाधिक शक्ति-संपन्न कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा।[१] लार्ड ब्राइस ने तो उसके द्वारा प्रयुक्त शक्तियों तथा उसे प्राप्त सम्मान को ध्यान में रखते हुए उसे ऐसा "निर्वाचित नरेश" बताया है जो शासन भी करता है और राज भी।[२] जब हम इस तथ्य पर ध्यान देते हैं कि संविधान-निर्माता राष्ट्रपति को अत्यधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में न थे और इसी कारण उन्होंने उसे इनी-गिनी शक्तियाँ ही सौंपी थीं, तो हमें राष्ट्रपति की वर्तमान स्थिति पर निश्चय ही आश्चर्य होता है। आज उसके द्वारा अनेक ऐसी शक्तियाँ प्रयुक्त की जाती हैं जिनका प्रयोग करने की शक्ति उसे संविधान में किसी स्थान पर प्रदान नहीं की गई है। इसी कारण हम पहले राष्ट्रपति की शक्तियों के स्रोतों पर तथा तत्पश्चात् उसकी शक्तियों और कृत्यों पर विचार करेंगे।

राष्ट्रपति की शक्तियों के स्रोत—राष्ट्रपति की शक्तियों के चार मुख्य स्रोत हैं। ये हैं:—(१) संविधान, (२) संघीय विधियाँ (federal laws), (३) न्यायिक विनिश्चय, तथा (४) प्रथाएँ। इनमें से केवल प्रथम के बारे में ही यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उससे राष्ट्रपति को कौन-कौन

---

[१] "...it is safe to say that in no constitutional state in the world today does there exist an officer with such vast powers as those of the President of the American Union."—Strong, C. F., *op. cit.*, p. 245.

[२] "...the elected king who governs as well as reigns."—Bryce, *Modern Democracies*, Vol. II, p. 82.

शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं। शेष स्रोतों से प्राप्त समस्त शक्तियों का परिगणन करना संभव नहीं है, इस कारण हम केवल प्रत्येक स्रोत से प्राप्त मुख्य शक्तियों के उदाहरण मात्र का उल्लेख करेंगे।

१. संविधान—संयुक्त राज्य के संविधान के द्वितीय अनुच्छेद की दूसरी धारा में राष्ट्रपति की शक्तियों का उल्लेख है। संक्षेप में ये शक्तियाँ निम्नलिखित हैं:—संघीय पदाधिकारियों की नियुक्ति करना, सिनेट की मंत्रणा तथा सहमति से संधियाँ करना, अपराधियों को क्षमा करना, कांग्रेस के विशेष सत्र बुलाना, कांग्रेस द्वारा पारित विधियों पर अभिषेधाधिकार का प्रयोग करना, विभिन्न कार्यपालिका विभागों के प्रमुखों से आख्याएँ (reports) माँगना, स्थल तथा जल-सेना के प्रधान-सेनापति के रूप में कार्य करना। विधियों के निष्ठापूर्वक कार्यान्वय का ध्यान रखना तथा संविधान का संरक्षण करना। राष्ट्रपति की इन शक्तियों को संविधान में संशोधन किये बिना अपहृत नहीं किया जा सकता। संविधान में राष्ट्रपति की जिन शक्तियों का उल्लेख है, वे सामान्य हैं। दूसरे शब्दों में शक्तियों के विवरण का उल्लेख नहीं है।

२. संघीय विधियाँ—राष्ट्रपति की शक्तियों का दूसरा मुख्य स्रोत समय-समय पर कांग्रेस द्वारा पारित ऐसे अधिनियम हैं जिनमें राष्ट्रपति को स्वविवेक से कार्य करने का अधिकार दिया जाता है। यद्यपि कांग्रेस अपनी विधि-निर्माण शक्ति को प्रत्यायोजित (delegate) नहीं कर सकती, पर वह सामान्य नियम बना कर विवरण संबंधी निश्चय राष्ट्रपति पर छोड़ सकती है। सन् १९३३-३५ के काल में आर्थिक संकट से उत्पन्न परिस्थितियों का सामना करने के लिए उसने अनेक बार ऐसा किया था। सन् १९४१ के 'लीज ऐण्ड लेण्ड बिल' (Lease and Lend Bill) के द्वारा कांग्रेस ने राष्ट्रपति को मित्रराष्ट्रों की शस्त्रास्त्र से सहायता करने का अधिकार प्रदान किया था। कभी-कभी तो सर्वोच्च न्यायालय को अपने निर्णय के द्वारा कांग्रेस द्वारा राष्ट्रपति की शक्तियों में वृद्धि को अवैधानिक भी घोषित करना पड़ा है।[१]

[१] उदाहरणार्थ, सर्वोच्च न्यायालय ने सन् १९३६ में राष्ट्रीय पुनरुद्धार अधिनियम (National Recovery Act) को अवैध घोषित करने के जो दो कारण दिये थे उनमें एक यह था कि इसके द्वारा कांग्रेस ने अपनी शक्तियों को प्रत्यायोजित किया था जब कि वह ऐसा नहीं कर सकती।

३. न्यायिक विनिश्चय—न्यायालयों के विनिश्चयों (Court decisions) के द्वारा भी राष्ट्रपति की शक्तियों में वृद्धि हुई है। संविधान के उपबंधों की व्याख्या न्यायालय करते हैं और अनेक अवसरों पर उन्होंने उनकी ऐसी व्याख्या की है कि उससे राष्ट्रपति की शक्तियों में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रश्नों के सम्बन्ध में संविधान मौन है और ऐसे प्रश्नों पर न्यायालयों का निर्णय ही अंतिम होता है। उदाहरणार्थ, संविधान में राष्ट्रपति को पदाधिकारियों की नियुक्ति करने का अधिकार तो दिया गया है पर यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि वह उन्हें पदच्युत कर सकेगा या नहीं। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट नहीं किया गया है कि क्या उनकी नियुक्ति की भाँति उनकी पदच्युति के लिए भी सिनेट की सहमति आवश्यक होगी। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक विनिश्चय में यह घोषित किया है कि राष्ट्रपति, बिना सिनेट की मंत्रणा या सहमति के, पदाधिकारियों को पदच्युत कर सकता है।[1] राष्ट्रपति ट्रूमैन ने इसी शक्ति के अधीन जनरल मैकार्थर को सुदूर-पूर्व में संयुक्त राष्ट्र की सेनाओं के प्रधान सेनापति-पद से पदच्युत किया था।

४. प्रथाएँ—राष्ट्रपति के द्वारा प्रयुक्त शक्तियों का स्रोत प्रथाएँ भी हैं। युद्ध, आंतरिक अशांति तथा आर्थिक अव्यवस्था सरीखे राष्ट्रीय संकट के अवसरों पर राष्ट्रपति को अनेक ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जिन्हें करने का स्पष्ट अधिकार उसे प्राप्त नहीं होता। कालांतर में बहुधा यह मान लिया जाता है कि राष्ट्रपति को उन कार्यों को करने की शक्ति प्राप्त है। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य के इतिहास के प्रारंभिक काल में राष्ट्रपति वाशिंगटन ने 'ह्विस्की विद्रोह' (Whisky Rebellion) के समय आंतरिक अशांति को दबाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया, यद्यपि संविधान में उसके इस उत्तरदायित्व का उल्लेख नहीं था। तब से यह राष्ट्रपति के उत्तरदायित्वों में सम्मिलित माना जाता है। राष्ट्रपति ट्रूमैन ने कांग्रेस से परामर्श लिये बिना ही कोरिया में संयुक्त राज्य की सेनाओं को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता के उत्तरदायित्वों की पूर्ति के नाम पर भेज दिया, यद्यपि कांग्रेस ही युद्ध की घोषणा कर सकती है। राष्ट्रपति ट्रूमैन के इस कार्य को अनुचित नहीं ठहराया गया और इस कारण राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त हो गया।

---

[1] Myers *v.* United States.

राष्ट्रपति की शक्तियों का वर्गीकरण—राष्ट्रपति की शक्तियों का विभिन्न लेखकों ने विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण किया है। जहाँ मनरो ने उन्हें सात वर्गों में विभक्त किया है वहाँ ऑग और रे तथा हैराल्ड जिंक ने उन्हें केवल तीन स्थूल वर्गों में विभक्त कर प्रत्येक वर्ग को अनेक उपवर्गों में विभक्त किया है—यद्यपि इन दोनों के वर्गीकरण में भी अंतर है। अध्ययन की सुविधा के लिए हम भी राष्ट्रपति की शक्तियों को पहले कुछ स्थूल वर्गों में विभक्त करेंगे और फिर प्रत्येक वर्ग में आने वाली मुख्य शक्तियों का पृथक्-पृथक् उल्लेख करेंगे। शक्तियों की प्रकृति के आधार पर उनके निम्न तीन वर्ग बनाये जा सकते हैं :

१. कार्यपालिका शक्तियाँ

२. विधायिनी शक्तियाँ

२. दल तथा राष्ट्र के नेता के रूप में शक्तियाँ

शक्तियों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में उपर्युक्त निश्चय कर हम प्रत्येक वर्ग की शक्तियों पर कुछ अधिक विस्तार से विचार करेंगे।

राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्तियाँ

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, संविधान के अनुसार संयुक्त राज्य की समस्त कार्यपालिका-शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। "कार्यपालिका-शक्ति" का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक तथा अस्पष्ट है। इस शक्ति में हम निम्नलिखित शक्तियों तथा कृत्यों की गणना कर सकते हैं :

(१) विधियों को प्रवर्तित करने तथा व्यवस्था-स्थापन की शक्ति, (२) सङ्घीय शासन के प्रशासनीय अङ्गों के अधीक्षण की शक्ति, (३) सङ्घीय पदाधिकारियों को नियुक्त तथा पदच्युत करने की शक्ति, (४) क्षमादान तथा प्रविलम्बन (reprieve) की शक्ति, (५) वैदेशिक सम्बन्धों से सम्बन्धित शक्तियाँ, तथा (६) स्थल तथा जल-सेना का संचालन करने की शक्ति।

१. विधियों का प्रवर्तन तथा व्यवस्था-स्थापन—संविधान में राष्ट्रपति का यह एक कर्तव्य बताया गया है कि वह "यह ध्यान रखे कि विधियों को श्रद्धा-पूर्वक कार्यान्वित किया जाता है।"[१] राष्ट्रपति-पद की शपथ में भी राष्ट्रपति को

[१] अनुच्छेद २ धारा (३)

"संविधान के परिरक्षण, संरक्षण तथा प्रतिरक्षा" का भार सौंपा गया है। इन सांविधानिक उपबन्धों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विधियों को प्रवर्तित कराने का मुख्य उत्तरदायित्व राष्ट्रपति पर ही है। विधियों को प्रवर्तित करने के अधिकार में ही संधियों को प्रवर्तित करने की शक्ति भी सम्मिलित मानी जाती है, क्योंकि संधियाँ भी कांग्रेस द्वारा निर्मित विधियों के समान ही प्रभाव रखती हैं। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि राष्ट्रपति को विधियों के औचित्य या अनौचित्य अथवा उनकी सांविधानिकता के सम्बन्ध में कोई विनिश्चय करने का अधिकार नहीं है; यह कार्य सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आता है। कांग्रेस द्वारा बनाई हुई ऐसी विधियों को भी जो संविधान का अतिक्रमण करती हों पर जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध घोषित न किया हो, प्रवर्तित करने के लिए राष्ट्रपति बाध्य है। यद्यपि राष्ट्रपति के इस कृत्य के महत्व के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते, पर राष्ट्रपति को विधियों के प्रवर्तन के सम्बन्ध में अधिक कार्य नहीं करना होता। यह कार्य विभिन्न सङ्घीय अधिकारियों के द्वारा यथाक्रम होता रहता है।

विधियों के प्रवर्तन से ही संबंधित राष्ट्रपति का राष्ट्र में व्यवस्था बनाये रखने का कृत्य है। स्पष्ट ही है कि अव्यवस्था के काल में विधियों को प्रवर्तित करना संभव नहीं है। संविधान में इस संबंध में कोई उपबंध न होने पर भी अब यह निश्चित हो चुका है कि किसी राज्य में व्यवस्था भंग होने पर राष्ट्रपति राज्य-शासन के अनुरोध के अभाव में भी आवश्यक पग उठा सकता है। यहाँ तक कि वह राज्य-शासन के विरोध की भी अवहेलना कर सकता है। गृहयुद्ध के काल में राष्ट्रपति लिंकन द्वारा उठाये गए पग सर्वविदित हैं। अन्य अवसरों पर भी राष्ट्रपतियों ने शांति व व्यवस्था बनाये रखने के लिए आवश्यक कार्यवाही की है।[1] वस्तुतः विधियों को प्रवर्तित करने की शक्ति का महत्व आंतरिक अशांति अथवा युद्ध आदि के काल में ही विदित होता है।

२. प्रशासनिक अंगों का अधीक्षण——संयुक्त राज्य में सङ्घीय शासन

---

[1] राष्ट्रपति क्लीवलैंड (Cleveland) ने अपनी पदावधि के काल में इलिनाइस (Illinois) राज्य में डाक की रक्षा के लिए सैनिक भेजे थे और उन्होंने उस राज्य के गवर्नर के विरोध की कोई चिन्ता नहीं की थी।

के अधीन आज बीस लाख से अधिक पदाधिकारी तथा कर्मचारी कार्य करते हैं ।[1] संविधान-निर्माताओं ने कभी यह कल्पना भी न की होगी कि संयुक्त राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था कभी इतना विशाल रूप ले लेगी। यही कारण है कि उन्होंने संविधान में प्रशासनिक ढाँचे के स्वरूप अथवा उसके अधीक्षण के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं की। परन्तु संविधान के विकास के साथ विभिन्न प्रशासनिक अंगों के अधीक्षण की शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त हो गई है। वस्तुत: ऐसा होना आवश्यक भी है, अन्यथा राष्ट्रपति विधियों के प्रवर्तन संबंधी अपने कृत्यों को पूर्ण न कर सकेगा।

प्रशासनिक अंगों का राष्ट्रपति द्वारा अधीक्षित होना इसलिए भी आवश्यक है कि वर्तमान काल की जटिल सामाजिक और आर्थिक दशाओं में कांग्रेस प्रत्येक विषय पर पूर्ण विवरणयुक्त विधियाँ नहीं बना सकती। उसे अनेक विषयों में कार्यपालिका को स्वविवेक से कार्य करने का अधिकार प्रदान करना होता है। इसी अधिकार के अन्तर्गत राष्ट्रपति विभिन्न आदेश और अनुदेश जारी करता है जिनसे शासन-कार्य में एकसूत्रता स्थापित की जाती है। जैसे-जैसे सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था अधिक जटिल होती जा रही है वैसे ही वैसे राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति (Ordinance-making power) विस्तृत होती जा रही है। राष्ट्रपति हूवर के काल में आर्थिक संकट के कारण उत्पन्न परिस्थिति का सामना करने के लिए इस शक्ति का व्यापक प्रयोग हुआ, परन्तु राष्ट्रपति रूजवैल्ट के कार्यकाल में तो इस शक्ति का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि अनेक उदार विचारों के राजनीतिज्ञ भी भयाक्रांत हो उठे। अंतत: सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि कांग्रेस द्वारा पारित राष्ट्रीय औद्योगिक पुनरुद्धार अधिनियम (National Industrial Recovery Act) इस कारण अवैध है कि इसके द्वारा कांग्रेस ने अपनी विधि-निर्माण शक्ति को राष्ट्रपति को प्रत्यायोजित कर दिया

---

[1] सन् १९४५ में महायुद्धजनित परिस्थितियों के कारण उनकी संख्या तीस लाख तक पहुँच गई थी, परन्तु युद्ध समाप्त होने के पश्चात् उनकी संख्या में कमी कर दी गई।

है।[1] सन् १९४० के पश्चात् राष्ट्रपति रूजवैल्ट द्वारा अध्यादेश जारी करने की शक्ति का पुनः अत्यन्त व्यापक प्रयोग किया गया। महायुद्ध के कारण उत्पन्न राष्ट्रीय संकट को ध्यान में रखते हुए इस बार सर्वोच्च न्यायालय ने भी कुछ अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाया। यद्यपि "कार्यपालिका आदेशों" के प्रति सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण बदलता रहा है, पर यह उसने सदैव स्वीकार किया है कि युक्तियुक्त सीमाओं के अन्तर्गत इनका जारी किया जाना अवैध नहीं है।

यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि अध्यादेश (Ordinance) अथवा अनुदेश (Instructions) आदि जारी करने में राष्ट्रपति का बहुत अधिक सक्रिय भाग नहीं रहता। अधिकतर वे विभिन्न विभागों के प्रधानों के द्वारा तैयार किये जाते हैं और अपने मूल रूप में अथवा कुछ संशोधन के साथ राष्ट्रपति के द्वारा प्रख्यापित (promulgate) कर दिये जाते हैं। कभी-कभी राष्ट्रपति को कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न होने पर प्रशासनिक अंगों के अधीक्षण सम्बन्धी कार्य में विशेष अभिरुचि लेनी पड़ती है पर ऐसा अपवादस्वरूप ही होता है। व्यवहार में अधीक्षण सम्बन्धी शक्ति का प्रयोग विभागाध्यक्षों के द्वारा ही होता है।

पदाधिकारियों की नियुक्ति तथा पदच्युति—संविधान में राष्ट्रपति को सिनेट की "मंत्रणा और सहमति" से राजदूतों, वाणिज्यदूतों तथा अन्य सार्वजनिक मंत्रियों, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों एवं अन्य ऐसे समस्त संघीय पदाधिकारियों की, जिनकी नियुक्ति के सम्बन्ध में संविधान में अन्य कोई व्यवस्था नहीं है तथा जिनके पदों की सृष्टि विधि के द्वारा हो, नियुक्ति करने

---

[1]प्रो० ज़िंक के अनुसार जब इस अधिनियम की वैधानिकता पर विचार करते समय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने इस अधिनियम के अधीन जारी किये गये 'कार्यपालिका आदेशों' की प्रतियाँ माँगीं तो शासन-विभागों को यह स्वीकार करना पड़ा कि वे उन सबको प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं। यह राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी करने की शक्ति के अत्यधिक प्रयोग के कारण उत्पन्न हुई अव्यवस्थित दशा का उदाहरण है। देखिए Harold Zink, *op. cit.*, p. 280.

का अधिकार दिया गया है। साथ ही कांग्रेस को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह ऐसे निम्न श्रेणी के पदाधिकारियों की, जिनके बारे में वह उचित समझे, नियुक्ति करने की शक्ति अकेले राष्ट्रपति में, न्यायालयों में अथवा विभागाध्यक्षों में विधि द्वारा निहित कर सकती है।[1] इस सम्बन्ध के अनुसार राष्ट्रपति की पदाधिकारियों को नियुक्त करने की शक्ति पर दो निर्बंध हैं—(१) अधिक महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति के लिए सिनेट की सहमति लेना अनिवार्य होता है तथा (२) कांग्रेस निम्न श्रेणी के पदाधिकारियों को नियुक्त करने की शक्ति राष्ट्रपति के अतिरिक्त अन्य प्राधिकारियों को भी सौंप सकती है।

संविधान में निम्न और उच्च पदों में भेद करने की कोई कसौटी न दी गई होने के कारण कांग्रेस को ही पदाधिकारियों का वर्गीकरण करने की शक्ति प्राप्त है। व्यवहार में सङ्घीय पदाधिकारियों में से अधिकांश निम्न श्रेणी में ही आते हैं, जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा नहीं होती। अनुमान किया गया है कि लगभग बीस लाख पदों में से ऐसे पदों की संख्या केवल सोलह हजार है, जिन पर राष्ट्रपति द्वारा सिनेट की सहमति से नियुक्ति की जाती है। शेष पदों में से प्राय: अस्सी प्रतिशत पर नियुक्तियाँ गुणों के आधार पर लोक सेवा आयोगों (Civil Service Commissions) के द्वारा की जाती हैं। शेष बीस प्रतिशत पदों पर नियुक्तियाँ विभागीय अथवा न्यायालयों के अधिकारियों द्वारा की जाती हैं। संयुक्त राज्य में लोक सेवा आयोग की स्थापना उस समय हुई जब सन् १८८१ में एक पदाकांक्षी ने निराश होकर राष्ट्रपति गारफील्ड की हत्या कर दी थी। उसके पूर्व समस्त नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती थीं। उस समय लूट प्रणाली (Spoils system) का प्राधान्य था जिसके अनुसार विजयी राजनैतिक दल सङ्घीय शासनिक पदों को दल के समर्थकों में लूट के माल के सामान वितरित करता था। लोक सेवा आयोग की स्थापना से यद्यपि लूट प्रणाली का पूर्णतः अन्त नहीं हुआ, पर उसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित हो गया है। अब केवल ऐसे पदों पर ही राष्ट्रपति अपने समर्थकों को नियुक्त कर सकता है जिन्हें कांग्रेस ने अधिक महत्व के पद माना है। ऐसे पदों पर नियुक्ति के लिए भी सांविधानिक उपबन्ध के अनुसार सिनेट की सहमति आवश्यक होती है।

---

[1] अनुच्छेद २ धारा (२)

हैमिल्टन के कथनानुसार सांविधानिक सम्मेलन ने नियुक्तियों के सम्बन्ध में सिनेट की मंत्रणा और सहमति प्राप्त करने की प्रणाली इसलिए नहीं अपनाई कि राष्ट्रपति का उत्तरदायित्व कम हो जाय, वरन् उसका उद्देश्य पक्षपातपूर्ण नियुक्तियों को रोकना था।[१]

व्यवहार में सिनेट प्रायः सदैव ही राष्ट्रपति के मंत्रिमंडल के सदस्यों की नियुक्ति पर अपनी सहमति दे देती है। अब तक सिनेट द्वारा केवल छः मंत्रियों की नियुक्तियों को रद्द किया गया है। सिनेट द्वारा कार्यपालिका विभागों के इन उच्चतम अधिकारियों की नियुक्ति पर आपत्ति न करने का कारण यह है कि उनके आधिकारिक कार्यों के लिए राष्ट्रपति उत्तरदायी होता है। पर विभागाध्यक्षों की नियुक्तियों के अतिरिक्त अन्य समस्त नियुक्तियों का सिनेट में तीव्र विरोध किया जाना असाधारण बात नहीं है। यदि सिनेट किसी पद पर राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्ति का अनुसमर्थन नहीं करती तो राष्ट्रपति द्वारा दूसरा नाम प्रस्तावित किया जाता है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सिनेट केवल राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों पर सहमति या असहमति व्यक्त कर सकती है; वह स्वयं कोई नाम प्रस्तावित नहीं कर सकती। राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों का अनुसमर्थन या रद्द किया जाना बहुत कुछ इस तथ्य पर निर्भर करता है कि राष्ट्रपति के दल की सिनेट में क्या स्थिति है। यदि राष्ट्रपति के दल का बहुमत हो और दल के सदस्यों में पारस्परिक विवाद न हो तो सिनेट द्वारा राष्ट्रपति के नामांकनों का विरोध किये जाने की अधिक संभावना नहीं रहती। परन्तु इसके विपरीत यदि सिनेट में राष्ट्रपति के विरोधी दल का बहुमत हो तो नियुक्तियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है।

सिनेट की शिष्टता—जिन पदों पर राष्ट्रपति के द्वारा सिनेट की सहमति से नियुक्तियाँ की जाती हैं, उन पर नियुक्तियों के सम्बन्ध से अब एक सुदृढ़ एवं महत्वपूर्ण परम्परा बन गई है। जिस राज्य में नियुक्ति की जाती है, उस राज्य के सिनेट-सदस्य जिस व्यक्ति के नाम को स्वीकृत कर लेते हैं उसी व्यक्ति के नामांकन पर सिनेट का अनुसमर्थन प्राप्त हो जाता है। इस प्रथा को सिनेट की

---

[१] Hamilton, Alexander, *The Federalist*, No. LXXVI.

शिष्टता (Senatorial Courtesy) कहते हैं। इस प्रथा के कारण राष्ट्रपति किसी पद के लिए किसी व्यक्ति का नामांकन करने के पूर्व ही उस राज्य के अपने दल के सिनेट-सदस्यों की सहमति प्राप्त कर लेता है। वस्तुतः सिनेट के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामांकन किये जाने की प्रतीक्षा करते ही नहीं। वे राष्ट्रपति को अपने प्रत्याशियों की सूचना पहले ही दे देते हैं और राष्ट्रपति को उन्हीं को नामांकित करना होता है। यदि वह ऐसा न करे तो लगभग समस्त सिनेट-सदस्य उसके द्वारा नामांकित व्यक्ति का विरोध करेंगे और इस प्रकार सिनेट का अनुसमर्थन प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब राष्ट्रपति को किसी ऐसे राज्य में किसी पद पर नियुक्ति करनी होती है, जहाँ से उसके दल का कोई सिनेट-सदस्य न हो तो वह अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र रहता है; परन्तु ऐसी स्थिति में उसे उस राज्य के प्रतिनिधि सभा के सदस्यों अथवा अपने दल के प्रधान नेताओं की बात माननी होती है। इन कारणों से राष्ट्रपति को नियुक्तियों के सम्बन्ध में स्वयं निर्णय करने का अधिक अवसर नहीं मिलता है। फिर भी उसकी यह शक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसी के कारण उसका अपने दल पर तथा कांग्रेस के सदस्यों पर प्रभाव रहता है।

अल्पावकाश नियुक्तियाँ (Recess Appointments)—जिन सङ्घीय पदों पर नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति को सिनेट की मंत्रणा और सहमति प्राप्त करना आवश्यक है उन पर भी राष्ट्रपति सिनेट के सत्रावकाश काल में अपने विवेक से नियुक्ति कर सकता है। सिनेट का सत्र आरम्भ होने पर उस नियुक्ति पर सिनेट की पुष्टि प्राप्त करना आवश्यक होता है। यदि सिनेट नियुक्ति की पुष्टि नहीं करती और उसका सत्र समाप्त हो जाता है तो पदाधिकारी को पदच्युत कर दिया जाता है। परन्तु राष्ट्रपति उसे सिनेट के सत्रावकाश काल में पुनः नियुक्त कर सकता है, और इस प्रकार की गई नियुक्ति सिनेट के अगले सत्र के अंत तक वैध रहती है। परंतु जब सिनेट के सत्र के काल में ही कोई स्थान रिक्त हो और उस पर नियुक्ति सत्रावकाश काल में की जाय तो संबंधित पदाधिकारी वेतन पाने का अधिकारी नहीं होता।

पदाधिकारियों की पदच्युति—यद्यपि संविधान में राष्ट्रपति को स्पष्ट रूप से पदाधिकारियों को पदच्युत करने का अधिकार नहीं दिया गया है, परन्तु

सर्वोच्च न्यायालय ने इस अधिकार को राष्ट्रपति को दिये गए अन्य अधिकारों में निहित माना है।[१] परंतु राष्ट्रपति सङ्घीय न्यायाधीशों को पदच्युत नहीं कर सकता। उनको केवल महाभियोग (Impeachment) की प्रक्रिया के द्वारा ही पदच्युत किया जा सकता है। राष्ट्रपति की पदच्युत करने की शक्ति पर एक प्रतिबंध यह भी है कि वह अर्द्ध-न्यायिक (Quasi-judicial) अथवा अर्द्ध-विधायक शक्तियों (Quasi-legislative) का प्रयोग करने वाले आयोगों के सदस्यों को केवल उन्हीं कारणों के आधार पर पदच्युत कर सकता है, जिनका उल्लेख आयोग का निर्माण करने वाली संविधि में हो।[२] राष्ट्रपति की पदच्युत करने की शक्ति पर एक अन्य प्रतिबंध यह है कि लोक सेवा नियमों (Civil Services Rules) के अधीन नियुक्त किये गए अधिकारियों की केवल ऐसे ही कारणों से पदच्युति की जा सकती है जिनसे सेवा की कार्यपटुता में वृद्धि हो।

सन् १८६७ में कांग्रेस ने यह प्रयत्न किया था कि राष्ट्रपति की पदच्युति करने की शक्ति का प्रयोग सिनेट की सहमति से हो। उसने इस सम्बन्ध में एक विधि भी पारित की थी पर वह बाद में रद्द कर दी गई। अब राष्ट्रपति अपनी पदाधिकारियों को पदच्युत करने की शक्ति का अनन्य रूप से प्रयोग कर सकता है। न सिनेट उसे किसी पदाधिकारी को पदच्युत करने से रोक सकती है और न उसे किसी को पदच्युत करने के लिए बाध्य ही कर सकती है।[3] सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय के द्वारा यह भी निश्चित हो गया है कि सिनेट किसी व्यक्ति के नामांकन की पुष्टि करने का अपना निश्चय बदल नहीं सकती।[४]

---

[१] Myers *v.* United States (1926)

[२] Rathbun Humphrey *v.* United States (1935)

[3] सन् १९२४ में सिनेट ने नौसेना मंत्री एडविन डेनबी के बारे में भ्रष्टाचार का सन्देह प्रकट कर राष्ट्रपति से उनको पदच्युत करने की माँग की, पर राष्ट्रपति कूलिज ने ऐसा करने से इनकार कर दिया।

[४] United States *v.* Smith (1932)

यहाँ यह उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि राष्ट्रपति अपनी पदाधिकारियों को पदच्युत करने की शक्ति का विस्तृत उपयोग नहीं करता। यदि किसी पदाधिकारी को पदच्युत करने की आवश्यकता पड़ती ही है तो सामान्यतः उससे त्यागपत्र देने को कहा जाता है। यदि वह त्यागपत्र नहीं देता तभी उसे पदच्युत किया जाता है।

४. क्षमादान, प्रविलम्बन तथा सर्वक्षमा—अन्य अनेक राज्यों की भाँति संयुक्त राज्य में भी कार्यपालिका के प्रधान अर्थात् राष्ट्रपति को न्यायालयों द्वारा दण्ड-प्राप्त अपराधियों को क्षमा करने, उनके दण्ड को प्रविलम्बित करने (reprieve), तथा अनेक अपराधियों को सामूहिक रूप से क्षमादान (amnesty) करने की शक्ति प्रदान की गई है। राष्ट्रपति की इस शक्ति को कभी-कभी न्यायिक या अर्द्ध-न्यायिक शक्ति भी कहा जाता है। राष्ट्रपति दण्ड को पूर्ण रूप से क्षमा कर सकता है, अथवा केवल अंशतः क्षमा कर सकता है। वह अपराधी को कुछ शर्तों के साथ भी क्षमादान कर सकता है। ऐसी स्थिति में यदि अपराधी उन शर्तों का पालन नहीं करता तो क्षमा की आज्ञा को रद्द किया जा सकता है। राष्ट्रपति कारावास के दंड को अर्थदंड में और मृत्युदंड को आजीवन कारावास दंड में परिवर्तित कर सकता है। राष्ट्रपति, यदि वह ऐसा चाहे तो, किसी अभियुक्त को बंदी बनाये जाने के पूर्व ही अथवा मुकदमे के दौरान में भी क्षमा कर सकता हैं।[1] यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि राष्ट्रपति की क्षमादान करने की शक्ति पर दो निर्बन्ध हैं : (१) राष्ट्रपति केवल सङ्घीय विधियों के विरुद्ध किये गए अपराधों को क्षमा कर सकता है, राज्यों की विधियों के विरुद्ध किये गए अपराधों को नहीं, और (२) राष्ट्रपति महाभियोग द्वारा दिये गए दंड को क्षमा नहीं कर सकता। परन्तु इन निर्बन्धों के होते हुए भी राष्ट्रपति की क्षमादान करने की शक्ति अत्यन्त व्यापक है।

व्यवहार में क्षमादान सम्बन्धी निर्णय राष्ट्रपति द्वारा नहीं, प्रत्युत न्याय विभाग (Department of Justice) द्वारा किये जाते हैं। इसी विभाग के अधिकारी क्षमादान सम्बन्धी प्रार्थनापत्रों पर विचार करते हैं। केवल अत्यन्त

---

[1] Zink, *op. cit.*, p. 286.

महत्त्वपूर्ण मामलों में ही राष्ट्रपति क्षमादान के सम्बन्ध में स्वविवेक से निर्णय करता है। परन्तु प्रत्येक दशा में अन्तिम निर्णय करना राष्ट्रपति का ही कार्य है। यद्यपि राष्ट्रपति लगभग सदैव ही न्याय-विभाग की सिफारिशों को मान लेता है, पर वह ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है। क्षमादान के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को कांग्रेस अथवा न्यायालयों से मंत्रणा या सम्मति प्राप्त करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है।

५. वैदेशिक सम्बन्ध—यद्यपि संविधान में स्पष्ट शब्दों में राष्ट्रपति को वैदेशिक सम्बन्धों को संचालित करने की शक्ति नहीं दी गई है, परन्तु व्यवहार में वैदेशिक सम्बन्धों के क्षेत्र में राष्ट्रपति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शक्तियों को प्रयुक्त करता है। वैदेशिक सम्बन्धों के शीर्षक के अन्तर्गत हम राष्ट्रपति के निम्नलिखित कृत्यों की गणना कर सकते हैं :

१. विदेशी राज्यों में राजदूतों आदि की, सिनेट का अनुसमर्थन प्राप्त कर, नियुक्त करना
२. विदेशी राज्यों के राजदूतों के प्रमाणपत्र स्वीकृत करना तथा आवश्यक समझने पर उन्हें अस्वीकृत करना
३. नवीन राज्यों तथा शासनों को मान्यता प्रदान करना
४. विदेशी सरकारों से सम्पर्क स्थापित करना तथा संयुक्त राज्य के प्रधान प्रवक्ता के रूप में कार्य करना
५. विदेशी राज्यों से संधियाँ (इन पर सिनेट का अनुसमर्थन प्राप्त करना आवश्यक है) तथा कार्यपालिका समझौते करना
६. विदेशी नीति का उपक्रमण करना
७. विदेशों में अमेरिकी नागरिकों तथा अमेरिका में विदेशी नागरिकों के हितों की रक्षा करना

जैसा कि राष्ट्रपति की नियुक्ति-सम्बन्धी शक्तियों पर विचार करते समय उल्लेख किया गया है, विदेशों में संयुक्त राज्य के समस्त प्रतिनिधियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। यद्यपि ऐसी समस्त नियुक्तियों पर सिनेट का अनुसमर्थन प्राप्त करना आवश्यक होता है, परन्तु सिनेट के नाम प्रस्तावित करने का अधिकार न होने के कारण केवल राष्ट्रपति के विश्वासपात्र व्यक्ति ही विदेशों

में संयुक्त राज्य के प्रतिनिधि नियुक्त होते हैं। समस्त आवश्यक विषयों पर राष्ट्रपति इन्हें समय-समय पर अनुदेश देता रहता है, जो कि सामान्यत: राज्य-सचिव (Secretary of State) के द्वारा भेजे जाते हैं। अपने अनुदेशों का पालन न करने वाले किसी राजदूत आदि को राष्ट्रपति किसी भी समय पदच्युत कर सकता है।

अन्य राज्यों की भाँति संयुक्त राज्य में भी विदेशी राज्यों से आने वाले राजदूतों आदि के प्रमाणपत्र कार्यपालिका के प्रधान अर्थात् राष्ट्रपति के सम्मुख ही प्रस्तुत किये जाते हैं। यदि राष्ट्रपति चाहे तो वह किसी राज्य से अपने प्रतिनिधि को वापस बुलाने की माँग कर सकता है।

किसी नए राज्य अथवा नई सरकार को संयुक्त राज्य "मान्यता" (recognition) प्रदान करे अथवा नहीं इस प्रश्न का निर्णय भी राष्ट्रपति के द्वारा किया जाता है। अब तक विभिन्न राष्ट्रपतियों के द्वारा इस शक्ति का अनेक बार प्रयोग किया गया है। इस अधिकार के सम्बन्ध में किसी सांविधानिक उपबन्ध की अनुपस्थिति के कारण कुछ लोगों ने यह मत व्यक्त किया है कि कांग्रेस भी प्रस्ताव पारित कर किसी नवीन सरकार को मान्यता प्रदान कर सकती है। यदि कांग्रेस ऐसा करती भी है तो भी उससे वस्तुस्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं आयेगा, क्योंकि न तो कांग्रेस स्वयं उस राज्य में राजदूत नियुक्त कर सकती है न उससे संधि कर सकती है और न राष्ट्रपति को ऐसा करने के लिए बाध्य ही कर सकती है।

संयुक्त राज्य में न तो कांग्रेस, न कोई संघांतरित राज्य और न कोई वैयक्तिक संस्था ही राजनीतिक विषयों से सम्बन्धित प्रश्नों पर किसी विदेशी राज्य से सम्पर्क स्थापित कर सकती है। विदेशी राज्यों से वार्ता करने के लिए राष्ट्रपति तथा उसके अधीन कार्य करने वाला राज्य-विभाग (Department of State) ही उचित माध्यम है। सामान्यत: राष्ट्रपति राजदूतों अथवा राज्य-विभाग के द्वारा ही विदेशी राज्यों से सम्पर्क स्थापित करता है, परन्तु वह उनसे प्रत्यक्ष रूप से भी सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। राष्ट्रपति विदेशी राज्यों की सरकारों के अधिकारियों से वार्ता आदि के लिए विदेशयात्रा कर सकता है जैसा कि राष्ट्रपति विल्सन ने वार्साई की संधि (Treaty of Versailles)

के सम्बन्ध में हुई पूर्ववार्ता के समय किया था। राष्ट्रपति रूजवैल्ट भी मित्र-राष्ट्रों के प्रधानमंत्रियों से अनेक बार संयुक्त राज्य के बाहर मिले थे। राष्ट्रपति "विशेष", "गुप्त" अथवा "वैयक्तिक" प्रतिनिधियों के द्वारा भी विदेशी राज्यों से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। इनकी नियुक्ति के लिए सिनेट की सहमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती और इनका वेतन राष्ट्रपति की "आकस्मिकता निधि" (Contingent Fund) में से दिया जाता है। ऐसे प्रतिनिधि अनेक बार नियुक्त किये गए हैं। उदाहरणार्थ, राष्ट्रपति विल्सन ने प्रथम महायुद्ध के काल में कर्नल हाउस (Colonel House) को यूरोप में विशेष प्रतिनिधि नियुक्त किया था।

विदेशी राज्यों से संधियाँ करना संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति का अन्य महत्वपूर्ण कृत्य है, परन्तु उसे संधियाँ करने की पूर्ण शक्ति प्राप्त नहीं है। राष्ट्रपति द्वारा किसी विदेशी राज्य के साथ की गई कोई संधि तभी प्रभावी होती है जब सिनेट उसे दो-तिहाई बहुमत से अनुसमर्थित कर देती है। प्रारम्भ में संधि के सम्बन्ध में वार्ता किये जाने के समय भी सिनेट को सूचित किया जाता था, परन्तु कुछ काल के अनुभव ने ही इस प्रणाली की अव्यावहारिकता सिद्ध कर दी। इसी कारण कुछ समय पश्चात् ही यह प्रथा चल पड़ी कि विदेशी राज्यों से संधि कार्यपालिका-अधिकारियों के द्वारा की जाय और बाद में उसे सिनेट के समक्ष "मंत्रणा और सहमति" के लिये प्रस्तुत किया जाय। यदि सिनेट संधि को अनुसमर्थित कर दे तब तो वह प्रभावी हो जाय और यदि वह उसमें कुछ संशोधन प्रस्तावित करे तो वह तब तक प्रभावी न हो जब तक उसे सिनेट मूल या संशोधित अवस्था में अनुसमर्थित कर दे। सिनेट द्वारा रद्द की गई संधि के प्रवर्तित होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। सिनेट ने अनेक बार राष्ट्रपति द्वारा विदेशी राज्यों से की गई संधियों पर अपनी सहमति प्रदान करने से इनकार कर दिया है और इसी कारण वे प्रभावी न हो सकीं। सिनेट द्वारा अस्वीकृत की गई संधियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा महत्वपूर्ण वार्साई की संधि है, जिसमें राष्ट्र संघ (League of Nations) का चार्टर भी सम्मिलित था। इस संधि के अस्वीकृत किये जाने के ही कारण संयुक्त राज्य राष्ट्र संघ का सदस्य न बन सका।

कार्यपालिका द्वारा किसी विदेशी राज्य से की गई कोई संधि सिनेट द्वारा

स्वीकृत की जायगी या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर बहुत कुछ राष्ट्रपति के वैयक्तिक प्रभाव तथा सिनेट में उसके दल की स्थिति पर निर्भर करता है। यद्यपि सामान्यतः सिनेट में राष्ट्रपति के दल का प्रबल बहुमत होने पर संधि के स्वीकृत कर दिये जाने की अधिक संभावना रहती है, पर ऐसा होना आवश्यक नहीं है। केवल सिनेटरों का एक-तिहाई भाग और एक सिनेट सदस्य ($\frac{1}{3}+१$) मिल कर सिनेट द्वारा संधि को अस्वीकृत करा सकते हैं। फिर मतदान भी सदैव दलीय आधार पर नहीं होता। कभी-कभी राष्ट्रपति के दल के ही सदस्य उसकी संधि को अस्वीकृत करने में योग देते हैं। इसके विपरीत यदि राष्ट्रपति विरोधी दलों के सिनेट-सदस्यों को सन्तुष्ट करने में सफल हो जाय तो सिनेट द्वारा संधि के अनुसमर्थन की संभावना बहुत अधिक बढ़ जाती है। इसी कारण अधिकांश राष्ट्रपति किसी विदेशी राज्य से कोई महत्वपूर्ण संधि करते समय सिनेट की वैदेशिक सम्बन्ध समिति (Foreign Relations Committee) तथा विरोधी दल के प्रभावशाली सिनेटरों का विश्वास प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। राष्ट्रपति ट्रूमैन ने उत्तरी अटलांटिक संधि तथा जापान से की गई शान्ति संधि पर अनुसमर्थन प्राप्त करने के लिए इसी उपाय का अवलम्बन किया था। सिनेट की कार्यपालिका द्वारा विदेशों से की गई संधियों को रद्द करने की शक्ति के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में संयुक्त राज्य के प्रतिनिधियों को अत्यधिक सशंक रहना पड़ता है; उन्हें सदैव यह भय बना रहता है कि कहीं सिनेट उनके प्रयत्नों को विफल न कर दे।

सिनेट द्वारा संधियों को अनुसमर्थित कराने में जो कठिनाई उपस्थित होती है उससे मुक्ति पाने के लिए राष्ट्रपति ने एक नवीन मार्ग अपनाया है। संधियों पर सिनेट के पुष्टीकरण की आवश्यकता पड़ती है, अतएव वे अनेक विषयों पर संधियाँ नहीं करते; वे "कार्यपालिका समझौते" (Executive Agreements) करते हैं। सर्वप्रथम कार्यपालिका समझौता सन् १८१७ में किया गया था जो रश-बैबट समझौते (Rush Babot Agreement) के नाम से प्रसिद्ध है।[1] इस समझौते के द्वारा संयुक्त राज्य और कनाडा की सीमा का

[1] Brogan, D. W., *Introduction to American Political System*, p. 308.

असैनिकीकरण (demilitarisation) किया गया था । इसके पश्चात् समय-समय पर अनेक समझौते किये गए और द्वितीय महायुद्ध के काल में तो ऐसे समझौतों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई । व्यवहार में इन समझौतों का वही प्रभाव होता है जो संधियों का होता है। संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यपालिका समझौतों को संधियों की भाँति ही राज्य की सर्वोच्च विधि (Supreme law of the land)[1] माना है।

कार्यपालिका समझौते किन-किन विषयों पर किये जा सकते हैं, यह पूर्णतः अस्पष्ट है । सामान्यतः यह माना जाता है कि ऐसे समझौते किसी संधि के उपबंधों के अनुकूल विषयों पर अथवा राष्ट्रपति की प्रधान-सेनापति की शक्तियों के अधीन, या उसकी कार्यपालिका के प्रधान की हैसियत से शक्तियों के अधीन विषयों पर किये जा सकते हैं। यदि यह मान लिया जाय कि राष्ट्रपति केवल इन्हीं विषयों पर कार्यपालिका समझौते कर सकता है, तो भी उसकी ऐसे समझौते करने की शक्ति पर्याप्त विस्तृत होगी, परन्तु सन् १९४१ में राज्य विभाग के एक उत्तरदायी अधिकारी ने तो यहाँ तक दावा किया था कि वह समस्त कार्य जो संधियों द्वारा किये जा सकते हैं कार्यपालिका-समझौतों के द्वारा भी किये जा सकते हैं। [2] यदि यह कथन सत्य है तब तो कार्यपालिका समझौतों पर कोई निर्बन्ध रहता ही नहीं।

इस सम्बन्ध में व्यवहार पर दृष्टि डालने से हम पाते हैं कि संविधान प्रवर्तित होने के समय से अब तक कुल मिला कर संधियों से कार्यपालिका समझौते ही अधिक किये गए हैं।[3] यह समझौते कितने महत्वपूर्ण हो सकते हैं और संयुक्त राज्य के वैदेशिक सम्बन्धों को किस सीमा तक प्रभावित कर सकते हैं यह हम द्वितीय महायुद्ध के काल में किये गए कार्यपालिका समझौतों से अनुमान लगा

---

[1] United States, *v*. Belmont.

[2] Ogg and Ray, *Essentials of American Government*, p. 478.

[3] सन् १७८९ और फरवरी १९४१ के बीच १२५० से अधिक समझौते किये गये। इस बीच की गई संधियों की संख्या से यह संख्या एक-तिहाई अधिक है। (W. McClure, *International Executive Agreements*).

सकते हैं। याल्टा (Yalta) और पाट्सडम (Potsdam) में राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने मित्र-राष्ट्रों के प्रधान मंत्रियों के साथ जो समझौते किये थे उनका महत्व सर्वविदित है। इसके पूर्व राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने ही ब्रिटेन के साथ समझौता कर नौ सेना के अड्डों के बदले विध्वंसक-यान (Destroyers) दिये थे।

यहाँ यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि कभी-कभी कांग्रेस स्वयं भी राष्ट्रपति को अनेक प्रश्नों का निर्णय कार्यपालिका-समझौतों के द्वारा करने का अधिकार दे देती है। उदाहरणार्थ, कांग्रेस से प्राप्त प्राधिकार के अन्तर्गत ही विदेशों से 'हल व्यापारिक संधियाँ' (Hull Trade Treaties) की गई थीं।

वैदेशिक सम्बन्धों से संबन्धित उपर्युक्त महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त होने के फलस्वरूप व्यवहार में संयुक्त राज्य की विदेश-नीति राष्ट्रपति के द्वारा ही निर्धारित की जाती है। आज तक संयुक्त राज्य की वैदेशिक नीति में जितने महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, वे मुख्यत: राष्ट्रपतियों द्वारा अपनाई गई नीति के ही परिणाम हैं। संयुक्त राज्य की शैशवावस्था में राष्ट्रपति वाशिंगटन ने उसे पृथकत्व की नीति (Policy of Isolation) अपनाने का परामर्श दिया था। एक लम्बी अवधि तक संयुक्त राज्य उसी नीति पर चलता रहा। सन् १८२३ में राष्ट्रपति मनरो ने कांग्रेस को भेजे गए अपने एक संदेश में 'मनरो सिद्धान्त' (Monroe Doctrine) का प्रतिपादन किया था जिसमें योरोपीय राजसत्ताओं को अमेरिकी महाद्वीपों में स्थित देशों में अनुचित हस्तक्षेप न करने की मंत्रणा दे कर उन्होंने संयुक्त राज्य को अन्य अमेरिकी राज्यों का संरक्षक बना दिया। चीन के सम्बन्ध में जिस 'खुले द्वार' (Open Door) की नीति का संयुक्त राज्य एक लम्बे समय तक अनुसरण करता रहा उसका प्रतिपादन सर्वप्रथम राष्ट्रपति टाइलर के राज्य-सचिव द्वारा किया गया था। राष्ट्रपति थियोडोर रूज़वैल्ट और टाफ़्ट को कैरिबियन गणराज्यों के ऊपर आर्थिक संरक्षण स्थापित करने की नीति का श्रेय प्राप्त है। प्रथम महायुद्ध में संयुक्त राज्य अपनी तटस्थता की नीति त्याग कर मित्रराष्ट्रों का सहयोगी बना, पर इसके लिए एक बड़ी सीमा तक राष्ट्रपति विल्सन के प्रयत्न ही उत्तरदायी हैं। राष्ट्रपति रूज़वैल्ट की कैरिबियन राज्यों के प्रति 'अच्छे पड़ोसी की नीति' ("Good Neighbour Policy"), राष्ट्रपति रूज़वैल्ट द्वारा सन् १९४१ में ब्रिटिश प्रधान मंत्री चर्चिल के साथ

अटलांटिक चार्टर की घोषणा, ट्रूमन योजना (Truman Plan), राष्ट्रपति आइसनहोवर की अणुशक्ति तथा निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी नीति इस बात के कुछ अन्य प्रमाण हैं कि संयुक्त राज्य में वैदेशिक नीति मुख्यतः राष्ट्रपति के द्वारा निर्धारित की जाती है।

उपर्युक्त कथन से यह न समझना चाहिए कि राष्ट्रपति संयुक्त राज्य को मन-चाही विदेश नीति पर चलाने के लिए स्वतंत्र है। कांग्रेस राष्ट्रपति को अपनी विदेश-नीति में परिवर्तन करने के लिए अथवा कभी-कभी अनिच्छित विदेश-नीति पर चलने के लिए बाध्य कर सकती है। इसका कारण न केवल यह है कि राष्ट्रपति को विदेशी राज्यों से की गई संधियों को सिनेट के समक्ष पुष्टीकरण के लिए प्रस्तुत करना होता है वरन् यह भी कि युद्ध घोषित करने की शक्ति कांग्रेस को दी गई है, राष्ट्रपति को नहीं। सन् १८१२ तथा १८९८ में कांग्रेस द्वारा उठाये गए पगों के ही परिणामस्वरूप संयुक्त राज्य को युद्ध करना पड़ा। राष्ट्रपति विल्सन भरसक प्रयत्न करके भी संयुक्त राज्य को, सिनेट के विरोध के कारण, राष्ट्र संघ का सदस्य न बना सके। राष्ट्रपति को अपनी विदेश नीति को कार्यान्वित करने के लिए कांग्रेस से आवश्यक धन की स्वीकृति करानी होती है और कांग्रेस उसकी स्वीकृति न देकर भी राष्ट्रपति को अपनी नीति में परिवर्तन करने के लिए बाध्य कर सकती है। राष्ट्रपति आइसनहोवर द्वारा विदेशों को दी जाने वाली सहायता में कमी कर कांग्रेस राष्ट्रपति की विदेश-नीति को बड़ी सीमा तक प्रभावित कर रही है। परन्तु जहाँ यह सत्य है कि कांग्रेस विदेश-नीति को नियंत्रित कर सकती है वहाँ यह भी सत्य है कि राष्ट्रपति ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकता है जब कांग्रेस को उसकी नीति अपनानी ही पड़े। राष्ट्रपति संयुक्त राज्य की स्थल और जल-सेना का प्रधान सेनापति होने के नाते सेना या युद्धपोतों को कहीं भी भेज सकता है और इस प्रकार युद्ध का सूत्रपात कर सकता है—यद्यपि वह युद्ध की घोषणा नहीं कर सकता। सन् १८४६ में संयुक्त राज्य और मेक्सिको में जो युद्ध हुआ उसका कारण राष्ट्रपति पोल्क (James K. Polk) की नीति ही थी।[१] कांग्रेस द्वारा युद्ध की घोषणा के अभाव में ही राष्ट्रपति ट्रूमैन

[१] "...it is not excessive to say that in the absence of his (Polk's) determination, the war would not have occurred."—Laski, H. J. *Reflections of American Government*, p. 4.

ने अमेरिकी सेनाओं को सन् १९५० में कोरिया में उत्तरी कोरियाई सेनाओं के विरुद्ध लड़ने को भेज दिया। ये उदाहरण यही सिद्ध करते हैं कि विदेश-नीति के सम्बन्ध में कांग्रेस और सिनेट के नियंत्रण के बावजूद भी सामान्यतः राष्ट्रपति की इच्छा ही सर्वप्रधान रहती है। वह ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है जिनमें कांग्रेस को उसकी नीति स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त कोई विकल्प ही शेष न रहे।

विदेशों में निवास करने वाले संयुक्त राज्य के नागरिकों को संरक्षण प्रदान करना भी राष्ट्रपति का ही कार्य है। यदि किसी अमेरिकी नागरिकों के प्रति दुर्व्यवहार किया जाता है अथवा उसे किसी राज्य में न्याय नहीं प्राप्त होता तो राष्ट्रपति युद्ध की घोषणा करने के अतिरिक्त अन्य समस्त पग उठा सकता है। इस सम्बन्ध में सामान्यत: सारा कार्य राज्य-विभाग के द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार संयुक्त राज्य में निवास करने वाले विदेशी राज्यों के नागरिकों को संरक्षण प्रदान करना राष्ट्रपति का कृत्य है। राष्ट्रपति संयुक्त राज्य के विभिन्न राज्यों के शासनों से भी विदेशी नागरिकों के हितों की रक्षा के लिए आवश्यक कार्यवाही करने को कह सकता है।

७. सैन्य संचालन—राष्ट्रपति संयुक्त राज्य की स्थल और जल-सेना का प्रधान सेनापति होता है। जब संयुक्त राज्य की सक्रिय सेवा के लिए विभिन्न अमेरिकी राज्यों की नागरिक सेना (militia) को बुलाया जाता है तब राष्ट्रपति उसका भी प्रधान सेनापति होता है।[1] प्रधान सेनापति होने के नाते राष्ट्र की प्रतिरक्षा का उत्तरदायित्व भी राष्ट्रपति के कंधों पर आ जाता है। यद्यपि समस्त सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा (सिनेट का अनुसमर्थन प्राप्त कर) की जाती है; परन्तु सामान्यतः वह इस सम्बन्ध में सैनिक विभागों की सिफारिशों को ही स्वीकार कर लेता है। युद्ध काल में राष्ट्रपति को प्रायः असीमित सैनिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यदि राष्ट्रपति-पद पर कार्य करने वाला व्यक्ति सैनिक विषयों की विस्तृत जानकारी रखता है तो वह सैन्य संचालन तथा व्यूहरचना आदि की योजनाएँ तक स्वयं बना सकता है।[2] ऐसा न होने पर सामान्यतः

---

[1] अनुच्छेद २ धारा (२)

[2] द्वितीय महायुद्ध के काल में राष्ट्रपति रूजवैल्ट पर यह आरोप लगाया गया था कि वे सैनिक मामलों में बहुत अधिक रुचि ले रहे हैं।

यह कार्य उच्च सैनिक अधिकारियों पर छोड़ दिया जाता है। स्थल और जल-सेना के आकार का निर्णय करना, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के लिए विनियोगों (appropriations) पर स्वीकृति देना तथा स्थल और जल-सेना के संगठन आदि से सम्बन्धित सामान्य विधियाँ पारित करना कांग्रेस का कार्य है परन्तु राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए स्वीकृत धन के व्यय के सम्बन्ध में व्यवस्था करना तथा सैन्य संगठन आदि के सम्बन्ध में विनिमय बनाना युद्ध और नौसेना विभागों का कार्य है जो राष्ट्रपति के अधीन कार्य करते हैं।

राष्ट्रपति की विधायिनी शक्तियाँ (Legislative Powers)

यद्यपि अमेरिकी संविधान के प्रथम अध्याय में ही यह कहा गया है कि संविधान द्वारा प्रदत्त समस्त विधायिनी शक्तियाँ कांग्रेस में निहित होंगी, परन्तु इसका यह अर्थ लगाना कि राष्ट्रपति को विधि-निर्माण के सम्बन्ध में कोई शक्ति ही प्राप्त नहीं है भ्रान्तिमूलक होगा। संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कृत्य सौंपे गए हैं जिनके कारण वह विधि-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भाग ले सकता है। संविधान-निर्माताओं की शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त में आस्था को देखते हुए कुछ लोगों को यह तथ्य आश्चर्यजनक अवश्य प्रतीत होगा; परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ संविधान-निर्माताओं ने शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की थी वहाँ उन्होंने अवरोध और संतुलन (Checks and balances) की भी उचित व्यवस्था की थी। राष्ट्रपति को विधायी कृत्य सौंपे जाने का यही कारण है। संविधान में राष्ट्रपति के चार विधायी कृत्यों का उल्लेख है—(१) कांग्रेस के विशेषाधिवेशनों को बुलाना, ( ) कांग्रेस को संदेश भेजना, (३) किसी विधि को पारित करने का सुझाव देना, तथा (४) कांग्रेस द्वारा पारित विधियों पर हस्ताक्षर करना अथवा उनका अभिषेध (Veto) करना। इन सांविधानिक कृत्यों के अतिरिक्त भी अन्य कुछ ऐसे उपाय हैं जिनसे राष्ट्रपति विधि-निर्माण के सम्बन्ध में कांग्रेस को प्रभावित कर सकता है।

१. **कांग्रेस के विशेषाधिवेशन बुलाना**—अनेक देशों में कार्यपालिका के प्रधान को विधानमंडल के सत्र बुलाने, स्थगित करने तथा विधानमंडल को विघटित करने का अधिकार प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ ब्रिटिश-नरेश तथा भारत के राष्ट्रपति ही संसद को बुलाते हैं, उन्हें स्थगित करते हैं तथा आवश्यकता

पड़ने पर संसद के निम्न सदन को विघटित कर नव-निर्वाचन का आदेश देते हैं। संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की स्थिति इनसे भिन्न है। कांग्रेस के सामान्य सत्र आरंभ होने की तिथि का संविधान में उल्लेख है और राष्ट्रपति के द्वारा उसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता। संसदीय शासन-प्रणाली वाले देशों के कार्यपालिका-प्रधानों की भाँति सयुक्त राज्य का राष्ट्रपति कांग्रेस या उसके किसी सदन को विघटित (dissolve) नहीं कर सकता। वह केवल एक विशेष परिस्थिति में ही कांग्रेस के सत्रों को स्थगित (adjourn) कर सकता है। ऐसा तब किया जा सकता है जब कांग्रेस के दोनों सदन सत्र के स्थगन के सम्बन्ध में एकमत होने में असफल रहें। परन्तु संविधान में राष्ट्रपति को किसी भी समय कांग्रेस या उसके किसी एक सदन के विशेष सत्र बुलाने का अधिकार दिया गया है।[१]

व्यवहार में संविधान प्रवर्तित किये जाने के समय से अब तक कभी भी राष्ट्रपति ने कांग्रेस के सत्र को स्थगित नहीं किया है।[२] कांग्रेस के विशेष सत्र बुलाने के अधिकार का अनेक बार प्रयोग हुआ है। पर इसकी आवश्यकता सन् १९३२ के पूर्व अधिक पड़ती थी जब कांग्रेस का सत्र राष्ट्रपति के पद ग्रहण करने के लगभग नौ मास बाद आरंभ होता था। बीसवें संशोधन द्वारा की गई व्यवस्था के अनुसार अब कांग्रेस का सामान्य सत्र राष्ट्रपति के पद ग्रहण करने के कुछ ही समय पूर्व आरंभ होता है और इस कारण सामान्यतः विशेष सत्र बुलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अब तभी ही विशेष सत्र बुलाने की आवश्यकता पड़ती है जब युद्ध आदि के कारण कोई असाधारण स्थिति उत्पन्न हो जाय।[३] परन्तु विशेष सत्र बुलाने की शक्ति का एक अन्य रीति से भी उपयोग किया जा सकता है। यदि राष्ट्रपति यह चाहता है कि कांग्रेस किसी विधेयक या प्रस्ताव पर विचार करे और कांग्रेस अपना सत्र स्थगित करने वाली है तो राष्ट्रपति विशेष सत्र बुलाने की धमकी देकर उसे अपना सत्र जारी रखने के लिए प्रेरित कर सकता है। कांग्रेस के सदस्यों को वार्षिक वेतन मिलता है,

---

[१] अनुच्छेद २ धारा (३)

[२] Ogg and Ray, *Essentials of American Government*, p. 243.

[३] सन् १९३९ में योरोप में महायुद्ध आरंभ होने पर राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने कांग्रेस का विशेष सत्र बुलाया था।

इस कारण विशेष सत्र उनके लिए असुविधा और अतिरिक्त व्यय का ही कारण बनते हैं। इसी कारण राष्ट्रपति को अपने उद्देश्य में सफलता मिलती है।

राष्ट्रपति के संदेश—संविधान में राष्ट्रपति को यह कृत्य सौंपा गया है कि वह समय-समय पर कांग्रेस को संघ की स्थिति "(State of the Union) के बारे में सूचना दे तथा ऐसे प्रस्ताव कांग्रेस के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत करे जिन्हें वह आवश्यक और उचित समझे।[1] राष्ट्रपति को यह कृत्य सौंपा जाना युक्तियुक्त है क्योंकि आंतरिक और वैदेशिक मामलों का जितना ज्ञान उसे होता है उतना कांग्रेस के सदस्यों को नहीं होता। अपने विस्तृत ज्ञान और अनुभव के आधार पर राष्ट्रपति जो सुझाव देगा, निश्चय ही वे अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण होंगे।

राष्ट्रपति कांग्रेस के किसी सदन का सदस्य नहीं होता इस कारण उपर्युक्त सूचना तथा सुझाव वह संदेशों के द्वारा ही प्रस्तुत करता है। संविधान में यह कहीं उल्लेख नहीं है कि राष्ट्रपति कितनी बार कांग्रेस को संदेश भेजेगा, ऐसे संदेश किन-किन विषयों से सम्बन्धित होंगे, ये संदेश लिखित होंगे अथवा राष्ट्रपति के वक्तव्य के रूप में। इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक राष्ट्रपति को इन मामलों में स्वविवेक से कार्य करने की स्वतन्त्रता है। व्यवहार में कांग्रेस का सत्र आरम्भ होने के पश्चात् औपचारिक कार्यवाहियों के समाप्त हो जाने पर राष्ट्रपति "सङ्घ की स्थिति" के सम्बन्ध में एक लम्बा संदेश कांग्रेस के पास भेजता है, या स्वयं व्यक्तिगत रूप से प्रस्तुत करता है, जिसमें देश की अवस्था तथा समस्याओं का उल्लेख होता है तथा उन विधानों (Legislation) का सुझाव रहता है जिन्हें राष्ट्रपति आवश्यक या उचित समझता है। इस दृष्टि से यह संदेश बहुत कुछ ब्रिटिश-नरेश तथा भारत के राष्ट्रपति के उस भाषण के अनुरूप होता है जो उनके द्वारा संसद के सत्र का उद्घाटन करते समय दिया जाता है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जहाँ ब्रिटेन और भारत में क्रमशः नरेश और राष्ट्रपति के भाषण के प्रायः सभी सुझावों को कार्यान्वित कर दिया जाता है वहाँ संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति के संदेश के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। अनेक बार उसके सुझावों को कांग्रेस नहीं मानती। प्रथम विस्तृत

---

[1]अनुच्छेद २ धारा (३)

संदेश के पश्चात् राष्ट्रपति कांग्रेस को अन्य अनेक संदेश भेजता है। इनमें से दो मुख्य हैं—वार्षिक आय-व्ययक सम्बन्धी संदेश तथा आर्थिक आख्या (Economic report)। ये दोनों संदेश प्रथम संदेश के कुछ ही दिन बाद कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त भी राष्ट्रपति समय-समय पर अनेक संदेश भेजता रहता है। इन अनुपूरक संदेशों की संख्या कितनी ही हो सकती है।

संयुक्त राज्य के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने अपने महत्त्वपूर्ण संदेशों को स्वयं कांग्रेस के सम्मुख उपस्थित होकर प्रस्तुत करना ही उचित समझा। राष्ट्रपति जॉन एडम्स ने भी उनका ही अनुकरण किया। पर राष्ट्रपति जैफ़रसन कभी कांग्रेस के सम्मुख उपस्थित नहीं हुए और उन्होंने लिखित संदेश भेजने की परिपाटी आरम्भ की। यह परिपाटी लगभग सौ वर्ष तक स्थिर रही, परन्तु वुडरो विल्सन ने पुन: वैयक्तिक रूप से अपने महत्त्वपूर्ण संदेश प्रस्तुत किये। उनके पश्चात् के राष्ट्रपतियों में किसी ने लिखित संदेश दिये और किसी ने मौखिक। यदि राष्ट्रपति प्रभावशाली वक्ता भी होता है तो निश्चय ही मौखिक संदेशों का अधिक प्रभाव पड़ता है। परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जिन राष्ट्रपतियों ने संदेशों को वैयक्तिक रूप से प्रस्तुत किया उन्हें भी अनेक अनुपूरक संदेशों को लिखित रूप से भेजना पड़ा। लिखित संदेशों को सदन का एक कर्मचारी पढ़कर सुनाता है।

संदेश में किस विषय की चर्चा हो यह राष्ट्रपति स्वविवेक से निर्णय करता है। यद्यपि सामान्यत: उनमें उन विधेयकों आदि के सुझाव रहते हैं जिन्हें राष्ट्रपति पारित कराना चाहता है, परन्तु कभी-कभी उनके द्वारा राष्ट्रपति देश की जनता अथवा विदेशों के शासनों से भी कुछ कह सकता है। राष्ट्रपति अपने संदेश के द्वारा किसी विषय पर सार्वजनिक वाद-विवाद आरम्भ कर सकता है और इस प्रकार जनमत जान सकता है। वह इनके द्वारा विदेशों के शासनों को अपने शासन की नीति से भी परिचित करा सकता है। राष्ट्रपति मनरो ने सन् १८२३ में कांग्रेस को भेजे गए संदेश में ही योरोपीय राष्ट्रों को यह चेतावनी दी थी कि संयुक्त राज्य अमेरिका महाद्वीपों में नवीन उपनिवेशीकरण को सहन नहीं करेगा। राष्ट्रपति विल्सन ने भी अपने विख्यात 'चौदह सूत्रों' (Fourteen Points) की घोषणा कांग्रेस को भेजे गये संदेश में ही की थी।

यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि राष्ट्रपति के संदेशों का क्या प्रभाव होता है। सामान्यतः इन संदेशों का प्रभाव राष्ट्रपति के व्यक्तित्व, कांग्रेस के दोनों सदनों में उसके दल की स्थिति, तथा उसकी नीति के प्रति जनता के भावों पर निर्भर करता है। यदि राष्ट्रपति प्रभावशाली व्यक्ति होता है और उसे जनता का प्रबल समर्थन प्राप्त होता है तो उसके संदेशों की कांग्रेस द्वारा अवहेलना नहीं की जा सकती। यदि राष्ट्रपति के दल को कांग्रेस के दोनों सदनों में पूर्ण बहुमत प्राप्त हो तो भी राष्ट्रपति के संदेश बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। परन्तु इसके विपरीत स्थिति होने पर यह सम्भव है कि वे सर्वथा प्रभावहीन सिद्ध हों। यह भी निश्चित नहीं है कि राष्ट्रपति के दल का दोनों सदनों में बहुमत होने पर उसके संदेशों में दिये गए सुझावों को मान ही लिया जायगा, क्योंकि कभी-कभी राष्ट्रपति के दल के सदस्य ही उसके सुझावों के विरुद्ध मत देते हैं। मनरो ने ठीक ही लिखा है कि राष्ट्रपति का वार्षिक संदेश ब्रिटिश नरेश के भाषण के समान इस बात की भविष्यवाणी नहीं होती कि सत्र समाप्त होने के पूर्व कौन-कौन विधियाँ बन जायँगी।[१]

३. विधियों तथा वित्तीय योजनाओं का उपक्रमण—यद्यपि संविधान में राष्ट्रपति को विधियों का उपक्रमण (initiate) करने की शक्ति स्पष्टतः प्रदान नहीं की गई है, परन्तु कांग्रेस को ऐसे उपाय (measures) जिन्हें वह आवश्यक और उचित समझे सुझाने के कृत्य के अन्तर्गत उसकी यह शक्ति सम्मिलित मानी जाती है। यहाँ तक कि राष्ट्रपति का यह कर्तव्य माना जाने लगा है कि वह कांग्रेस के सम्मुख अपने अनुभव के आधार पर उपयुक्त विधेयक प्रस्तुत करे। कांग्रेस द्वारा प्रति वर्ष पारित किये जाने वाले अधिनियमों पर एक दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश महत्वपूर्ण विधेयक शासन के कार्याङ्ग (executive organ) के द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं। कार्यपालिका द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले विधेयकों में से बहुत से पूर्व-प्रवर्तित विधियों के विस्तार, व्याख्या अथवा परिवर्धन से संबंधित होते हैं; परन्तु उनमें ऐसे भी अनेक विधे-

[१] "A President's annual message is not, like the speech from the throne in England, an accurate forecast of what will go on the statute book before the session ends."—Munro, *op. cit.*, p. 196.

यक होते हैं जिनका अत्यंत गम्भीर महत्व होता है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि कार्यपालिका-विभागों के द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक विधेयक राष्ट्रपति की प्रेरणा से तैयार किया जाता है, परन्तु सामान्यतः ऐसे सभी विधेयकों पर राष्ट्रपति का समर्थन प्राप्त कर लिया जाता है क्योंकि इससे उन्हें पारित कराने में सरलता होती है। राष्ट्रपति का विधियों के उपक्रमण में भाग बहुत कुछ राष्ट्रपति की वैयक्तिक अभिरुचि तथा देश की आंतरिक एवं बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर करता है। बहुत से राष्ट्रपति विधियाँ प्रस्तावित करने में बहुत सक्रिय रहे हैं, परन्तु कुछ राष्ट्रपतियों ने इस कार्य की अवहेलना-सी की है। इसी प्रकार परिस्थितियों का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। सन् १९३३ में आर्थिक संकट और द्वितीय महायुद्ध के कारण राष्ट्रपति को अनेक महत्वपूर्ण विधेयक उपस्थित करना आवश्यक हो गया।

राष्ट्रपति न केवल महत्वपूर्ण विधेयक ही प्रस्तावित कराता है वरन् वित्त-संबंधी योजनाएँ भी उसी के द्वारा संदेश के रूप में कांग्रेस के सम्मुख प्रस्तुत की जाती हैं। सन् १९२१ में कांग्रेस ने आय-व्ययक तथा लेखा अधिनियम (Budget and Accounting Act) पारित कर आय-व्ययक तैयार करने का कार्य आय-व्ययक ब्यूरो (Budget Bureau) को सौंपा था। प्रारम्भ में यह ब्यूरो राष्ट्रपति की सामान्य देख-रेख में कार्य करती रही, परन्तु राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने इसे पूर्णतः अपने नियंत्रण में ले लिया। अब आय-व्ययक तैयार कराना राष्ट्रपति का ही कृत्य हो गया है। यद्यपि कांग्रेस राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित आय-व्ययक में परिवर्तन करके ही उसे अङ्गीकृत करती है पर उसके द्वारा पारित आय-व्ययक का आधार राष्ट्रपति की योजनाएँ ही होती हैं।

४. राष्ट्रपति की अभिषेध-शक्ति (Veto Power)—राष्ट्रपति की जिन विधायिनी शक्तियों (Legislative Powers) का उल्लेख ऊपर किया गया है उन सब से अधिक महत्वपूर्ण उसकी अभिषेध-शक्ति है। वस्तुतः यही शक्ति उसे विधि-निर्माण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भाग प्रदान करती है। इस सम्बन्ध में सांविधानिक उपबंध इतना स्पष्ट है कि उसका उद्धृत कर देना मात्र ही पर्याप्त होगा।

"प्रत्येक विधेयक, जिसे प्रतिनिधि सभा और सिनेट पारित करें, विधि बनने के पूर्व संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत किया जायगा। यदि वह

उसे अंगीकृत कर लेता है तो वह उस पर हस्ताक्षर कर देगा, परन्तु अंगीकृत न करने की दशा में वह उसे अपनी आपत्तियों के साथ उस सदन को लौटा देगा जिसमें उसका आरंभ हुआ हो। वह सदन समस्त आपत्तियों को अपने कार्यक्रम (Calendar) में उल्लिखित कर उस पर पुनर्विचार करेगा। यदि पुनर्विचार के पश्चात् उस सदन के दो-तिहाई सदस्य उस विधेयक को पारित करने के लिए सहमत हों तो वह विधेयक आपत्तियों के साथ दूसरे सदन के पास भेज दिया जायगा, जहाँ उस पर उसी प्रकार पुनर्विचार किया जायगा। और यदि उस सदन के दो-तिहाई सदस्यों के द्वारा वह अंगीकृत कर लिया जाता है तो वह विधेयक विधि बन जायगा। परन्तु ऐसी सब अवस्थाओं में दोनों सदनों के मतों का निर्णय हाँ और न की ध्वनि से होगा, और विधेयक के पक्ष या विपक्ष में मतदान करने वाले व्यक्तियों के नाम उनके सदन की विवरण-पत्रिका (Journal) में अंकित किये जायँगे। यदि कोई विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् उसके द्वारा (रविवारों को छोड़ कर) दस दिन के अन्दर वापस नहीं किया जायगा तो वह उसी प्रकार विधि बन जायगा जिस प्रकार कि उसके हस्ताक्षर प्राप्त कर लेने के बाद बनता। यदि विधेयक की वापसी कांग्रेस के स्थगन के कारण संभव न हो सकेगी तो वह विधि नहीं बनेगा।"[1]

संविधान के इस उपबंध के अनुसार कांग्रेस द्वारा पारित कोई विधेयक जब राष्ट्रपति के पास पहुँचता है तो वह उस पर निम्न विकल्प कार्यों में से कोई एक कर सकता है :

१. राष्ट्रपति विधेयक पर हस्ताक्षर कर सकता है, ऐसा कर देने पर वह विधि बन जाता है।

२. राष्ट्रपति को यदि विधेयक पर या उसके किसी भाग पर आपत्ति हो तो वह उसे दस दिन की अवधि में कांग्रेस के उस सदन को वापस कर सकता है जिसमें उसका सूत्रपात हुआ था। राष्ट्रपति विधेयक के साथ एक संदेश भी संलग्न कर सकता है जिसमें उसकी आपत्तियों तथा वांछित संशोधनों का उल्लेख हो। राष्ट्रपति द्वारा वापस किये जाने पर विधेयक तभी विधि बन सकता है

---

[1]अनुच्छेद १ धारा (७)

जब कांग्रेस के दोनों सदन उसमें राष्ट्रपति द्वारा वांछित संशोधन कर पुनः राष्ट्रपति के पास हस्ताक्षर के लिए भेज दें अथवा उसे मूल रूप में ही दो-तिहाई बहुमत से पुनः पारित कर दें।

३. राष्ट्रपति विधेयक पर कोई कार्यवाही न करे यह भी संभव है। यदि दस दिन के (रविवारों के अतिरिक्त) अन्दर राष्ट्रपति न तो विधेयक पर हस्ताक्षर करता है और न उसे पुनर्विचार के लिए वापस करता है और इस बीच कांग्रेस के सत्र का अंत नहीं होता तो वह बिना राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के ही विधि बन जाता है। यदि इस बीच कांग्रेस के सत्र का अंत हो जाता है तो विधेयक का भी अंत हो जाता है।

स्थगन के प्रश्न को छोड़ कर अन्य समस्त ऐसे आदेशों, प्रस्तावों तथा अर्थ सम्बन्धी निर्णयों के लिए जिन पर प्रतिनिधि सभा और सिनेट दोनों का सहमत होना आवश्यक हो, उपर्युक्त व्यवस्था ही लागू होती है। राष्ट्रपति कांग्रेस द्वारा पारित सांविधानिक संशोधन के प्रस्ताव पर भी अभिषेध-शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता। राष्ट्रपति एक विधेयक के किसी भाग या कुछ भागों पर अथवा विनियोग विधेयक (appropriations bill) की किसी एक मद पर अभिषेध शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता। इस नियम का लाभ उठा कर कांग्रेस कभी-कभी किसी विनियोग-विधेयक में अन्य उपबंध भी सम्मिलित कर देती है। राष्ट्रपति उस उपबंध से सहमत न होते हुए भी उसे अंगीकृत करने के लिए बाध्य हो जाता है क्योंकि पूर्ण विनियोग-विधेयक पर अभिषेध-शक्ति का प्रयोग करने से उसे धन सम्बन्धी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कांग्रेस इस उपाय का अत्यन्त गम्भीर स्थिति में ही प्रयोग करती है, सदन नहीं। दोनों सदनों द्वारा पारित ऐसे "समवर्ती प्रस्तावों" (Concurrent resolutions) पर भी जिनमें कांग्रेस किसी प्रश्न पर अपनी इच्छा मात्र व्यक्त करती है और जो विधियों का प्रभाव• नहीं रखते, राष्ट्रपति अभिषेध-शक्ति का प्रयोग नहीं करता।

अलैक्ज़ेंडर हैमिल्टन का मत था कि राष्ट्रपति को अभिषेध-शक्ति दिये जाने का मुख्य कारण उसे एक ऐसा अस्त्र उपलब्ध कराना था जिससे वह कांग्रेस द्वारा अपनी शक्तियों के अतिक्रमण तथा अनुचित विधियों के निर्माण को रोक

सके ।[1] हैमिल्टन का विश्वास था कि इस शक्ति का प्रयोग अत्यन्त सावधानी के साथ किया जायगा । संविधान के प्रवर्तन के पश्चात् प्रथम चालीस वर्षों में ऐसा हुआ भी । इस काल में केवल नौ बार अभिषेध-शक्ति का प्रयोग किया गया और ऐसा उसी दशा में किया गया जब विधेयक में कोई ऐसा उपबंध पाया गया जो संविधान के प्रतिकूल था । परंतु राष्ट्रपति एन्ड्र्यू जैक्सन ने अभिषेध-शक्ति का अत्यन्त व्यापक रूप से प्रयोग किया । उन्होंने न केवल ऐसे विधेयकों पर अभिषेध-शक्ति का प्रयोग किया जो संविधान का अतिक्रमण करते थे अथवा दोषपूर्ण थे, परन्तु उन पर भी जो उनके राजनीतिक विश्वासों के विरोधी थे। यद्यपि उनके कार्य की प्रारम्भ में बहुत आलोचना हुई पर बाद में यह मान लिया गया कि राष्ट्रपति किसी भी कारण से किसी विधेयक पर अभिषेध-शक्ति का प्रयोग कर सकता है ।[2] राष्ट्रपति जॉनसन ने भी इस शक्ति का अनेक विधेयकों पर प्रयोग किया, परन्तु कांग्रेस ने दो-तिहाई बहुमत से इन्हें पुनः पारित कर राष्ट्रपति के अभिषेध को व्यर्थ कर दिया । राष्ट्रपति जॉनसन के पश्चात् अभिषेध शक्ति का व्यापक प्रयोग राष्ट्रपति ग्रोवर क्लीवलैंड के काल में हुआ उन्होंने लगभग दो सौ व्यक्तिगत निवृत्ति-वेतन विधेयकों (Private Pension Bills) पर इसका प्रयोग किया । उनके पश्चात् प्रायः सभी राष्ट्रपतियों ने इसका व्यापक प्रयोग किया है ।[3]

---

[1] चार्ल्स बियर्ड द्वारा उद्धृत अलैक्ज़ेंडर हैमिल्टन का मत (Beard, *American Government and Politics*, pp. 204-5).

[2] संविधान के इस उपबंध 'यदि वह उसे अंगीकृत करता है तो वह उस पर हस्ताक्षर करेगा, परन्तु यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह उसे वापस कर देगा' का भी यही आशय प्रतीत होता है ।

[3] अभिषेध-शक्ति का व्यापक प्रयोग करने वालों में राष्ट्रपति थियोडोर रूज़वेल्ट, टाफ्ट, विल्सन, कूलिज तथा हूवर के नाम उल्लेखनीय हैं । इन्होंने क्रमशः बयालीस, तीस, तैंतीस, बीस और इक्कीस विधेयकों पर इस शक्ति का प्रयोग किया । राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूज़वेल्ट ने तो अपने प्रशासन में छः सौ इकत्तीस विधेयकों पर अभिषेध-शक्ति का प्रयोग किया ।

ऊपर यह उल्लेख किया जा चुका है कि कांग्रेस किसी ऐसे विधेयक को जिस पर राष्ट्रपति ने अभिषेध-शक्ति का प्रयोग किया हो दो-तिहाई बहुमत से दुबारा पारित कर राष्ट्रपति के अभिषेध को रद्द कर सकती है। परन्तु सामान्यतः कांग्रेस ऐसा नहीं करती। ऐसा वह तभी करती है जब उसकी किसी विधेयक में विशेष रूप से रुचि होती है अथवा उस पर ऐसा करने के लिए पर्याप्त दबाव डाला जाता है। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी० रूज़वेल्ट ने जिन विधेयकों पर अभिषेध-शक्ति का प्रयोग किया था उनमें से केवल नौ ही विधि का रूप ले सके। राष्ट्रपति थियोडोर रूज़वेल्ट और टाफ्ट ने जिन विधेयकों पर अभिषेध-शक्ति का प्रयोग किया था उनमें से केवल एक एक ही कांग्रेस द्वारा दो-तिहाई बहुमत से पुनः पारित किये गए। सामान्यतः यदि कांग्रेस के दोनों सदनों में राष्ट्रपति के दल का ही बहुमत होता है तो राष्ट्रपति के अभिषेध को रद्द नहीं किया जाता। परन्तु इसके अपवाद भी हैं। उदाहरणार्थ, सन् १९४३ में, जब कांग्रेस में भी डेमोक्रेटिक दल का बहुमत था, कांग्रेस ने स्मिथ कॉनली हड़ताल विरोधी विधेयक (Smith Connally Anti-strike Bill) पर राष्ट्रपति के अभिषेध की चिंता न कर उसे पुनः दो-तिहाई बहुमत से पारित कर दिया था। जब राष्ट्रपति और कांग्रेस का बहुमत भिन्न दलों के होते हैं तो अभिषेध-शक्ति का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है। कांग्रेस राष्ट्रपति के पास ऐसे विधेयक हस्ताक्षर के लिए भेजती है जिनको अभिषिद्ध करने के लिए राष्ट्रपति अपने को बाध्य अनुभव करता है। प्रो० ब्रॉगन का मत है कि राष्ट्रपति टाफ्ट और हूवर के ऊपर ऐसे विधेयकों की बौछार की गई थी जो कांग्रेस के युक्तियुक्त विधायक विचारों की अपेक्षा डेमोक्रेटिक राजनीतिज्ञों के चतुराई से भरे विचारों को ही अधिक अभिव्यक्त करते थे।[1]

राष्ट्रपति का अभिषेध एक और रूप ले सकता है जिसे अंग्रेजी में 'पॉकेट वीटो' (Pocket Veto) कहते हैं। संविधान में कहा गया है कि यदि राष्ट्रपति विधेयक प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् (रविवारों को छोड़ कर) दस दिन के

---

[1] "The Presidents Taft and Hoover were bombarded with bills that expressed less the considered views of Congress than the tactical views of Democratic politicians."—Brogan, D. W., *An Introduction to American Politics*, p. 283.

अन्दर उसे वापस नहीं करेगा तो वह विधि बन जायगा, परन्तु यदि कांग्रेस का स्थगन विधेयक की वापसी में बाधक होगा तो वह विधि न बनेगा। इस उपबंध का अर्थ यह है कि ऐसे विधेयक जो राष्ट्रपति के सम्मुख कांग्रेस के स्थगन की तिथि के दस से कम दिन पूर्व प्रस्तुत किये जाते हैं उन पर राष्ट्रपति को अभिषेध-शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है। यदि वह उन्हें विधि नहीं बनने देना चाहता तो वह उन्हें केवल अपने पास रख कर ही समाप्त कर सकता है। व्यवहार में राष्ट्रपति के सम्मुख प्रति वर्ष ऐसे अनेक विधेयक आते हैं जिन्हें विधि न बनने देने के लिए उसे अभिषेध-शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। इसका कारण यह है कि कांग्रेस के पास कार्य इतना अधिक रहता है कि सत्र के अन्तिम दिनों में वह जल्दी-जल्दी अनेक विधेयक पारित करके राष्ट्रपति के पास भेज देती है। यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि विधेयक राष्ट्रपति के सम्मुख कब प्रस्तुत किया गया। जब राष्ट्रपति विल्सन योरोप में थे तब जब विधेयक उनके पास पहुँच जाता था तभी वह प्रस्तुत किया गया माना जाता था। इस प्रकार कांग्रेस द्वारा पारित किये जाने के पश्चात् भी किसी विधेयक को राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने में कई दिन लग सकते हैं और इस प्रकार राष्ट्रपति को सरलता से उसका अंत करने का अवसर मिल सकता है। 'पाकेट-वीटो' का महत्व कितना अधिक है यह इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी० रूजवेल्ट उसके द्वारा २६० विधेयकों को अन्त करने में सफल हुए थे।[1] यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक पर प्रत्यक्ष अभिषेध के स्थान पर अभिषेध के अप्रत्यक्ष रूप 'पाकेट-वीटो' का उपयोग कर सकते हैं तो वह उसी को प्रश्रय देते हैं। इसके दो लाभ हैं—प्रथम, राष्ट्रपति को अभिषेध के प्रयोग का कारण नहीं बताना पड़ता, और द्वितीय, ऐसे विधेयक को कांग्रेस पुन: दो-तिहाई बहुमत से पारित कर विधि का रूप नहीं दे सकती।

राष्ट्रपति की अभिषेध-शक्ति का महत्व इस दृष्टि से भी बहुत अधिक है कि कभी-कभी वह केवल इसका प्रयोग करने की धमकी से ही कांग्रेस से अपनी बात मनवा सकता है। विधेयक के पारित होने के पूर्व ही यह घोषणा कर कि

---

[1] Ogg and Ray, *Essentials of American Government*, p. 248.

यदि कांग्रेस उसमें उसके द्वारा बताये संशोधन नहीं कर देती तो वह उस पर अभिषेध-शक्ति का प्रयोग करेगा, राष्ट्रपति कांग्रेस को यह अवसर दे देता है कि वह उसमें ऐसे संशोधन कर ले जिससे वह बिना कठिनाई के विधि का रूप ले सके। इसके अतिरिक्त अभिषेध-शक्ति इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि बहुत से विधेयक इस कारण प्रस्तुत या पारित ही नहीं किये जाते कि राष्ट्रपति निश्चित रूप से उन पर अभिषेध-शक्ति का प्रयोग करेगा।

दलीय नेता के रूप में राष्ट्रपति की शक्तियाँ

अब तक हमने राष्ट्रपति की उन शक्तियों पर विचार किया है जो उसे सांविधानिक उपबंधों, संविधियों या न्यायिक निर्णयों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से प्राप्त हुई हैं। परन्तु राष्ट्रपति द्वारा व्यवहार में प्रयुक्त शक्तियों की सूची यहीं समाप्त नहीं हो जाती। वह न केवल कार्यपालिका का प्रधान होता है, वरन् अपने राजनीतिक दल का प्रधान-नेता भी होता है। अपनी इस स्थिति के कारण भी उसे पर्याप्त प्राधिकार प्राप्त रहता है। इसके अतिरिक्त उसे राष्ट्र का प्रवक्ता तथा नेता होने के नाते भी अनेक शक्तियाँ प्राप्त रहती हैं जिन पर हम यहाँ विचार करेंगे।

राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर होता है और राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित होने वाला व्यक्ति निर्वाचन के पश्चात् भी अपने दल का नेता बना रहता है। निर्वाचन के समय राष्ट्रपति का दल जनता के सम्मुख जो कार्यक्रम प्रस्तुत करता है, जनता की दृष्टि में उसे क्रियान्वित करने का उत्तर-दायित्व राष्ट्रपति पर ही होता है। इस कार्यक्रम को तभी क्रियान्वित किया जा सकता है जब राष्ट्रपति के दल के अन्य नेता तथा कार्यकर्ता उससे सहयोग करें। यदि वे ऐसा नहीं करते तो अगले निर्वाचन में उन्हें इसका फल दल की पराजय के रूप में भोगना पड़ सकता है। इसी कारण सामान्यतः कांग्रेस के दोनों सदनों में राष्ट्रपति के दल के नेता राष्ट्रपति से सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखते हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति के हाथ में हजारों पदों पर नियुक्तियाँ करने की शक्ति होती है। इस शक्ति के कारण भी राष्ट्रपति का अपने दल के अन्य नेताओं पर पर्याप्त प्रभाव रहता है। व्यवहार में राष्ट्रपति का कांग्रेस के विभिन्न स्थानों के लिए प्रत्याशी चुनने में प्रमुख हाथ रहता है। यद्यपि कभी-कभी

कांग्रेस के दोनों सदनों में राष्ट्रपति के दल का बहुमत होने पर भी उसकी बात नहीं मानी जाती और कांग्रेस उसकी इच्छा के प्रतिकूल कार्य करती है पर सामान्यतः ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति की शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है। तब वह अपने प्रस्तावों के कांग्रेस द्वारा अनुमोदित किये जाने की विश्वासपूर्वक आशा कर सकता है। न केवल कांग्रेस के दोनों सदनों के लिए प्रत्याशियों के चुनाव में उसका प्रमुख हाथ रहता है, वरन् राष्ट्रपति पद के अगले निर्वाचन के लिए अपने दल के प्रत्याशी के चुनाव में भी उसका पर्याप्त प्रभाव रहता है। वुडरो विल्सन का मत है कि संविधान-निर्माता राष्ट्रपति को वैधानिक कार्यपालिका तथा राष्ट्र नेता के रूप में देखना चाहते थे, दलीय नेता के रूप में नहीं। परन्तु कुछ ऐसे प्रभावों ने जो शासन की प्रकृति में ही निहित हैं उसे तीनों ही बना दिया है।[१]

राष्ट्र-नेता के रूप में राष्ट्रपति की शक्तियाँ

प्रायः प्रत्येक देश के नागरिकों के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे एक योग्य, उत्साही और साहसी नेता के नेतृत्व को पसंद करते हैं और उसके व्यक्तित्व के सामने सिद्धान्तों को अधिक महत्व नहीं देते। संयुक्त राज्य के निवासियों के बारे में भी यह कथन बहुत बड़ी सीमा तक सत्य है।[२] इसी प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए वुडरो विल्सन ने लिखा था कि संयुक्त राज्य एक नेता की उत्कंठा से कामना करता है।[3] संयुक्त राज्य के विभिन्न शासनांगों में राष्ट्रपति

---

[१] "In the view of the makers of the constitution the President was to be legal executive, perhaps the leader of the nations; certainly not the leader of the party, at any rate while in office. But by operation of forces inherent in the nature of Government he has become all three."—Wilson, W., *Constitutional Government in the U. S.*

[२] "The nation loves initiative, loves courage, likes to be led as indeed does every assembly, every party, every multitude.–"Bryce, *Modern Democracies*, Vol. II. p. 79.

[3] "It craves a single leader."—Wilson, *op. cit.*, p. 68.

ही इस स्थिति में होता है कि वह जनता की इस इच्छा को पूर्ण कर सके। इसी कारण जब राष्ट्रपति-पद पर कोई ऐसा व्यक्ति आसीन होता है जो अपने गुणों से जनता को प्रभावित कर सके तो उसे अपरिमित शक्ति प्राप्त हो जाती है। राष्ट्रपति थियोडोर रूज़वेल्ट, वुडरो विल्सन, तथा फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे और उन्होंने इसका भली भाँति लाभ उठाया। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी० रूज़वेल्ट ने जनमत को अपने पक्ष में कर अपने हाथों में इतनी शक्ति अर्जित कर ली थी कि कुछ लेखकों ने तो उनकी गणना अधिनायकों (Dictators) में करना आरंभ कर दिया था।[1] उनका कांग्रेस पर प्रभाव इतना अधिक था कि शासन-व्यवस्था में कांग्रेस का स्थान गौण हो गया था। सन् १९३६ में पुनर्निर्वाचित होने के पश्चात् उन्होंने प्रायः यह घोषणा की कि जनता ने उनकी योजनाओं का अनुसमर्थन किया है और इस कारण उन्हें पूरा करने का उत्तरदायित्व उन्हीं पर है। जब सर्वोच्च न्यायालय ने उनका मार्ग अवरुद्ध किया तो उन्होंने उसकी तीव्र भर्त्सना की और उसके पुनर्संगठित किये जाने का प्रस्ताव रखा।

वैसे तो लगभग सदा ही राष्ट्रपति जनमत को अपने पक्ष में कर अपनी शक्ति में वृद्धि कर सकता है, परन्तु संकटकालीन परिस्थितियों में विशेष रूप से वह जनता के हृदयों पर राज करने की क्षमता रखता है। आर्थिक संकट हो या युद्ध-जनित संकट, जनता अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिए राष्ट्रपति की ओर निहारती है और यदि राष्ट्रपति में साहसपूर्ण पग उठाने की क्षमता और योग्यता है तो वह उसे सर्वाधिकार समर्पित करने को प्रस्तुत रहती है।

उपराष्ट्रपति

राष्ट्रपति की निर्वाचन-प्रणाली पर विचार करते समय उपराष्ट्रपति की निर्वाचन प्रणाली का भी उल्लेख किया गया है। इस कारण यहाँ उसे दोहराना अनावश्यक है। यहाँ केवल संक्षेप में उसके कृत्यों तथा स्थिति का उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा। उसका केवल एक ही कार्य है—सिनेट के सत्रों की अध्यक्षता करना। वह सिनेट का पदेन-अध्यक्ष (Exofficio President) होता है।

[1] उदाहरणार्थ, देखिए : Webbs, *Soviet Communism*, Vol. I., p. 536.

सिनेट की अध्यक्षता करने के अतिरिक्त यदि उसका अन्य कोई कार्य गिनाया जा सकता है तो वह है राष्ट्रपति की मृत्यु या अस्वस्थता की प्रतीक्षा करना, जब कि वह उसका पद ले सके। उपराष्ट्रपति को बीस हजार डालर वार्षिक वेतन तथा भत्ते आदि मिलते हैं।

उपराष्ट्र-पति पद का जो भी महत्व है वह इसी कारण है कि वह किसी भी समय राष्ट्रपति की मृत्यु, पदच्युति अथवा कार्यभार सँभालने के अयोग्य हो जाने पर राष्ट्रपति हो सकता है। अब तक न तो किसी राष्ट्रपति को महाभियोग द्वारा पदच्युत ही किया गया है और न कोई राष्ट्रपति अपने कार्यकाल में कार्यभार सँभालने के अयोग्य ही हुआ है। परन्तु अब तक सात बार राष्ट्रपति की मृत्यु के कारण उपराष्ट्रपति को राष्ट्रपति का कार्यभार सँभालना पड़ा है।[1] परन्तु जैसा कि इसके पूर्व उल्लेख किया जा चुका है, राजनीतिक दलों के राष्ट्रीय सम्मेलनों में उपराष्ट्रपति-पद के नामांकन को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। इसका परिणाम संयुक्त राज्य के लिए अत्यन्त बुरा हो सकता है। यदि कोई अयोग्य उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति की मृत्यु के कारण उसके पद पर आसीन हो जाता है तो वह देश पर संकट ला सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि न केवल उपराष्ट्रपति पद के लिए योग्य व्यक्तियों को ही चुना जाय, वरन् इस पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति को राष्ट्रपति के कार्य से इस प्रकार परिचय कराया जाय कि वह किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति का कार्य कुशलतापूर्वक कर सके। इसी कारण अनेक लेखकों ने यह सुझाव दिया है कि राष्ट्रपति के कार्य का कुछ भाग उपराष्ट्रपति को सौंप दिया जाना चाहिए।

राष्ट्रपति की सामान्य स्थिति तथा अन्य कार्यपालिका-प्रधानों से तुलना

संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की शक्तियों पर विचार करने से हमें उसके पद की महत्वपूर्ण स्थिति का स्पष्ट बोध हो जाता है। परन्तु राष्ट्रपति-पद का अध्ययन समाप्त करने के पूर्व यह आवश्यक है कि कुछ शब्द संयुक्त राज्य की शासन-

---

[1] उपराष्ट्रपति से राष्ट्रपति होने वालों में हैरी ट्रूमैन का नाम उल्लेखनीय है। सन् १९४५ में राष्ट्रपति रूजवैल्ट की मृत्यु हो जाने से उपराष्ट्रपति ट्रूमैन राष्ट्रपति हो गए।

प्रणाली में राष्ट्रपति की सामान्य स्थिति तथा अन्य देशों के कार्यपालिका-प्रधानों से उसकी तुलनात्मक स्थिति के बारे में भी कहे जायँ।

राष्ट्रपति-पद के सम्बन्ध में एक बात जिसे ध्यान रखना अत्यावश्यक है वह यह है कि समय-समय पर राष्ट्रपति पद की महत्ता घटती-बढ़ती रहती है। वुड्रो विल्सन के शब्दों में "राष्ट्रपति का पद किसी समय कुछ रहा है और किसी समय कुछ। राष्ट्रपति के व्यक्तित्व और समकालीन परिस्थितियों में पद की विशेषता बदलती रहती है।"[१] इस कथन की पुष्टि संयुक्त राज्य के सांविधानिक इतिहास पर दृष्टि डालने से होती है। संविधान-निर्माण के समय से राष्ट्रपति जैक्सन के काल तक सामान्यतः राष्ट्रपतिपद के लिए ऐसे व्यक्ति निर्वाचित किए गए जिन्होंने कांग्रेस का नेतृत्व किया। उसके पश्चात् राष्ट्रपति का प्रभाव अपेक्षाकृत कम हो गया। गृह-युद्ध के काल में राष्ट्रपति लिंकन ने पुनः असामान्य शक्तियों का प्रयोग कर यह दिखा दिया कि राष्ट्रपति-पद कितने महत्व का पद हो सकता है। परन्तु लिंकन के पश्चात् फिर पर्याप्त काल तक न तो कोई विशेष प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति ही राष्ट्रपति-पद पर आसीन हुआ और न ऐसी परिस्थितियाँ ही उत्पन्न हुईं जिनमें राष्ट्रपति-पद का प्रभाव बढ़ता। वस्तुतः इस काल में राष्ट्रपति-पद पर आसीन होने वाले व्यक्तियों ने कांग्रेस का नेतृत्व इस सीमा तक स्वीकार कर लिया कि विल्सन को लिखना पड़ा कि राष्ट्रपति की शक्तियों और प्रतिष्ठा में भारी कमी हो गई है।[२] जिस समय विल्सन ने उपरोक्त मत व्यक्त किया (सन् १८८४) लगभग उसी समय लार्ड ब्राइस ने अपने पर्यवेक्षण के आधार पर यह मत व्यक्त किया कि प्रारम्भिक राष्ट्रपतियों के पश्चात् कुछ महत्व-पूर्ण अपवादों को छोड़ कर सामान्यतः राष्ट्रपति पद पर महान् तथा प्रभावशाली व्यक्ति आसीन नहीं हुए।[3] परन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में थियोडोर

---

[१] Woodrow Wilson, *Constitutional Government in the United States*, p. 57.

[२] "That high office has fallen from its first estate of dignity because its power has waned; and its power has waned because the power of Congress became predominant."—Wilson, *Congressional Government: A Study in American Politics*, p. 43.

[३] Bryce, James, *The American Commonwealth*, Vol. I., p. 77.

रूजवेल्ट, उसके दूसरे दशक में वुड्रो विल्सन तथा चौथे और पाँचवें दशक में फ्रैंकलिन डिलेनो रूजवेल्ट तथा हैरी ट्रूमैन ने राष्ट्रपति-पद को न केवल पुनः उसका पूर्व गौरव और शक्तियाँ प्राप्त कराईं वरन् उनमें महत्वपूर्ण वृद्धि की। राष्ट्रपति रूजवेल्ट के काल में तो राष्ट्रपति की गणना अधिनायकों में की जाने लगी थी।[१] इससे सिद्ध होता है कि राष्ट्रपति पद का महत्व बहुत कुछ उस पर आसीन व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा तत्कालीन परिस्थितियों पर निर्भर करता है। वस्तुतः महायुद्ध, आर्थिक संकट आदि के काल में राष्ट्रपति की शक्तियों में न केवल अस्थायी रूप से ही वृद्धि हुई वरन् उस वृद्धि का स्थायी प्रभाव पड़ा है।

राष्ट्रपति-पद पर विचार करते समय यह तथ्य भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि संयुक्त राज्य में कार्यपालिका का नामधारी प्रधान तथा वास्तविक प्रधान दो भिन्न व्यक्ति नहीं होते। राष्ट्रपति ही राज्य और शासन दोनों का प्रधान होता है। राज्य का प्रधान होने के नाते उसे लगभग वैसा ही सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है जैसी कि इंग्लैंड में नरेश को अथवा भारत या फ्रांस में राष्ट्रपति को। जनता उसके प्रति श्रद्धा रखती है, जिससे उसके प्रभाव में वृद्धि होती है। राष्ट्रपति जनता का प्रत्यक्ष रूप से (यद्यपि वैधानिक दृष्टि से अप्रत्यक्ष रूप से) निर्वाचित नेता होता है, यह तथ्य भी उसकी शक्ति और प्रभाव में वृद्धि करता है। उसे कांग्रेस के समक्ष झुकने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती, क्योंकि वह भी जनता के समर्थन से ही अपने पद पर आसीन होता है। राष्ट्रपति-पद को इतना अधिक शक्तिशाली बनाने वाला एक अन्य तथ्य यह है कि उसका कार्य-काल निश्चित होता है। मृत्यु अथवा महाभियोग के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से उसे पदच्युत नहीं किया जा सकता। प्रो० ब्रॉगन के शब्दों में अमेरिकी राष्ट्रपति (अपने कार्य-काल के लिए) संसार के अंतिम एकतंत्री-शासकों (monarchs) में है, जिसके प्राधिकारों में कमी नहीं की जा सकती पर वृद्धि हो

---

[१] प्रो० लास्की ने भी यह मत व्यक्त किया है कि विश्व-युद्धों के काल में वुड्रो विल्सन तथा फ्रैंकलिन रूजवेल्ट की स्थिति को 'सहमति-प्राप्त अधिनायक' (virtually dictators by consent) कहना असंगत न होगा। (*Aspects of American Govt.* p. 9)

सकती है ।[1] कांग्रेस उससे कितनी ही असंतुष्ट क्यों न हो पर महाभियोग के अतिरिक्त अन्य किसी प्रक्रिया से वह उसे पदच्युत नहीं कर सकती । कांग्रेस ने राष्ट्रपति जॉनसन की नीति से असंतुष्ट होने के कारण उन्हें महाभियोग के द्वारा पदच्युत करने का प्रयास किया था पर वह उसमें सफल न हुई । अन्य किसी राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाही प्रारम्भ ही नहीं की गई ।

परन्तु राष्ट्रपति को शक्तिशाली बनाने वाले उपर्युक्त तत्वों के साथ ही उन बातों का उल्लेख कर देना भी आवश्यक है जो उसे कांग्रेस के दोनों सदनों के नेताओं से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने, उनका परामर्श लेने और उनकी बात मानने को विवश करती हैं । राष्ट्रपति की अनेक महत्वपूर्ण शक्तियाँ ऐसी हैं जिन्हें वह सिनेट के साथ मिल कर ही प्रयुक्त कर सकता है । अतएव राष्ट्रपति को सदैव सिनेट की सहमति प्राप्त करने का ध्यान रखना पड़ता है । राष्ट्रपति को अपनी नीति को कार्यान्वित करने के लिए धन की आवश्यकता होती है और उसकी स्वीकृति कांग्रेस ही देती है । राष्ट्रपति किसी भी प्रकार कांग्रेस को आवश्यक धन की स्वीकृति देने के लिए विवश नहीं कर सकता । कांग्रेस से मतभेद होने पर वह कांग्रेस या उसके किसी सदन को विघटित नहीं कर सकता । राष्ट्रपति कांग्रेस को कोई विधेयक पारित करने से रोक नहीं सकता । यह सत्य है कि वह कांग्रेस द्वारा पारित विधेयक पर अभिषेध-शक्ति का प्रयोग कर सकता है, पर कांग्रेस दो-तिहाई बहुमत से उसे पुनः पारित कर उसके अभिषेध को रद्द कर सकती है । स्थिति यह है कि वह अपने किसी प्रस्ताव या विधेयक पर कांग्रेस में अपने दल के सदस्यों का समर्थन पाने के बारे में भी आश्वस्त नहीं रह सकता । अनेक अवसरों पर प्रतिनिधि सभा या सिनेट के सदस्य अपने ही दल के राष्ट्रपति के द्वारा प्रस्तावित या समर्थित प्रस्तावों के विपक्ष में मत देते हैं । इन्हीं सब कारणों से किसी विशेष काल में राष्ट्रपति-पद की क्या स्थिति होगी, यह पहले से नहीं कहा जा सकता । परन्तु इतना निश्चित है कि राष्ट्रपति की कभी उपेक्षा नहीं की

---

[1] "The American President is one of the last monarchs ruling, for his term, by an authority with prerogatives of its own which cannot be diminished but may be increased."—Brogan, D. W., *American Political System*, p. 123.

जा सकती और न वह कभी निष्क्रिय रह सकता है। राष्ट्रपति-पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति को व्यक्ति को निश्चय ही महत्त्वपूर्ण निर्णय करने होंगे। प्रो० ब्रॉगन के शब्दों में वह सदैव 'ड्राइवर' या 'ब्रेक' ही होता है, वह कभी भी 'स्पेर व्हील्स' नहीं होता।[१] यदि राष्ट्रपति प्रतिभासंपन्न, योग्य तथा लोकप्रिय व्यक्ति है तो वह निश्चय ही चालक के समान राष्ट्र का नेतृत्व कर सकता है। अपनी विशद शक्तियों के कारण वह एक अवरोध भी सिद्ध हो सकता है। ऐसा मुख्यतः तब होता है जब राष्ट्रपति और कांग्रेस का बहुमत भिन्न दल के हों। परन्तु शासन का अन्य कोई भी अंग राष्ट्रपति के कार्य स्वयं नहीं कर सकता।

राष्ट्रपति-पद की तुलनात्मक स्थिति के संबंध में प्रो० लास्की का निम्न मत उद्धृत कर देना ही पर्याप्त होगा: "संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति एक राजा से कम और अधिक है, वह एक प्रधान मंत्री से भी कम और अधिक है। उसके पद का जितनी ही अधिक सावधानी से अध्ययन किया जाय उतना ही उसकी अनुपमता का बोध होता है।"[२] वस्तुतः अमेरिकी राष्ट्रपति का पद अनुपम और अतुलनीय है। वह एक राजा से कम इस कारण होता है कि वह विजयी दल का नेता होता है, और पराजित दल के व्यक्ति कभी-कभी उसे सहन मात्र ही करते हैं। उसके प्रति श्रद्धा और सम्मान का भाव नहीं रखते। इसके विपरीत ब्रिटिश नरेश की भाँति राजा निर्दल व्यक्ति होने के कारण देश की जनता के सभी वर्गों, सभी दलों के अनुयायियों का सम्मान प्राप्त करने में सफल हो सकता है। परन्तु हमें यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि अमेरिकी राष्ट्रपति जनता द्वारा निर्वाचित व्यक्ति होता है। यदि वह योग्य और प्रतिभासंपन्न व्यक्ति हो तो वह जनता के सभी वर्गों और भागों का उस सीमा तक विश्वास प्राप्त कर सकता है जिस सीमा तक एक वंशानुगत राजा या सम्राट् कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

---

[१] "The President is always a driver or a brake, he is never a spare wheel."—Brogan, D. W., *op. cit.*, p. 135.

[२] "The President of the U. S. A. is both more and less than a king, he is also both more and less than a Prime Minister. The more carefully his office, is studied the more does its unique character appear."—Laski ,H. J. *American Presidency*.

अमेरिकी राष्ट्रपति के एक प्रधान मंत्री से एक ही साथ कम और अधिक होने का कारण अमेरिकी संविधान का शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त है। एक संसदीय शासन वाले राज्य के प्रधान मंत्री को सदा विधानमंडल के बहुमत दल या बहुमत-प्राप्त दलों के समूह का समर्थन प्राप्त होता है, और इस कारण वह विधानमंडल से सरलतापूर्वक कोई भी विधेयक या प्रस्ताव पारित करा सकता है। उसे अपनी नीति को कार्यान्वित करने के लिए धन का अनुदान प्राप्त करने में भी कठिनाई नहीं होती। यदि विधानमंडल उसकी राय न माने, उसके द्वारा प्रस्तावित या समर्थित किसी प्रस्ताव को पारित न करे अथवा धन का अनुदान देने से इन्कार करे तो वह उसे अथवा उसके लोकप्रिय सदन को विघटित करा सकता है। अधिकतर तो विघटन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती क्योंकि विघटन की धमकी ही उसकी बात मनवाने को पर्याप्त होती है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की स्थिति ऐसी नहीं होती। न तो उसे कांग्रेस के बहुमत का समर्थन प्राप्त होना आवश्यक है, न वह कांग्रेस में अपने दल के सदस्यों को अपने द्वारा प्रस्तावित विधेयक के पक्ष में मत देने के लिए बाध्य कर सकता है और न कांग्रेस का विघटन कर सकता है। इसी कारण उसे प्रधान मंत्री से कम कहा जा सकता है। परन्तु वह इस दृष्टि से संसदीय शासन वाले देशों के प्रधान मंत्री से अधिक भी होता है कि उसकी शक्तियाँ संविधान में उल्लिखित हैं जिनमें कांग्रेस कमी नहीं कर सकती, उसका कार्यकाल निश्चित है जिसके पूर्व मृत्यु या महाभियोग के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से उसे पदच्युत नहीं किया जा सकता तथा वह न केवल शासन का ही प्रमुख होता है वरन् राज्य का भी प्रमुख होता है। संसदीय शासन प्रणाली में तो किसी भी क्षण विधानमंडल प्रधान मंत्री तथा उसके मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर सकता है, उसे अपनी नीति में परिवर्तन के लिए विवश कर सकता है अथवा उसे किसी विषय पर सूचना देने के लिए बाध्य कर सकता है। अपने मंत्रिमंडल पर भी जिस सीमा तक अमेरिकी राष्ट्रपति का नियंत्रण रहता है उतना ब्रिटिश प्रधान मंत्री का अपने मंत्रिमंडल पर नहीं रहता। ब्रिटिश प्रधान मंत्री केवल 'समकक्षियों में प्रथम' चाहे न हो पर वह अमेरिकी राष्ट्रपति के समान अपने मंत्रिमंडल का स्वामी भी नहीं होता।

अध्याय ९

राष्ट्रपति का मंत्रिमंडल

प्रत्येक देश में कार्यपालिका के प्रधान की सहायता करने तथा उसे मंत्रणा देने के लिए एक निकाय (body) अथवा परिषद् होती है। ब्रिटेन, भारत, फ्रांस आदि देशों में इस निकाय को मंत्रिमंडल या मंत्रि-परिषद् कहते हैं। संयुक्त राज्य में भी प्रशासन-कार्य में राष्ट्रपति की सहायता करने तथा उसे मंत्रणा देने के लिए एक निकाय है जिसे सामान्यतः 'मंत्रिमंडल' (Cabinet) अथवा 'राष्ट्रपति का मंत्रिमंडल' कह कर सम्बोधित किया जाता है। यह मंत्रिमंडल संसदीय शासन-प्रणाली वाले देशों के मंत्रिमंडल से भिन्न है क्योंकि जहाँ संसदीय शासन-प्रणाली का आधार-स्तम्भ मंत्रिमंडल ही होता है वहाँ अमेरिकी शासन-प्रणाली मे मंत्रिमंडल का अधिक महत्व नहीं है। परन्तु इंग्लैंड और संयुक्त राज्य के मंत्रिमंडलों में उपर्युक्त अन्तर के होते हुए भी एक महत्वपूर्ण साम्य है—दोनों ही का आधार सांविधानिक उपबंध न होकर परम्परा या प्रथा है। संयुक्त राज्य के संविधान में कहीं भी मंत्रिमंडल जैसे किसी निकाय का उल्लेख नहीं है। उसमें केवल एक स्थान पर प्रसंगवश 'कार्यपालिका-विभागों के प्रधान अधिकारियों'[1] का उल्लेख किया गया है। मंत्रिमंडल इन्हीं कार्यपालिका विभागों के प्रधान अधिकारियों का संयुक्त नाम है।

मंत्रिमंडल का प्रादुर्भाव तथा विकास—संविधान-निर्माण के पश्चात् सन् १७८९ में कांग्रेस ने अपने प्रथम सत्र में तीन कार्यपालिका विभागों (Executive Departments) की स्थापना की। ये विभाग थे—अर्थ, युद्ध और राज्य-विभाग। इसी वर्ष पोस्टमास्टर जनरल और महान्यायवादी के पदों की सृष्टि हुई। बाद में इनके कार्यालयों को भी विभाग मान लिया गया।

---

[1] अनुच्छेद २ धारा (२)

चार्ल्स बियर्ड का मत है कि इन विभागों की स्थापना करते समय कांग्रेस ने इस संभावना को सोचा ही नहीं था कि इनके प्रधान अधिकारी राष्ट्रपति की परिषद् के रूप में कार्य करेंगे। वस्तुतः जिस विधि के द्वारा अर्थ विभाग (Treasury Department) की स्थापना की गई थी उसकी भाषा से यह इच्छा झलकती है कि इस विभाग के सचिव पर कांग्रेस अपना पर्याप्त नियंत्रण रखना चाहती थी।[1] परन्तु संयुक्त राज्य के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने इन विभागों के प्रमुखों को अपना वैयक्तिक परामर्शदाता ही माना। इन विभागों के प्रमुखों को एक परिषद् का रूप देने का श्रेय वाशिंगटन को ही मिलना चाहिए। कुछ ही वर्षों में इन विभागों के प्रमुखों को सम्मिलित रूप से मंत्रिमंडल के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। बाद में कांग्रेस के अन्य विभागों की स्थापना की। सन् १७९८ में जलसेना विभाग, सन् १८४९ में गृह विभाग, तथा सन् १८८९ में कृषि विभाग की स्थापना हुई। सन् १९१३ में वाणिज्य विभाग तथा सन् १९१३ में श्रम विभाग की स्थापना हो जाने पर इन विभागों की संख्या दस हो गई। तब से अब तक इनकी संख्या में कोई वृद्धि नहीं हुई है।[2]

सन् १९४७ में कांग्रेस ने एक विधि पारित कर युद्ध और जलसेना विभाग के स्थान पर एक नए विभाग की सृष्टि की। इस विभाग का नाम है—राष्ट्रीय सेना विभाग (National Military Establishment)। देश की रक्षा से सम्बद्ध समस्त अभिकरण (agencies) इस विभाग के अधीन हैं।

मंत्रिमंडल की वर्तमान सदस्यता—आजकल मंत्रिमंडल में निम्न विभागों के प्रधान (Secretaries) सम्मिलित रहते हैं :

१. राज्य विभाग
२. अर्थ विभाग
३. रक्षा विभाग
४. न्याय विभाग

---

[1] Beard, Charles, *American Government and Politics*, p. 208.

[2] मन्त्रिमण्डल के प्रारम्भिक विकास पर विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए, earned, H. B., *The President's Cabinet.*

५. डाक विभाग
६. कृषि विभाग
७. गृह विभाग
८. वाणिज्य विभाग, तथा
९. श्रम विभाग

सन् १९३६ में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने यह प्रयत्न किया था कि दो अन्य विभागों की स्थापना की जाय। इस सम्बन्ध में जो विधेयक कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत किया गया था वह पारित न हो सका। तब सन् १९३९ में राष्ट्रपति ने तीन अभिकरणों (agencies) की स्थापना की। ये अभिकरण थे—सङ्घीय सुरक्षा अभिकरण (Federal Security Agency), सङ्घीय कर्मशाला अधिकरण (Federal Works Agency), तथा सङ्घीय ऋण अभिकरण (Federal Loan Agency)। सन् १९४२ में राष्ट्रीय गृह-निर्माण अभिकरण (National Housing Agency) की स्थापना की गई। इन अभिकरणों के प्रधान मंत्रिमंडलों की बैठकों में भाग लेते हैं, यद्यपि वे मंत्रिमंडल के सदस्य नहीं माने जाते। अधिकतर उपराष्ट्रपति भी मंत्रिमंडल की बैठकों में उपस्थित रहते रहे हैं। मंत्रिमंडल की सदस्यता के सम्बन्ध में कोई औपचारिक नियम न होने के कारण यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि उपराष्ट्रपति मंत्रिमंडल का सदस्य होता है या नहीं।

मन्त्रिमंडल के सदस्यों की नियुक्ति, कार्यकाल, तथा पदच्युति—विभिन्न कार्यपालिका विभागों के प्रधानों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सिनेट की सहमति से की जाती है। राष्ट्रपति के नामांकनों पर प्रायः सदा ही सिनेट की सहमति प्राप्त हो जाती है। इस शताब्दी में केवल एक बार सिनेट ने किसी कार्यपालिका-विभाग के प्रधान के नामांकन पर स्वीकृति देने से इन्कार किया है।[1] वस्तुतः राष्ट्रपति को अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों के चुनाव में पूर्णतः स्वतन्त्र होना भी चाहिए, क्योंकि वे पूर्णरूप से उसी के प्रति उत्तरदायी होते हैं। राष्ट्रपति

[1] ऐसा सन् १९२५ में हुआ जब सिनेट ने राष्ट्रपति कूलिज द्वारा चार्ल्स वारेन (Charles B. Warren) के महान्यायवादी पद के लिए नामांकन का अनुसमर्थन नहीं किया।

पदग्रहण करने के पश्चात् ही अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों के नाम घोषित करता है।

कार्यपालिका विभागों के प्रधानों का कोई निश्चित कार्यकाल नहीं होता। सामान्यतः वे राष्ट्रपति का कार्यकाल समाप्त होने तक अपने पद पर कार्य करते रहते हैं, परन्तु उन्हें किसी भी समय राष्ट्रपति के द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। वे किसी भी समय पदत्याग भी कर सकते हैं। साधारणतया यदि मंत्रि-मंडल के किसी सदस्य का राष्ट्रपति से किसी प्रश्न पर तीव्र मतभेद होता है तो वह त्यागपत्र प्रस्तुत कर अपने पद से अलग हो जाता है।

मंत्रिमंडल के सदस्यों के चुनाव को प्रभावित करने वाले तत्त्व—यद्यपि राष्ट्रपति द्वारा मंत्रिमंडल के सदस्यों के चुनाव पर सिनेट की सहमति के अतिरिक्त अन्य कोई वैधानिक निर्बन्ध नहीं हैं, परन्तु व्यवहार में राष्ट्रपति को उनका चुनाव करते समय अनेक बातों को ध्यान में रखना पड़ता है। मनरो का मत है कि संयुक्त राज्य के मंत्रिमंडल के निर्माण में दलवाद, भूगोल, अनु-रंजन, समझौता, कृतज्ञता, राजनीतिक व्यूह-रचना, प्रशासनीय कुशलता तथा वैयक्तिक मैत्री ये सभी तत्व भिन्न-भिन्न मात्रा में अपना प्रभाव दिखाते हैं।[१] मंत्रिमंडल के कार्यों पर विचार आरम्भ करने के पूर्व यहाँ हम संक्षेप में इस बात पर विचार करेंगे कि ये तत्व मंत्रिमंडल के सदस्यों के चुनाव को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

सामान्यतः राष्ट्रपति अपने दल के लोगों को ही मंत्रिमंडल के सदस्य के रूप में नियुक्त करता है। संयुक्त राज्य के प्रथम राष्ट्रपति ने अपने उत्कट देशप्रेम के कारण दलीय विचारों को तिलांजलि दे अपने मंत्रिमंडल में योग्यता के आधार पर नियुक्तियाँ की थीं। उन्होंने टॉमस जैफरसन और अलैक्जेंडर हैमिल्टन जैसे विरोधी राजनीतिक विचारों वाले लोगों को अपने मंत्रि-

---

१ "..the Cabinet of the United States is likely to be a variegated group in the making of which partyism, geography, conciliation, compromise, gratitude, political strategy, administrative skill, and personal intimacy all play a varying share."—Munro, W.B. *op.cit.*, p. 216.

मंडल में स्थान दिया, और प्रथम को राज्य सचिव और द्वितीय को कोष सचिव बनाया। दोनों ही अपने पदों के लिए पूर्णतः उपयुक्त थे, परन्तु उनमें विचारों की इतनी भिन्नता थी कि वे किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर एक ढंग से सोच ही नहीं सकते थे। इसके कारण वाशिंगटन को बड़ी कठिनाई होती थी। इसी कारण उसी समय से यह प्रथा सी बन गई है कि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल के सदस्यों को अपने दल में से ही चुनता है। इस प्रथा के कुछ अपवाद भी हैं। उदाहरणार्थ राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट और टाफ्ट दोनों के मन्त्रिमण्डलों में युद्ध-सचिव डेमोक्रेट दल के सदस्य थे। अन्य कुछ राष्ट्रपतियों ने भी अपने दल के अलावा दूसरे दल के एकाध व्यक्ति को मन्त्रिमण्डल में स्थान दिया था। इन राष्ट्रपतियों में फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने एक नहीं दो-दो रिपब्लिकन दलीय व्यक्तियों को अपने मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित किया था। परन्तु ये उदाहरण अपवाद मात्र ही हैं।

अपने दल के लोगों में से भी किन्हें मंत्रिमंडल में स्थान दिया जाय यह निश्चित करना राष्ट्रपति के लिए सरल नहीं होता। उसे यह ध्यान रखना पड़ता है कि दल के उन व्यक्तियों को जिन्होंने चुनाव आंदोलन के समय उसे महत्वपूर्ण सहायता पहुँचाई थी उनके कार्य का कुछ प्रतिफल मिले। इसी कारण उनमें से कुछ प्रमुख लोगों को मंत्रिमण्डल में ले लिया जाता है। कभी-कभी अपने ही दल के किन्हीं असंतुष्ट लोगों को संतुष्ट करने के लिए भी उनके एकाध नेता को मंत्रिमण्डल में स्थान दिया जाता हैं।[1] राष्ट्रपति प्रायः अपने एकाध अंतरंग मित्र को भी किसी कार्यपालिका विभाग का प्रधान बना देते हैं और इस प्रकार उसे अनुगृहीत करते हैं। हूवर, हार्डिंज, कूलिज, फ्रैंकलिन रूजवेल्ट आदि अनेक राष्ट्रपतियों ने ऐसा ही किया। इन बातों के अतिरिक्त नियुक्ति करते समय प्रायः यह भी ध्यान रखा जाता है कि जिस पद पर किसी व्यक्ति को नियुक्त किया जा रहा है वह उसके लिए उपयुक्त भी है या नहीं। जब राष्ट्रपति ने व्यापार सचिव के पद पर हैनरी हॉपकिंस (Henry Hopkins) को नियुक्त किया था तो उन्होंने इस पुष्ट परिपाटी को तोड़ा था कि इस पद पर ऐसे ही व्यक्ति नियुक्त हों जिन्हें

---

[1] वुड्रो विल्सन द्वारा विलियम जेनिंग्स ब्रियां (Wiliam J. Bryan) को मंत्रिमंडल में लिए जाने का यही कारण था। (Harold Zink, *op. cit.*, p. 292.)

व्यापारिक मामलों का पर्याप्त अनुभव हो। इसके लिए उनकी आलोचना भी हुई थी। इसी प्रकार श्रम-सचिव के पद पर फ्रैंसिस परकिंस (Frances Perkins) को नियुक्त कर राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक पुष्ट परम्परा को तोड़ा था। महान्यायवादी (Attorney General) के पद पर तो सदा ही ऐसे व्यक्ति नियुक्त किये गये हैं जो वकील थे। अन्य विभागों के प्रधान-पद पर नियुक्ति करते समय भी अनुभव तथा योग्यता को ध्यान में रखा जाता है। परन्तु इसका यह आशय नहीं समझना चाहिए कि प्रत्येक विभाग का प्रधान अपने विषय का ज्ञाता और अनुभवी होता है। यदि इस सिद्धान्त को माना जाय तब तो प्रतिरक्षा-सचिव के पद के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति स्थल और जलसेना के जनरल और एडमिरल होंगे—जो कि कभी उस पद पर नियुक्त नहीं किये जाते। मंत्रिमण्डल का कार्य राष्ट्रपति को परामर्श देना है और यह राष्ट्रपति ही निर्णय करता है कि वह किसे अपना परामर्शदाता बनायेगा।

मंत्रिमण्डल के सदस्यों की नियुक्ति को प्रभावित करने वाले एक अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व का भी यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक है। यह तत्त्व है भूगोल। राष्ट्रपति को यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसके मंत्रिमण्डल में देश के प्रायः सभी भागों के लोग हों। यदि ऐसा न हो तो जिन भागों से मंत्रिमण्डल का कोई सदस्य नहीं बनाया जायगा उस भाग के लोग निश्चय ही असंतुष्ट हो जायँगे। इस बात को ध्यान में रखना इसलिए और भी आवश्यक हो जाता है कि अधिकांश राष्ट्रपति पुनर्निर्वाचन के लिए खड़े होते हैं। यद्यपि कुछ राष्ट्रपतियों ने इस तत्त्व की एक बड़ी सीमा तक अवहेलना की है, परन्तु इसे पूर्णतः कभी नहीं भुलाया जा सकता। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने संयुक्त राज्य के पश्चिमी भाग से केवल दो सदस्य लिए थे, परन्तु राष्ट्रपति ट्रूमैन ने पूर्वी भागों के सदस्य कम कर पश्चिमी भागों के लोगों को अनेक स्थान दिये। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि वैधानिक दृष्टि से राष्ट्रपति अपने मंत्रिमण्डल के सदस्यों को चुनने में पूर्णतः स्वतन्त्र है परन्तु यह स्वतन्त्रता वास्तविकता में बहुत सीमित है।

मंत्रिमंडल के सदस्यों का वेतन, भत्ते आदि—मंत्रिमण्डल के प्रत्येक सदस्य को पन्द्रह हजार डालर वार्षिक वेतन मिलता है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह वेतन उन्हें मंत्रिमण्डल के सदस्य होने के नाते नहीं, वरन्

एक कार्यपालिका विभाग के प्रधान होने के नाते मिलता है। इस वेतन के अतिरिक्त उन्हें आधिकारिक कार्यों के लिए यात्रा करने पर भत्ता मिलता है। उन्हें सुसज्जित कार्यालय तथा उत्तम मोटरगाड़ियाँ मिलती हैं तथा अनेक कर्मचारी आदि उपलब्ध रहते हैं। अन्य अनेक देशों की भाँति संयुक्त राज्य में मंत्रिमण्डल के सदस्यों को निवास-स्थान नहीं दिये जाते और इस कारण उनके वेतन का एक बड़ा भाग और कभी-कभी उनका पूरा वेतन उपयुक्त निवास-स्थान का किराया चुकाने में ही व्यय हो जाता है। प्रो० जिंक के अनुसार मंत्रिमण्डल के अधिकांश सदस्यों को, यदि उनके पर्याप्त वैयक्तिक साधन नहीं होते तो, अपना खर्चा चलाने में कठिनाई होती है।[1]

मंत्रिमंडल की बैठकें—आजकल सामान्यतः मंत्रिमण्डल की सप्ताह में एक बार, शुक्रवार को, बैठक होती है। सदा से ही मंत्रिमण्डल की सप्ताह में एक बैठक होती रही हो ऐसी बात नहीं है। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के शासन-काल के आरम्भिक वर्षों तक मंत्रिमण्डल की सप्ताह में दो बैठकें होती थीं। युद्ध काल में अथवा अन्य असाधारण परिस्थितियों में मंत्रिमण्डल की सप्ताह में अनेक बैठकें होती हैं। मंत्रिमण्डल की बैठक आमंत्रित करना राष्ट्रपति का अनन्य अधिकार है। राष्ट्रपति विल्सन के कार्यकाल में उनकी अस्वस्थता के समय राज्य-सचिव लानसिंग (Lansing) ने मंत्रिमण्डल की बैठक बुलाई थी। इसके लिए उन्हें राष्ट्रपति को उत्तर देना पड़ा। यदि किसी विभाग का सचिव (Secretary) राजधानी में उपस्थित न हो तो उस विभाग के सहायक सचिव को मंत्रिमण्डल की बैठक में बुलाया जा सकता है।

बैठक के समय कौन सचिव किस स्थान पर बैठेगा यह पहले से निश्चित रहता है। राष्ट्रपति एक अष्टभुजी मेज़ के बीच में स्थान ग्रहण करता है। उसके दाईं ओर कोष-सचिव तथा बाईं ओर राज्य-सचिव के बैठने का स्थान होता है। अन्य समस्त सचिव ज्येष्ठता (seniority) के अनुसार मेज़ के चारों ओर बैठते हैं। उपराष्ट्रपति, यदि वह बैठक में उपस्थित होता है, राष्ट्रपति के ठीक सामने बैठता है।

---

[1] Zink, *op. cit.*, p. 296.

मंत्रिमंडल की बैठकों में बैठने के प्रबंध में जितनी औपचारिकता होती है उतनी ही उसकी कार्यवाही में अनौपचारिकता रहती है। न तो सदस्यों को बैठकों के कार्यक्रम आदि की सूचना दी जाती है, न बैठक में वाद-विवाद के किन्हीं नियमों का अनुसरण किया जाता है, और न उसकी कार्यवाही लेखबद्ध की जाती है। यदि राष्ट्रपति चाहे तो वह अपने वैयक्तिक सचिव से कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण तैयार करा सकता है। सामान्यतः मंत्रिमंडल की बैठकों में मतदान नहीं कराया जाता। इसका कारण यही है कि अकेले राष्ट्रपति का मत समस्त सदस्यों के मत से अधिक महत्व रखता है। बैठकों की कार्यवाही पूर्णतः गोपनीय रखी जाती है और राष्ट्रपति के अतिरिक्त अन्य कोई उसे प्रकाश में नहीं ला सकता। राष्ट्रपति भी यदि मंत्रिमण्डल के किसी निर्णय को प्रकाश में लाता है तो उसे अपने निर्णय के रूप में, मंत्रिमण्डल के निर्णय के रूप में नहीं।

मंत्रिमंडल के कृत्य

मंत्रिमण्डल के कृत्यों को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—(१) मंत्रणा-संबंधी (advisory), तथा (२) प्रशासन-संबंधी (administrative)। इनमें से प्रथम वर्ग के कृत्य पूरे मंत्रिमण्डल द्वारा एक निकाय (body) के रूप में सम्पादित किए जाते हैं और द्वितीय वर्ग के कृत्य मंत्रिमण्डल के सदस्यों द्वारा वैयक्तिक रूप में। यहाँ इनका संक्षेप में उल्लेख कर देना आवश्यक है।

मंत्रणा-सम्बन्धी कृत्य—मंत्रिमण्डल का मुख्य कार्य राष्ट्रपति को ऐसे विषयों पर जिन पर वह उसकी मंत्रणा लेना चाहे, परामर्श देना है। यह पहले उल्लेख किया जा चुका है कि राष्ट्रपति किसी विषय पर मंत्रिमंडल का मत जानने या न जानने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र है। इस कारण यदि राष्ट्रपति चाहे तो किसी भी विषय पर मंत्रिमंडल का परामर्श लिए बिना ही कार्यवाही कर सकता है। अब तक का अनुभव यही बतलाता है कि साहसी और शक्तिशाली राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल के अस्तित्व को ही भुला दे सकता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि राष्ट्रपति किसी विषय पर स्वयं निर्णय करने के पश्चात् केवल सूचनामात्र के लिए अथवा सुझावों को जानने के लिए उसे मन्त्रिमण्डल के समक्ष उपस्थित करता है। वुड्रो विल्सन उन्हीं राष्ट्रपतियों में थे जो अधिकांश निर्णय स्वविवेक से ही करते थे। उनके मन्त्रिमण्डल के गृह-सचिव फ्रैंकलिन लेन (Franklin

K. Lane) ने मंत्रिमण्डल की एक बैठक के अपने संस्मरणों में लिखा है:—"आज की बैठक का कोई फल नहीं निकला, यद्यपि मेक्सिको, क्यूबा, कोस्टारिका, तथा योरोप में हम झगड़ों में फँसे हैं...प्राय: दो सप्ताह से हमने मन्त्रिमण्डल की बैठकों में अपना समय अधिकतर कहानियाँ कह कर बिताया है।...यहाँ तक कि एक सप्ताह पूर्व की बैठक में, उस दिन जिस दिन राष्ट्रपति ने जर्मनी को अपना उत्तर भेजा था...हमको उस पत्र की झलक तक नहीं दी गई जो लानसिंग (राज्य-सचिव) के हाथों में पहुँच चुका था और चार बजे भेजा गया। हमने उसके बारे में कोई बात नहीं की, सिवाय इसके कि राष्ट्रपति ने मंत्रिमण्डल के एक सदस्य को, जिसने उसके बारे में जिक्र किया, उसकी कुछ रूपरेखा बता दी। और प्राय: पौन घंटे तक हम युद्ध संबंधी कहानियाँ कहते रहे, और कुछ महत्त्वहीन विभागीय मामलों पर विचार किया।" यह उद्धरण पूर्णत: स्पष्ट कर देता है कि मंत्रिमंडल के मंत्रणा-सम्बन्धी कृत्य का वास्तविक महत्व क्या है।[1]

साधारणतया मंत्रिमण्डल के सम्मुख नीति-सम्बन्धी प्रश्न तथा ऐसे विषय जो अन्तर्विभागीय सहयोग से सम्बन्धित होते हैं रखे जाते हैं। किसी नीति के विस्तार-सम्बन्धी प्रश्नों पर मंत्रिमण्डल की बैठकों में विचार नहीं किया जाता। मंत्रिमण्डल के विभिन्न सदस्य अपने अनुभव के आधार पर उपयोगी सुझाव दे

---

[1] "Today's meeting has resulted in nothing, though in Mexico, Cuba, Costa Rica and Europe we have trouble....For some two weeks we have spent our time at cabinet meetings largely in telling stories. Even at the meeting of a week ago, the day on which the President sent his reply to Germany...we were given no view of the note which was already in Lansing's hand and was emitted at four o'clock; and we had no talk upon it, other than some outline given off-hand by the President to one of the Cabinet who referred to it before the meeting; and for three-fourths of an hour we told stories on the war and took up some small departmental affairs."—Franklin K. Lane, as quoted by Charles Beard in *American Government and Politics*, p. 209.

सकते हैं और राष्ट्रपति नीति के सम्बन्ध में अंतिम निर्णय करते समय उन्हें ध्यान में रखता है। यद्यपि अंतिम निर्णय राष्ट्रपति ही करता है परन्तु मंत्रिमंडल की बैठक में विचार-विमर्ष की उपयोगिता और उसके महत्व के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। विभिन्न विभागों के मध्य पारस्परिक गलतफहमियों तथा संघर्षों को विचार-विमर्ष और समझौते के द्वारा दूर करने में भी मंत्रिमण्डल की बैठकें पर्याप्त सहायता देती हैं।

प्रशासनीय कृत्य—मंत्रिमण्डल के सदस्यों द्वारा वैयक्तिक रूप से, कार्यपालिका विभागों के प्रधान होने के नाते, सम्पादित किए जाने वाले कृत्य मंत्रिमण्डल के मंत्रणा-सम्बन्धी कृत्यों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। प्रत्येक विभाग से संबंधित प्रशासनिक कार्य इतना अधिक होता है कि विभाग-प्रमुख के अधीन एक या अधिक सह-सचिव (Assistant Secretary) तथा उप-सचिव (Under-Secretary) रखने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी दशा में यह आशा करना व्यर्थ ही होगा कि राष्ट्रपति स्वयं समस्त कार्य पर नियंत्रण रखे। अधिकतर उसे विभाग-सम्बन्धी कार्यों में सम्बन्धित सचिव की इच्छानुसार ही कार्य करना होता है।

प्रत्येक विभाग के सङ्गठन तथा कार्य आदि के सम्बन्ध में कांग्रेस ने समय-समय पर विधियाँ पारित की हैं। कुछ कार्यपालिका आदेशों (executive orders) में भी विभागों के सङ्गठन तथा कार्य आदि का स्पष्टीकरण किया गया है। इन्हीं के आधार पर प्रत्येक विभाग का प्रमुख विभागीय विनियम आदि जारी करता है। निम्न पदों पर नियुक्तियाँ करना, विभागीय कर्मचारियों के विरुद्ध आने वाली शिकायतों पर विचार करना, कांग्रेस की समितियों के समक्ष उपस्थित होकर सूचना आदि देना, तथा विभाग से सम्बन्धित प्रश्नों पर नीति निर्धारित करना मंत्रिमण्डल के सदस्यों के अन्य मुख्य कृत्य हैं। यद्यपि मंत्रिमंडल के सदस्यों को प्रशासनीय कार्य का अधिक अनुभव नहीं होता क्योंकि वे अपनी अनुभव और योग्यता के कारण ही नहीं नियुक्त किए जाते हैं, परन्तु शासन-कार्य में इससे बाधा नहीं पड़ती। इसका कारण यह है कि एक राष्ट्रपति का कार्यकाल समाप्त होने पर केवल प्रत्येक विभाग को शीर्षस्थ अधिकारी बदलता है; निम्न अधिकारी वही रहते हैं। और यह तथ्य सभी जानते हैं कि शासन-यन्त्र का संचालन मुख्यतः इन्हीं निम्न अधिकारियों के बल पर होता है।

राष्ट्रपति तथा मंत्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध—राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल के मध्य सम्बन्ध मुख्यतः राष्ट्रपति-पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व और स्वभाव पर निर्भर करते हैं। यदि राष्ट्रपति स्वभाव से ही स्वतन्त्र प्रकृति और दृढ़ विचारों का व्यक्ति है तो वह मंत्रिमण्डल की मंत्रणा को अधिक महत्व न देगा, और यह भी सम्भव है कि वह उसकी मंत्रणा लेना आवश्यक ही न समझे। राष्ट्रपति जैक्सन ने यह अनुभव किया कि मंत्रिमण्डल उनकी विनिश्चय करने की स्वतन्त्रता में बाधक है और इस कारण उन्होंने लगभग दो वर्ष तक उसकी कोई बैठक ही नहीं बुलाई।[1] राष्ट्रपति लिंकन भी नीति-सम्बन्धी अधिकांश महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं ही करते थे। राष्ट्रपति ग्रांट तो और भी अधिक आगे बढ़े हुए थे। वे अपने मंत्रिमण्डल के सदस्यों को अपनी आज्ञा का पालन करने वाले सेवकों से अधिक नहीं समझते थे। इसके विपरीत राष्ट्रपति बुचनान (Buchanan) तथा फ्रैंकलिन पियर्स के काल में मंत्रिमण्डल के निर्णय ही सर्वप्रधान होते थे। ये दोनों राष्ट्रपति प्रायः सदा ही मन्त्रिमण्डल के निर्णयों का अनुसरण करते थे। राष्ट्रपति क्लीवलैंड भी मन्त्रिमण्डल के निर्णयों को पर्याप्त महत्व देते थे। बीसवीं शताब्दी के राष्ट्रपतियों में थियोडोर रूजवेल्ट, वुड्रो विल्सन तथा फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के काल में मन्त्रिमण्डल का प्रभाव अधिक नहीं था। वे या तो स्वयं निर्णय करते थे अथवा मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की मन्त्रणा को अधिक महत्व देते थे। इस शताब्दी के राष्ट्रपतियों में मन्त्रिमण्डल को सर्वाधिक प्रधानता राष्ट्रपति हार्डिङ्ग ने दी।

अधिकांश राष्ट्रपतियों के बारे में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे महत्वपूर्ण प्रश्नों पर मंत्रिमण्डल के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की मन्त्रणा लेते थे और कभी-कभी उसे मंत्रिमण्डल के परामर्श से अधिक महत्व देते थे। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति जैकसन के 'पाकशाला-मंत्रिमण्डल' (Kitchen Cabinet) ने पर्याप्त ख्याति पाई है। यह राष्ट्रपति जैकसन के उन मित्रों का सामूहिक नाम था जिनका वे शासन-सम्बन्धी समस्याओं पर परामर्श लेते थे। वर्तमान शताब्दी में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ़ गई है। कर्नल हाउस, हैरी हॉपकिन्स, सम्नर वेल्स, रैमन्ड मोले कुछ ऐसे व्यक्तियों के नाम हैं जिनका

[1] Munro, *op. cit.*, p. 218.

राष्ट्रपतियों पर उनके मंत्रिमण्डल के सदस्यों से कई गुना अधिक प्रभाव था। कर्नल हाउस के सम्बन्ध में तो प्रो० लास्की का मत है कि उनका शासन सम्बन्धी मामलों में प्रभाव केवल राष्ट्रपति से ही कम था[1]—जबकि वे कभी मंत्रिमण्डल के सदस्य नहीं रहे। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के 'ब्रेन ट्रस्ट'(Brain Trust) और 'उच्चतर मंत्रिमण्डल' (Super cabinet) का भी उल्लेख कर देना यहाँ अनुचित न होगा। 'ब्रेन ट्रस्ट' राष्ट्रपति रूजवेल्ट के उन साहसी परामर्शदाताओं का सामूहिक नाम था जिनसे वे अपनी 'न्यू डील' (New Deal) योजना के सम्बन्ध में मन्त्रणा लिया करते थे। इन परामर्शदाताओं में एक भी मंत्रिमण्डल का सदस्य न था। 'न्यू डील' काल में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक अन्य अनौपचारिक परामर्शदात्री निकाय की रचना की। इसका नाम था 'राष्ट्रीय संकटकालीन परिषद' (National Emergency Council)। इस निकाय (body) में मन्त्रिमण्डल के सदस्य तथा अन्य अभिकरणों आदि के प्रमुखों में से लिये गए कुल मिलाकर तीस सदस्य सम्मिलित थे। इसे उच्चतर मन्त्रिमण्डल (Super cabinet) भी कहते थे। कुछ काल तक इस निकाय की प्रति सप्ताह बैठकें हुईं और कुछ लोगों ने यह भी भविष्यवाणी की कि इस निकाय के प्रादुर्भाव के कारण शनैः-शनैः मन्त्रिमण्डल लुप्त हो जाएगा। ऐसा नहीं हुआ; परन्तु, इससे यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रपति अपनी इच्छानुसार किसी की भी मन्त्रणा ले सकता है।

1 Laski, H. J., *American Democracy*, p. 97

अध्याय १०

प्रतिनिधि-सभा

(The House of Representatives)

संयुक्त राज्य के शासन का विधानांग एक द्विआगारिक निकाय (bicameral body) है जिसे संविधान में 'संयुक्त राज्य की कांग्रेस' कहा गया है। जिन दो सदनों को सम्मिलित रूप से कांग्रेस के नाम से सम्बोधित किया जाता है[1] उनके नाम हैं :—प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) तथा सिनेट (Senate)। यह तथ्य कि संविधान के प्रथम अनुच्छेद में ही कांग्रेस की रचना, संगठन और शक्तियों आदि पर प्रकाश डाला गया है, संयुक्त राज्य की शासन-प्रणाली में कांग्रेस के महत्वपूर्ण स्थान को स्पष्ट करता है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी कांग्रेस शासन के अन्य अंगों, कार्यपालिका और न्यायपालिका, से कुछ अधिक प्राचीन है। सन् १७७३ में स्थापित राज्यमण्डल (Confederation) की एकमात्र संघीय संस्था कांग्रेस ही थी, यद्यपि उसकी शक्तियाँ बहुत सीमित थीं।

द्विआगारिक विधानमंडल ही क्यों ?—कांग्रेस की रचना तथा संगठन आदि पर विचार करने के पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि हम इस प्रश्न पर विचार करें कि संविधान-निर्माताओं ने द्विआगारिक (bicameral) प्रणाली को क्यों प्रश्रय दिया। द्विआगारिक प्रणाली को प्रश्रय दिये जाने के कई कारण थे। संक्षेप में ये कारण निम्नलिखित थे :—

---

[1] प्रायः कांग्रेस शब्द को उपर्युक्त अर्थ में प्रयोग न कर कुछ लोग केवल प्रतिनिधि सभा को ही कांग्रेस के नाम से सम्बोधित करते हैं। इससे अकारण ही भ्रम उत्पन्न होता है। संविधान में स्पष्ट उल्लेख है कि कांग्रेस सिनेट तथा प्रतिनिधि सभा से मिलकर बनेगी।

१. संयुक्त राज्य की शासन-प्रणाली के सम्बन्ध में निर्णय करते समय स्वाभाविकतया ही संविधान-निर्माताओं का ध्यान अन्य प्रमुख देशों की शासन-प्रणालियों की ओर गया। इंग्लैंड में उस समय भी पार्लमेंट में दो सदन थे। संविधान-निर्माताओं ने इस प्रणाली के लाभों पर विचार किया और इसके गुणों को ध्यान में रखते हुए संशोधित रूप में इसे अपना लिया।

२. संघीय संविधान के निर्माण के समय न केवल इंग्लैंड में ही द्विआगारिक विधानमण्डल था, वरन् अमेरिका के कई राज्यों में भी द्विआगारिक विधानमण्डल थे। इस कारण संविधान-निर्माताओं को द्विआगारिक प्रणाली के कर्मकरण का पर्याप्त अनुभव था। निश्चय ही इस तथ्य ने भी उनके निर्णय को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया।

३. राज्यमण्डल-काल में कांग्रेस का संगठन राज्यों की संप्रभुता और समानता के सिद्धान्त के आधार पर होता था। प्रत्येक राज्य को कांग्रेस में समान संख्या में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था। छोटे राज्य, जिन्हें जनसंख्या के आधार पर विधानमण्डल के स्थानों का वितरण किये जाने पर बहुत कम स्थान प्राप्त होते, इस लाभकर स्थिति को त्यागने के लिए तैयार न थे। इसके विपरीत बड़े राज्य, जो संघ-राज्य के निर्माण के लिये विशेष रूप से प्रयत्नशील थे, विधानमंडल में जनसंख्या के आधार पर स्थानों का वितरण चाहते थे। इन दो विरोधी गुटों को संतुष्ट करने के लिए विधानमंडल में दो सदन रखने का निर्णय किया गया। यह निश्चय किया गया कि इनमें से एक में प्रतिनिधित्व का आधार नागरिकों की समानता का सिद्धान्त हो और दूसरे में राज्यों की समानता का सिद्धान्त।

४. द्विआगारिक प्रणाली अपनाये जाने का एक अन्य मुख्य कारण यह भी था कि यद्यपि संविधान-निर्मातागण जनतांत्रिक शासन-प्रणाली में विश्वास रखते थे, परन्तु वे उसके अवगुणों से भी अनभिज्ञ न थे। वे यह जानते थे कि जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित किये गए प्रतिनिधियों के हाथ में विधि-निर्माण की अनियंत्रित शक्ति दे दिये जाने का परिणाम यह हो सकता है कि वे अपने अदम्य उत्साह में ऐसे विधेयक पारित कर दें जिनके परिणामों पर उन्होंने अच्छी तरह विचार न किया हो। इसीलिए उन्होंने सिनेट के रूप में जनता के

प्रतिनिधियों पर एक रोष बनाये रखा।[1] जनश्रुति के अनुसार टॉमस जेफ़रसन द्वारा दूसरे सदन की आवश्यकता के सम्बन्ध में प्रश्न किये जाने पर जार्ज वाशिंगटन ने प्याले में से गरम चाय रकाबी में गिरा कर उन्हें दूसरे सदन की उपयोगिता समझाई। जिस प्रकार प्याले की गरम चाय रकाबी में पहुँचकर ठंडी हो जाती है उसी प्रकार प्रथम सदन के द्वारा जल्दबाजी में पारित उत्साह-पूर्ण विधेयक द्वितीय सदन में पहुँचकर उचित अवस्था में ही पारित होंगे, ऐसा उनका विश्वास था।

५. उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त चार्ल्स बियर्ड ने एक आर्थिक कारण की ओर संकेत किया है।[2] सङ्घ में सम्मिलित होने वाले उत्तरी और दक्षिणी राज्यों के हित समान न थे। जहाँ उत्तरी राज्य मुख्यतः व्यवसाय-प्रधान थे वहाँ दक्षिणी राज्यों में कृषि की प्रधानता थी। यदि विधानमण्डल में जनसंख्या के आधार पर स्थान दिये जाते तो निश्चय ही उत्तरी राज्यों का जिनकी जनसंख्या बहुत अधिक थी, प्रभुत्व रहता। इसी कारण दक्षिणी राज्य राज्यों की समानता के आधार पर प्रतिनिधित्व चाहते थे। अन्त में एक समझौते के द्वारा द्विआगारिक विधानमण्डल के निर्माण का निश्चय किया गया। दोनों सदनों में प्रतिनिधित्व का भिन्न आधार स्वीकार करके ही उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों राज्यों को संतुष्ट किया जा सका।

प्रतिनिधि-सभा की रचना

प्रतिनिधि सभा संयुक्त राज्य की कांग्रेस का निम्न अथवा प्रथम सदन है। इसे कांग्रेस का लोकप्रिय सदन भी कहा जाता है। इसका कारण न केवल यह है कि इसके सदस्यों को जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित किया जाता है, वरन् यह भी कि इसमें विभिन्न राज्यों को उनकी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाता है। यद्यपि सत्रहवाँ संशोधन अंगीकृत किये जाने के समय से सिनेट के सदस्य भी प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होने लगे हैं, परन्तु

---

[1] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सन् १९१३ तक सिनेट के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रीति से होता था।

[2] Charles Beard, *American Government and Politics*, p. 223.

निर्वाचन क्षेत्र का विस्तार अत्यधिक होने के कारण सिनेट में केवल संपन्न व्यक्तियों के ही पहुँचने की ही संभावना रहती है।

प्रतिनिधि सभा की सदस्य-संख्या— संविधान में प्रतिनिधि-सभा की सदस्य-संख्या को निर्धारित नहीं किया गया है। यह कार्य कांग्रेस को सौंपा गया है। इस सम्बन्ध में कांग्रेस की शक्ति पर दो निर्बन्ध हैं—प्रथम यह कि प्रत्येक राज्य को कम से कम प्रतिनिधि-सभा का एक सदस्य निर्वाचित करने का अधिकार अवश्य दिया जाना चाहिए, और द्वितीय यह कि तीस हजार व्यक्तियों पर एक से अधिक प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए।[1] संविधान के अनुसार प्रति दस वर्ष के पश्चात् कांग्रेस के द्वारा बनाई गई विधियों के द्वारा आदिष्ट रीति से जनगणना होनी चाहिए। व्यवहार में जनगणना के पश्चात् ही प्रतिनिधि सभा के स्थानों का पुनर्वितरण होता है।

जिस समय संविधान का निर्माण हुआ था उस समय देश में दास-प्रथा प्रचलित थी। जिन राज्यों में नीग्रो लोग निवास नहीं करते थे वे चाहते थे कि प्रतिनिधि सभा के स्थानों के वितरण के समय नीग्रो दासों की जनसंख्या में गणना न की जाय। जिन राज्यों में नीग्रो दासों की पर्याप्त संख्या थी वे यह मानने को प्रस्तुत न थे। अंततः यह निर्णय हुआ था कि राज्यों की जनसंख्या का अनुमान लगाते समय नीग्रो दासों की कुल संख्या को उसके केवल $\frac{3}{5}$ भाग के बराबर माना जाय। दूसरे शब्दों में नीग्रो दासों की जितनी संख्या हो उसका केवल साठ प्रतिशत ही श्वेतांगों की जनसंख्या में जोड़ा जाय। संविधान में यह भी उल्लेख है कि जिन आदिवासियों (Indians) पर कर नहीं लगाया गया है उनकी भी जनसंख्या में गणना न की जाय। संविधान के ये दोनों उपबन्ध अब सारहीन हो गए हैं। चौदहवें संशोधन के अंगीकृत किये जाने के समय से दास-प्रथा समाप्त हो गई है और अब सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय किया है कि सभी आदिवासियों पर कर लगाया जाना चाहिए। इसी कारण सन् १९४१ में प्रतिनिधि सभा के स्थानों के पुनर्वितरण के समय जनसंख्या में श्वेतांगों के साथ ही समस्त नीग्रो लोगों को भी सम्मिलित माना गया था।

---

[1] अनुच्छेद १ धारा (२).

संविधान में अस्थायी रूप से प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों की संख्या पैंसठ निश्चित की गई थी। सन् १७८९ में निर्वाचित प्रतिनिधि-सभा में इतने ही सदस्य थे। सन १९१० तक प्रत्येक दशवार्षिक जनगणना के पश्चात् प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की संख्या में वृद्धि होती रही। सन् १९२० की जनगणना के पश्चात् प्रतिनिधि-सभा की सदस्य संख्या में कोई वृद्धि नहीं की गई। इसका कारण यह था कि यह अनुभव किया जाने लगा था कि सदन की संख्या बहुत अधिक हो गई है। यद्यपि सन् १९२० की जनगणना के पश्चात् प्रतिनिधि-सभा ने एक विधेयक पारित कर सदन की सदस्य-संख्या बढ़ाकर ४७० कर देने का प्रस्ताव रखा था पर सिनेट ने इसके लिए अपनी सहमति देना स्वीकार नहीं किया। यह गतिरोध पर्याप्त समय तक चला। सन् १९२९ में कांग्रेस ने एक अधिनियम पारित कर यह निश्चित कर दिया कि जब तक भविष्य में कोई परिवर्तन न किया जाय प्रतिनिधि-सभा की सदस्य-संख्या ४३५ ही रहेगी।

निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन—प्रत्येक दशवार्षिक जनगणना के पश्चात् जब यह निर्धारित कर दिया जाता है कि प्रत्येक राज्य को प्रतिनिधि-सभा में कितने स्थान (seats) प्राप्त होंगे, तब यदि प्रतिनिधियों की संख्या में कोई परिवर्तन हुआ है तो यह आवश्यक हो जाता है कि निर्वाचन-क्षेत्रों (districts) का पुनर्गठन किया जाय। सभी निर्वाचन-क्षेत्र एकसदस्यीय होते हैं, इस कारण प्रत्येक राज्य को उतने ही निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है जितने प्रतिनिधि उसे निर्वाचित करने होते हैं।[1]

कांग्रेस द्वारा पारित की गई एक विधि के अनुसार राज्य के समस्त निर्वाचन क्षेत्रों की जनसंख्या लगभग समान होना चाहिए। यह निर्बन्ध उचित ही है,

---

[1] संविधान के प्रवर्तित किये जाने के पश्चात् आरम्भ में कुछ राज्य प्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिए समूचे राज्य को ही एक निर्वाचन-क्षेत्र मानते थे और प्रत्येक मतदाता को उतने मत देने का अधिकार होता था जितने प्रतिनिधि उस राज्य को निर्वाचित करने होते थे। सन् १८४२ में कांग्रेस ने एक विधि पारित कर इस प्रणाली का अंत कर दिया और यह आवश्यक कर दिया कि प्रत्येक राज्य अपने को एकसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित करे।

परन्तु व्यवहार में प्रायः इसका पालन नहीं किया जाता। आज भी ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनकी जनसंख्या अन्य निर्वाचन क्षेत्रों से दुगुनी, तिगुनी या और अधिक है। सन् १९४७ में तो स्थिति यहाँ तक पहुँच गई थी कि इलिनायस (Illinois) राज्य के एक निर्वाचन-क्षेत्र की जनसंख्या एक अन्य निर्वाचन क्षेत्र की तुलना में लगभग आठ गुनी थी। इस स्थिति के उत्पन्न होने का मुख्य कारण यह था कि उस राज्य में अंतिम बार निर्वाचन-क्षेत्रों का पुनर्गठन सन् १९०१ में किया गया था। उसके पश्चात् जनसंख्या का स्थानांतरण होता रहा, ग्रामों के निवासी जा कर नगरों में बसते रहे, परन्तु राज्य के विधानमण्डल ने राजनीतिक कारणों से इस परिवर्तन पर ध्यान देना आवश्यक न समझा। सन् १९४६ में जब सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान निर्वाचन-क्षेत्रों की इस असमानता की ओर आकर्षित किया गया तो उसने इसे 'राजनीतिक प्रकृति' का मामला घोषित कर इस पर कोई निर्णय नहीं दिया।[1] अंततः संघीय कांग्रेस ने एक विधि पारित कर इस स्थिति का अंत करने का प्रयत्न किया और परिणामतः सन् १९४९ में इलिनायस के विधानमण्डल को निर्वाचन-क्षेत्रों का पुनर्गठन करना पड़ा।[2]

गैरीमैंड्रिङ्ग (Gerrymandering)—निर्वाचन-क्षेत्रों के परिसीमन से संबंधित एक अन्य प्रथा का उल्लेख कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि जनगणना के पश्चात् राज्य के निर्वाचन-क्षेत्रों का पुनर्गठन करना राज्य विधानमण्डल का कार्य है। कभी-कभी विधान-मण्डल का बहुमत दल अपना प्राधान्य बनाये रखने के लिए औचित्यता को भुला कर निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन इस प्रकार करता है कि प्रत्येक अथवा अधिकांश निर्वाचन-क्षेत्रों में उसके ही प्रत्याशी सफल हों। इसके लिए एक निर्वाचन क्षेत्र से एक नगर अथवा काउंटी आदि को निकाल कर अन्य किसी कारण के अभाव में ही दूसरे निर्वाचन क्षेत्र में मिला देना सामान्य बात है।

---

[1] Colegrove *et. al. v.* Green *et. al.* (1946)

[2] विधानमण्डल की निष्क्रियता के कारण निर्वाचन-क्षेत्रों की जनसंख्या में असमानता उत्पन्न होने की स्थिति को अंग्रेजी में "silent Gerrimander" कहते हैं।

परिणाम यह होता है कि निर्वाचन क्षेत्रों का आकार कभी गिलहरी जैसा, कभी छिपकली जैसा और कभी जूते के फीते जैसा बन जाता है। जनश्रुति के अनुसार सन् १८१२ में मैसाच्यूसेट्स राज्य के मानचित्र को देख कर एक निर्वाचन-क्षेत्र की ओर इंगित करते हुए एक व्यक्ति ने कहा था—यह सलामंडर (salamander) जैसा क्या है ?" उस समय मैसाच्यूसेट्स राज्य का गवर्नर ऐल्ब्रिज गैरी था जिसने अनुचित रूप से परिसीमित निर्वाचन-क्षेत्रों को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी थी। उसी के नाम से उस निर्वाचन-क्षेत्र को सम्बद्ध करते हुए दूसरे व्यक्ति ने कहा—"इसे सलामंडर नहीं गैरीमेंडर कहो।" तभी से "गैरीमैंडर" तथा "गैरीमैंड्रिंग" शब्द प्रचलित हो गए, यद्यपि यह प्रथा इसके पूर्व भी प्रचलित थी।

सन् १९२९ तक संघीय विधियों में यह उपबन्ध था कि एक निर्वाचन क्षेत्र का सम्पूर्ण क्षेत्र सम्बद्ध (compact) होना चाहिए। इस उपबन्ध के कारण ही दूरस्थ भागों को एक पतली-सी क्षेत्रीय पट्टी से जोड़ दिया जाता था। सन् १९२९ में निर्वाचन क्षेत्रों के पुनर्गठन संबंधी विधि पारित करते समय कांग्रेस ने इस उपबन्ध को विधि में स्थान नहीं दिया। इसके परिणामस्वरूप यह सम्भव हो गया कि एक राज्य में दूरस्थ तथा पृथक् क्षेत्रों को भी एक ही निर्वाचन क्षेत्र में सम्मिलित माना जाय। सन् १९३२ में मिसिसिपी राज्य में ऐसे सात निर्वाचन क्षेत्र थे। यद्यपि अभी भी "गैरीमैंड्रिंग" के द्वारा विपक्षियों को क्षति पहुँचाने की वृत्ति का अंत नहीं हुआ है, परन्तु धीरे-धीरे इसका चलन कम होता जा रहा है। मनरो का मत है कि "अमेरिकी राजनीति में गैरीमैंडर एक दूषित तत्व रहा है तथा जनता की भावनाएँ धीरे-धीरे इसके विरुद्ध होती जा रही हैं। आज यदि कोई दल इसका प्रयोग करता है तो यह उसके लिए स्वनाशक-अस्त्र ही सिद्ध होता है।"[1]

मतदाताओं के लिए आवश्यक अर्हताएं—संविधान में यह स्पष्ट नहीं

---

[1] "The gerrymander has been a pernicious factor in American politics and popular sentiment has been slowly developing against it. Today it usually proves a boomerang to the party that attempts it."—Munro, W. B., *op. cit.*, p. 302.

किया गया है कि प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों के निर्वाचन में किन व्यक्तियों को भाग लेने का अधिकार होगा। उसमें केवल इतना ही उल्लेख है कि प्रत्येक राज्य में निर्वाचकों के पास वह अर्हताएँ (qualifications) होंगी जो राज्य विधानमण्डल की सर्वाधिक सदस्य-संख्या वाली शाखा के निर्वाचकों के लिए आवश्यक हैं।[1] इस उपबन्ध के अनुसार जो नागरिक राज्य विधानमण्डल के लोकप्रिय अथवा निम्न सदन के सदस्यों के निर्वाचन में भाग ले सकते हैं वे प्रतिनिधि-सभा के निर्वाचन में भी भाग ले सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कौन व्यक्ति देश के विधानमण्डल के सदस्यों को निर्वाचित करेंगे यह निश्चित करने की शक्ति राज्यों को दे दी गई है। व्यवहार में मतदाताओं की सूचियाँ रखना, मतदान केन्द्रों की व्यवस्था करना, मतपत्रों की गणना कराना तथा प्रतिनिधि सभा के निर्वाचन से संबंधित अन्य समस्त व्यवस्था करना, आदि कार्य राज्य सरकारों के पदाधिकारियों द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं। यद्यपि मतदाताओं की अर्हता आदि निश्चित करने के सम्बन्ध में राज्य सरकारों को संविधान द्वारा पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गई है, पर कभी कभी संघीय कांग्रेस भी इसमें हस्तक्षेप करती है। संविधान का पन्द्रहवाँ तथा उन्नीसवाँ संशोधन इसके उदाहरण हैं।[2] द्वितीय महायुद्ध के काल में कांग्रेस ने सन् १९४२ में एक अधिनियम के द्वारा सायुध सेनाओं के सैनिकों को मतदान की सुविधाएँ प्रदान की थीं तथा 'पोल टैक्स' (poll tax) को सङ्घीय निर्वाचनों के मतदाताओं के लिए एक अनुचित अर्हता माना था। परन्तु अभी भी यह विषय विवादास्पद ही है कि कांग्रेस निर्वाचकों की अर्हताओं के संबंध में विधि बना सकती है।

प्रतिनिधि-सभा की सदस्यता के लिए आवश्यक अर्हताएँ—संविधान में प्रतिनिधि सभा के सदस्य होने के लिए निम्नलिखित तीन अर्हताएँ आवश्यक बताई गई हैं :

---

[1] अनुच्छेद १ धारा (१)

[2] इन संशोधनों के द्वारा कांग्रेस ने नीग्रो लोगों और स्त्रियों को मताधिकार दिलाने का प्रयत्न किया था, परन्तु आज भी शिक्षा, संपत्ति आदि से संबंधित अर्हताओं की आड़ लेकर अनेक राज्यों ने नीग्रो लोगों को मताधिकार से वंचित रखा है।

१ पच्चीस वर्ष आयु होना,

२. सात वर्ष से संयुक्त राज्य का नागरिक होना, तथा,

३. उसी राज्य का निवासी होना जिससे कोई व्यक्ति प्रतिनिधि-सभा का सदस्य निर्वाचित होना है।[1]

उपर्युक्त अर्हताओं के अतिरिक्त संविधान में इस निर्बन्ध का भी उल्लेख है कि प्रतिनिधि-सभा का कोई सदस्य संयुक्त राज्य के अधीन किसी पद पर कार्य नहीं कर सकता तथा उसकी ऐसे किसी पद पर नियुक्ति नहीं की जा सकती जो उसके सदस्य होने के काल में स्थापित किया गया हो अथवा जिसका वेतन उसकी सदस्यता के काल में बढ़ाया गया हो।[2] प्रायः सभी राज्यों ने भी विधि द्वारा यह निर्बन्ध लगा दिया है कि उनके अधीन किसी पद पर कार्य करने वाला कोई व्यक्ति कांग्रेस के किसी सदन का सदस्य नहीं हो सकता।

कभी-कभी यह प्रश्न उठता है कि क्या उपर्युक्त अर्हताओं में संविधान में संशोधन किये बिना ही वृद्धि की जा सकती है। अनेक अवसरों पर न्यायालय ने इस प्रश्न का उत्तर "नहीं" दिया है। परंतु जब हम व्यवहार पर दृष्टि डालते हैं तो भिन्न परिणाम पर पहुँचते हैं। प्रथा (usage) के द्वारा अब यह एक सुदृढ़ नियम बन गया है कि प्रतिनिधि सभा के प्रत्येक सदस्य को न केवल उस राज्य का ही वरन् उस जिले का भी निवासी होना चाहिए जहाँ से वह निर्वाचित होता है। इसे क्षेत्र-नियम (locality rule) कहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिनिधि-सभा ने स्वयं कुछ अवसरों पर उपर्युक्त अर्हताओं के होते हुए भी कुछ व्यक्तितों कोअपनी सदस्यता से वंचित रखा है। सन् १९०० में प्रतिनिधि-सभा ने राबर्ट्स नामक व्यक्ति को अपना सदस्य मानने से इस कारण इन्कार कर दिया कि उसने अनेक विवाह किये थे। इसी प्रकार सन् १९१९ में प्रतिनिधि-सभा ने विक्टर बर्जर को अपनी सदस्यता से इस कारण वंचित रखा कि वह न्यायालय द्वारा देशद्रोह तथा राज्य के प्रति अभक्ति (disloyalty) के अपराध के लिए दंडित किया गया था। ये उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि संविधान द्वारा ऐसा कोई प्राधिकार प्राप्त न होने

[1] अनुच्छेद १ धारा (२)

[2] अनुच्छेद १ धारा (६)

पर भी व्यवहार में प्रतिनिधि-सभा अपनी सदस्यता के सम्बन्ध में निर्बन्ध लगा सकती है। वैधानिक स्थिति तो उसी समय स्पष्ट होगी जब सर्वोच्च न्यायालय ऐसे किसी मामले पर विचार कर अपना निर्णय दे।

क्षेत्र-नियम (locality rule)—ऊपर यह उल्लेख किया जा चुका है कि प्रथा द्वारा अब यह एक सुदृढ़ नियम बन गया है कि प्रतिनिधि सभा के प्रत्येक सदस्य के लिए न केवल उस राज्य का ही वरन् उस निर्वाचन-क्षेत्र (Congressional district) का भी निवासी होना आवश्यक है जिससे वह प्रतिनिधि निर्वाचित किया जाता है। यह नियम तथा इसके परिणाम इतने महत्वपूर्ण हैं कि इन पर कुछ शब्द लिखना असंगत न होगा। विशेष अवस्थाओं में कभी-कभी निर्वाचन-क्षेत्र के बाहर निवास करने वाले व्यक्ति को भी प्रतिनिधि-सभा का सदस्य निर्वाचित कर लिया जाता है, परन्तु ऐसे गिनें-चुने उदाहरण ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सामान्यतः किसी 'बाहरी व्यक्ति' को निर्वाचित करना एक निर्वाचन-क्षेत्र के लिए अपमान का विषय समझा जाता हैं, चाहे निर्वाचित व्यक्ति कितना ही योग्य, अनुभवी, चरित्रवान् तथा देशसेवी क्यों न हो। इस प्रथा की दृढ़तापूर्वक जड़ें जमा लेने के कई कारण हैं। लार्ड ब्राइस ने उनमें से मुख्य कारण निम्नलिखित बताये हैं :

१. क्षेत्रीय अभिमान एक निर्वाचन क्षेत्र को अपना प्रतिनिधि अपनी सीमा के बाहर से नहीं चुनने देता।

२. प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों को अपेक्षाकृत पर्याप्त वेतनादि मिलता है और इस कारण दलीय यंत्र स्थानीय संगठन को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए एक अनजाने व्यक्ति को निर्वाचित कर इस पद को गँवाना नहीं चाहता।

३. कांग्रेस के प्रतिनिधियों से यह आशा की जाती है कि वे स्थानीय आवश्यकताओं से भली भाँति परिचित हों और अपने क्षेत्र के निवासियों को विशेष लाभ पहुँचा सकें; तथा

४. अमेरिका की जनता प्रतिनिधि सभा के सदस्य को स्थानीय हितों का

प्रवक्ता मात्र ही मानती है न कि एक ऐसा राजनयज्ञ (statesman) जिसका कार्य न्यायसंगत तथा युक्तियुक्त विधियाँ बनाना हो।[१]

उपर्युक्त नियम का एक प्रमुख दोष है। इसके कारण यदि उनके अपने निर्वाचन-क्षेत्र में विरोधी दल का मतदाताओं पर अधिक प्रभाव हो तो संयुक्त राज्य के योग्यतम राजनयज्ञ भी प्रतिनिधि-सभा के सदस्य बनने की आशा नहीं कर सकते। ब्रिटेन के प्रसिद्ध उदारदलीय प्रधान मंत्री ग्लैड्स्टन ने अनेक बार अपने निर्वाचन-क्षेत्र को बदला, परन्तु यदि वे संयुक्त राज्य में होते तो यह कभी संभव न हो सकता। ब्रिटेन तथा अन्य अनेक देशों की भाँति संयुक्त राज्य में यह संभव नहीं है कि यदि किसी राजनीतिक दल का कोई प्रमुख नेता किसी निर्वाचन क्षेत्र में पराजित हो जाता है तो उसे किसी अन्य क्षेत्र से खड़ा कर विजयी बना दिया जाय। इस प्रथा के कारण संयुक्त राज्य के अधिकांश उत्तरी भाग का कोई रिपब्लिकन दल का उच्चतम नेता तथा दक्षिणी भाग का कोई डेमोक्रेटिक दल का नेता कभी प्रतिनिधि सभा में नहीं पहुँच सकता। इस कारण कांग्रेस में विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं की खोज करने वाले व्यक्ति को निराशा ही होगी। इस नियम का यह लाभ है कि प्रतिनिधि सदैव अपने निर्वाचकों के मत की ओर ध्यान रखता है तथा उनसे संपर्क बनाये रखता है, परन्तु इसके लाभ की तुलना में दोष ही अधिक महत्वपूर्ण है।

निर्वाचन प्रणाली—संविधान के अनुसार प्रतिनिधि-सभा तथा सिनेट के सदस्यों का निर्वाचन के समय, स्थान तथा पद्धति निर्धारित करने का अधिकार राज्यों के विधानमण्डलों को प्राप्त है, परन्तु कांग्रेस को ऐसे विनियमों को विधि द्वारा परिवर्तित करने का अधिकार दिया गया है।[२] कांग्रेस ने विधि द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई है कि समस्त देश में निर्वाचन एक ही दिन हों। आजकल प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों का निर्वाचन नवम्बर मास के प्रथम सोमवार के बाद

---

[१] Lord Bryce, as quoted by Charles Beard in *American Government and Politics*, p. 128.

[२] अनुच्छेद १ धारा (४)

आने वाले मङ्गलवार को होता है।[1] पहले कुछ राज्यों में निर्वाचन शाब्दिक-मतदान से भी होता था परन्तु सन् १८७२ में कांग्रेस ने एक विधि द्वारा यह व्यवस्था कर दी कि मतदान गुप्त रीति से मतपत्रों के द्वारा हो। सन् १९१०-११ में कांग्रेस ने विधि द्वारा यह निश्चय कर दिया कि एक प्रत्याशी निर्वाचन में अधिक से अधिक कितना धन व्यय कर सकता है। यह सीमा ५००० डालर है।

निर्वाचन के पूर्व प्रत्याशियों का नामांकन होता है। नामांकन के सम्बन्ध में कांग्रेस ने कोई विधि नहीं बनाई है।[2] इस कारण नामांकन के सम्बन्ध में राज्यों की विधियाँ ही लागू होती हैं। यही कारण है कि विभिन्न राज्यों में नामांकन की प्रणाली समान नहीं है। सभी राज्यों में सामान्यतः नामांकन दलीय सङ्गठनों द्वारा किया जाता है। पहले नामांकन निर्वाचन क्षेत्र के दलीय सम्मेलनों द्वारा किये जाते थे। इन सम्मेलनों में नगरों, काउन्टियों आदि के प्रतिनिधि एकत्र होते थे। अब अधिकांश राज्यों में प्रत्यक्ष प्राइमरी प्रणाली (Direct Primaries) को अपना लिया गया है। इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्याशियों का नामांकन प्रत्यक्ष रीति से मतदाताओं द्वारा किया जाता है, न कि दलीय प्रतिनिधियों द्वारा। मतदाताओं की एक निश्चित संख्या द्वारा नामांकन पत्र पर हस्ताक्षर करा लेने पर कोई व्यक्ति स्वतन्त्र प्रत्याशी के रूप में भी निर्वाचन लड़ सकता है।

निर्वाचन सम्बन्धी विवाद—संविधान ने प्रतिनिधि सभा को अपने सदस्यों के निर्वाचन तथा उनकी अर्हताओं आदि से संबन्धित विवादों पर निर्णय

---

[1] मेन (Maine) राज्य इस नियम का अपवाद है। इसका कारण वहाँ का सांविधानिक उपबन्ध है जिसके अनुसार प्रतिनिधि सभा के निर्वाचन सितम्बर मास में होते हैं। मेन राज्य के निर्वाचनों के परिणामों की उत्सुकता से प्रतीक्षा की जाती है क्योंकि उनसे देश के अन्य भागों के निर्वाचनों के फल का आभास मिलता है।

[2] सन् १९२४ में Newberry *v.* United States में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि कांग्रेस नामांकन के सम्बन्ध में नियम नहीं बना सकती, परन्तु सन् १९४१ में United States *v.* Patrick B. Classic *et. al.*, में सर्वोच्च न्यायालय ने कांग्रेस के अधिकार को स्वीकार किया है।

करने का अधिकार दिया है।[१] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इङ्गलैंड में ऐसे विवादों का निर्णय न्यायालयों द्वारा तथा भारत में विशेष न्यायाधिकरणों के द्वारा किया जाता है। यदि कोई हारा हुआ प्रत्याशी प्रतिनिधि-सभा से अपने मामले पर विचार करने का अनुरोध करता है तो प्रतिनिधि-सभा अपनी तीन निर्वाचन समितियों में से किसी एक को मामले पर विचार करने को कहती है। समिति साक्ष्यों (evidences) पर विचार करती है, दोनों पक्षों के तर्क सुनती है तथा अपने निर्णय को एक आख्या (report) के रूप में प्रतिनिधि-सभा के सम्मुख प्रस्तुत करती है। प्राय: सदैव ही समिति की सिफारिशें सदन द्वारा अंगीकृत कर ली जाती हैं। यद्यपि संयुक्त राज्य में निर्वाचन सम्बन्धी विवादों की संख्या अधिक नहीं होती, परन्तु कुछ लोगों का विचार है कि इन पर विचार करने तथा निर्णय देने का कार्य एक न्यायिक मंडल को सौंपा जाना चाहिए जो ऐसे प्रश्नों पर दलीय दृष्टिकोण से विचार न करे। प्रो० ऑग और रे ने इस मत का समर्थन किया है।[२]

अपने सदस्यों की अर्हताओं पर विचार करने तथा निर्णय देने की शक्ति का प्रतिनिधि-सभा ने अत्यन्त विस्तृत अर्थ में प्रयोग किया है। प्रतिनिधि-सभा की सदस्यता के लिए आवश्यक अर्हताओं पर विचार करते समय राबर्ट्स (Roberts) और बर्जर के मामलों का उल्लेख किया जा चुका है। इन दोनों व्यक्तियों को प्रतिनिधि-सभा ने अपना सदस्य मानने से इस कारण इन्कार कर दिया था कि इनमें से प्रथम ने अनेक विवाह किये थे और द्वितीय को देशद्रोह के अपराध के लिए दंडित किया गया था।

प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों का कार्यकाल—प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों का कार्यकाल संविधान द्वारा दो वर्ष निर्धारित किया गया है। संविधान के

---

[१] अनुच्छेद १ धारा (५)

[२] "Party considerations are not unlikely to colour the decision (of the House), and the English plan of turning over such cases to a non-partisan and disinterested board selected from the judiciary is to be preferred."—Ogg and Ray, *Essentials of American Government*, p. 188.

निर्माण पर प्रकाश डालते समय यह उल्लेख किया जा चुका है कि सांविधानिक सम्मेलन के अनेक सदस्य प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों के प्रति वर्ष निर्वाचित किये जाने के पक्ष में थे। उनका विचार था कि ऐसा होने से प्रतिनिधियों को सदैव जनता का भय रहेगा, जिसके कारण वे कोई निरंकुशतापूर्ण कार्य न कर सकेंगे। अंततः सांविधानिक सम्मेलन ने इनके तर्क के औचित्य को ध्यान में रखते हुए प्रतिनिधि सभा के सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष निश्चित किया। सदस्यों का कार्यकाल कम रखने का जो परिणाम संविधान-निर्माताओं ने सोचा था, वह व्यवहार में अत्यंत विकृत रूप में उपस्थित हुआ। प्रतिनिधि सभा के अधिकांश सदस्य आज इसी चिन्ता में ग्रस्त रहते हैं कि वे अगले निर्वाचन में किस प्रकार विजय प्राप्त करेंगे। उन्हें इसी बात की सर्वाधिक चिन्ता रहती है कि वे अपने निर्वाचन क्षेत्र के अधिकाधिक व्यक्तियों को लाभ पहुँचा सकें—यथा उन्हें सरकारी पदों पर नियुक्त करा सकें, निर्वाचन-क्षेत्र में डाकखाने की नई इमारतें बनवा सकें, अस्पताल आदि खुलवा सकें तथा ऐसी ही अन्य सुविधाएँ उपलब्ध करा सकें। यदि कोई प्रतिनिधि ऐसा नहीं करता तो उसे अयोग्य समझा जाता है और अगले निर्वाचन में उसके जीतने की कम ही आशा रहती है।

प्रतिनिधि-सभा का कार्यकाल कम होने का कभी-कभी यह परिणाम होता है कि राष्ट्रपति एक राजनीतिक दल का होता है और प्रतिनिधि सभा में दूसरे दल का बहुमत हो जाता है। इस शताब्दी में राष्ट्रपति विल्सन, हूवर और ट्रूमन के कार्यकाल में ऐसा ही हुआ। राष्ट्रपति और प्रतिनिधि सभा का बहुमत भिन्न दल के होने पर अवांछनीय विवाद उठ खड़े होते हैं और गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए अनेक लोगों ने यह सुझाव दिया है कि प्रतिनिधि-सभा का कार्यकाल भी बढ़ा कर चार वर्ष कर दिया जाय। अन्य देशों के विधान-मण्डल के लोकप्रिय सदनों के कार्यकाल से तुलना करने पर हम पाते हैं कि प्रतिनिधि-सभा का कार्यकाल वस्तुतः कम है। इंग्लैंड, कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका तथा भारत में राष्ट्रीय विधानमण्डल के निम्न सदनों का निर्वाचन पाँच वर्ष के लिए होता है। सोवियत सङ्घ, स्वीडन, जापान, टर्की आदि में निम्न सदन का कार्यकाल चार वर्ष तथा लक्ज़ैम्बर्ग और पेरू में छः वर्ष है। इनसे तुलना करने पर हमें निश्चय ही प्रतिनिधि-सभा का कार्यकाल कम प्रतीत होगा। परन्तु यहाँ हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि संसदीय शासन-प्रणाली वाले देशों की भाँति

संयुक्त राज्य में कार्यपालिका को विधानमण्डल को विघटित करने का अधिकार नहीं है। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रतिनिधि सभा का कार्यकाल अधिक न हो। चार्ल्स बियर्ड ने प्रतिनिधि सभा की अल्पावधि को संयुक्त राज्य के संविधान की अवरोध और संतुलन प्रणाली का, जिसमें प्रतिनिधि-सभा सिनेट और राष्ट्रपति के विरुद्ध खड़ी की गई है, एक विशिष्ट लक्षण बताया है।[1]

सदस्यों का वेतन, भत्ते तथा विशेषाधिकार—प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों को आजकल १५,००० डालर वार्षिक वेतन तथा यात्रा आदि के लिए भत्ता मिलता है। गृह-युद्ध (१८६१-६५) के पूर्व उन्हें कोई बँधा हुआ वेतन नहीं मिलता था, वरन् सत्र के दिनों में प्रति दिन के हिसाब से भत्ता मिलता था। प्रारम्भ में उनका वेतन ३,००० डालर निश्चित किया गया था; परन्तु क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सन् १९२५ तक वह १०,००० डालर तक पहुँच गया। हाल में ही इसे बढ़ाकर १५,००० डालर कर दिया गया। वेतन तथा यात्रा भत्ते के अतिरिक्त उन्हें ९,५०० डालर वार्षिक साचिविक सहायता (Secretarial Assistance) के रूप में मिलता है। प्रत्येक सदस्य को डाक, तार तथा टेलीफोन की सुविधाओं का निःशुल्क उपयोग करने का अधिकार प्राप्त है। इन अधिकारों का सदस्यों द्वारा दुरुपयोग किया जाना अब सामान्य बात हो गई है। अनेक सदस्य अपनी पत्नी या बच्चों को अपना सचिव नियुक्त कर लेते हैं और इस प्रकार साचिविक भत्ते को अपने काम में लाते हैं। निःशुल्क डाक की सुविधा का उपयोग बक्से, फर्नीचर आदि भेजने तक के लिए किया जाता है।[2] न केवल सदस्य अपने आप ही इस सुविधा का मनमाने ढंग से उपयोग करते हैं, परन्तु कभी-कभी अपने दल के प्रचार के लिए भी इसे काम में लाते हैं। यदि इन सुविधाओं का दुरुपयोग न भी किया जाय, तो भी

[1] "While the two-year term for Representatives has been criticised as too short and as producing grave inconveniences, it is a feature of the general check and balance system in which the House is set over against the Senate and the President."—Charles Beard, *op. cit.*, p. 131.

[2] Zink, Harold, *op. cit.*, p. 333.

संभवत: प्रतिनिधि सभी के सदस्यों को अन्य समस्त देशों के विधायकों से अधिक वेतनादि मिलता है। उनका वेतन इंग्लैंड की कामंस सभा के सदस्यों के वेतन के चौगुने से भी अधिक है।

प्रतिनिधि सभा के सदस्य को कांग्रेस के सत्र में भाग लेने जाते समय अथवा वहाँ से आते समय किसी व्यवहार सम्बन्धी मामले (civil case) में बन्दी नहीं बनाया जा सकता। परन्तु उन्हें देशद्रोह, गम्भीर अपराध (felonies), अथवा शान्ति भंग करने पर बन्दी बनाया जा सकता है। किसी न्यायालय में उन पर सदन में दिये गए भाषण के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। इस विशेषाधिकार का कभी-कभी दुरुपयोग किया जाता है और सदस्य किसी व्यक्ति या संस्था पर सदन में झूठे अभियोग लगाते हैं। यदि प्रतिनिधि सभा स्वयं चाहे तो ऐसे सदस्यों के विरुद्ध कार्यवाही कर सकती है तथा उन्हें सदस्यता तक से वंचित कर सकती है। परन्तु सामान्यतः प्रतिनिधि-सभा सम्बन्धित सदस्य की हल्के शब्दों में भर्त्सना करने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्यवाही नहीं करती।

प्रतिनिधि सभा का अध्यक्ष तथा अन्य पदाधिकारी—संयुक्त राज्य के संविधान में प्रतिनिधि-सभा को अपना अध्यक्ष (Speaker) तथा अन्य पदाधिकारी चुनने का अधिकार दिया गया है।[1] यद्यपि संविधान में प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष के कृत्यों अथवा शक्तियों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है, परन्तु व्यवहार में यह पद अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। वस्तुत: एक समय तो यह स्थिति आ गई थी कि प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष की तुलना संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति से की जाने लगी थी।[2] यद्यपि अब प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष के पद का उतना महत्व नहीं रहा है, परन्तु फिर भी अध्यक्ष का पद अत्यन्त प्रभावशाली तथा प्रतिष्ठित पद है।

प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष के चुनाव की रीति तथा उसकी शक्तियों आदि पर विचार करने के पूर्व यहाँ यह उल्लेख कर देना विषयातिरेक न होगा कि

---

[1] अनुच्छेद १ धारा (२)

[2] देखिए मिस फालेट द्वारा उद्धृत स्पीकर सेमुएल जे० रैंडल का कथन (Follett, M. P., *The Speaker of the House of Representatives*, p. 112.)

प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष-पद का मूल-स्रोत ब्रिटेन की कामंस सभा (House of Commons) का अध्यक्ष-पद ही है। जब अमेरिका के ब्रिटिश उपनिवेशों में विधानमंडलों की स्थापना हुई तो उनके पीठासन-पदाधिकारी (Presiding Officer) के रूप में ब्रिटेन की कामंस सभा के अध्यक्ष (Speaker) के समरूप अधिकारी की ही व्यवस्था की गई। राज्यमंडल (Confederation) की कांग्रेस का पीठासन-पदाधिकारी भी अध्यक्ष ही कहलाता था तथा उसे महत्वपूर्ण प्राधिकार तथा प्रतिष्ठा प्राप्त थी। संयुक्त राज्य के संविधान के निर्माण के समय संविधान-निर्माताओं ने इस पद की उपयुक्तता और उपयोगिता को समझा और इसे संविधान में स्थान दिया। परन्तु उन्होंने उसकी शक्तियों आदि का उल्लेख न कर उसके प्राधिकारों के प्राकृतिक विकास का मार्ग अनवरुद्ध छोड़ दिया। इसके परिणामस्वरूप आज यद्यपि अमेरिकी प्रतिनिधि-सभा और ब्रिटिश कामंस सभा के अध्यक्षों में अनेक साम्य हैं परन्तु उनकी शक्तियों और प्रभाव आदि में महत्वपूर्ण अन्तर हैं। प्रतिनिधि-सभा का अध्यक्ष निश्चय ही कामंस सभा के अध्यक्ष से अधिक शक्तिसम्पन्न तथा प्रभावशाली होता है।

अध्यक्ष का चुनाव———वैधानिक दृष्टि से अध्यक्ष का चुनाव प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रत्येक दो वर्ष के पश्चात् अर्थात् अपने नव निर्वाचन के उपरान्त प्रथम सत्र में, किया जाता है। परन्तु वास्तव में अध्यक्ष का चुनाव प्रतिनिधि सभा के द्वारा न किया जाकर बहुमत दल के प्रधान नेताओं (Caucus) के द्वारा किया जाता है। प्रतिनिधि-सभा का सत्र आरम्भ होने के पूर्व ही वे परस्पर विचार-विमर्श कर यह निश्चित कर लेते हैं कि कौन व्यक्ति अध्यक्ष होगा। फिर प्रतिनिधि-सभा द्वारा चुनाव तो केवल औपचारिक ही होता है। यदि पिछली बार जिस दल का बहुमत था उसी दल को निर्वाचन के पश्चात् भी बहुमत प्राप्त होता है, और यदि पिछले कार्यकाल में जो व्यक्ति अध्यक्ष था वह पुनः निर्वाचित हो जाता है तो सामान्यतः उसी को पुनः अध्यक्ष चुन लिया जाता है। यदि दूसरे दल का बहुमत हो जाता है तो उस दल का व्यक्ति अध्यक्ष चुना जाता है।

अध्यक्ष पद की महत्वपूर्ण स्थिति के कारण केवल दल के पर्याप्त अनुभव-प्राप्त उच्च नेता को ही इस पद के लिये चुना जाता है। निर्वाचन में पिछली

बार के अल्पमत दल के बहुमत दल बन जाने पर सामान्यतः उस दल के पिछले सदन-नेता को ही अध्यक्ष बना दिया जाता है।

अध्यक्ष के कृत्य तथा शक्तियाँ—प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष के कृत्यों को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम वर्ग में वे कृत्य आएँगे जो उसे सदन के पीठासन-पदाधिकारी (Presiding Officr) होने के नाते करने पड़ते हैं। द्वितीय वर्ग में उसके वे कृत्य आते हैं जो अध्यक्ष की नियमों को निर्वचित (interpret) तथा लागू करने की शक्ति से संबंधित हैं। अध्यक्ष प्रतिनिधि सभा की बैठकों का सभापतित्व करता है, सदन में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखता है, तथा अनुचित कार्य करने वाले सदस्य को सावधान कर सकता है। यदि सदन में अशांति की स्थिति उत्पन्न हो जाय तो वह शांति स्थापन के लिए सार्जेंट (sergeant-at-arms) को बुला सकता है। सदन के प्रत्येक सदस्य को अध्यक्ष के निर्णय (ruling) को मानना पड़ता है। कोई भी सदस्य अध्यक्ष की अनुमति लिए बिना सदन में भाषण नहीं दे सकता। यदि अध्यक्ष चाहे तो वह केवल अपने मित्रों अथवा अपने दल के सदस्यों को ही भाषण देने का अवसर देकर वादविवाद के प्रवाह को ही परिवर्तित कर सकता है। सामान्यतः वह प्रत्येक विषय पर समर्थकों तथा विपक्षियों को बारी बारी से अवसर देता है, परन्तु वह ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है। व्यवस्था स्थापन के लिए आवश्यकता समझने पर वह दीर्घाओं (galleries) आदि को खाली कर सकता है। यदि किसी विषय पर मतदान कराने की आवश्यकता पड़ती है तो अध्यक्ष ही मतदान कराता है और उसके निर्णय की घोषणा करता है। प्रक्रिया और व्यवस्था संबंधी समस्त प्रश्नों पर निर्णय देना, कार्यक्रम की घोषणा करना तथा सदन द्वारा पारित समस्त विधियों, समावेदनों (addresses), आदेशों, प्रस्तावों आदि पर हस्ताक्षर करना प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष के कुछ अन्य प्रमुख कृत्य हैं। अध्यक्ष को यह भी शक्ति प्राप्त है कि वह तीन दिन के लिए अपने स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को पीठासन पदाधिकारी नियुक्त कर सकता है। अपनी अस्वस्थता की दशा में वह दस दिन के लिए अपने स्थान पर कार्य करने को किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। व्यवहार में अध्यक्ष प्रायः सदन के अन्य सदस्यों को अपने स्थान पर अस्थायी रूप से कार्य करने का अवसर प्रदान करते हैं।

अध्यक्ष को सदा से सदन के नियमों का निर्वचन करने तथा उनके विषय में उत्पन्न होने वाले समस्त विवादों पर निर्णय देने का अधिकार प्राप्त है। सदन बहुमत से अध्यक्ष की किसी नियम की व्याख्या को अस्वीकार कर सकता है परन्तु व्यवहार में सदन ऐसा आपवादिक अवसरों पर ही करता है। अध्यक्ष की सदन के नियमों का निर्वचन करने की शक्ति कितनी महत्वपूर्ण है इसका अनुमान हम इसी तथ्य से लगा सकते हैं कि अध्यक्ष टॉमस रीड ने इस शक्ति के अधीन पिछले सारे दृष्टांतों को भुलाकर यह निर्णय दिया था कि सदन में जो भी सदस्य उपस्थित हैं उन सब की यह देखते समय कि सदन में गणपूरक संख्या (quorum) है या नहीं, गणना कर ली जाय। इस व्याख्या ने विरोधी दल के सदस्यों की इस चाल को फलहीन बना दिया था, कि वे मतदान के समय अपना नाम पुकारे जाने पर उत्तर ही नहीं देते थे और फिर गणपूरक संख्या का अभाव बता कर सदन की कार्यवाही अवरुद्ध कर देते थे। अध्यक्ष ही विभिन्न विधेयकों को समितियों को सौंपता है। यदि कभी इस प्रश्न पर विवाद उत्पन्न होता है कि विधेयक किस समिति को सौंपा जाय तो अध्यक्ष ही उसका निर्णय करता है।

उपर्युक्त शक्तियों के अतिरिक्त अध्यक्ष को सदन के अन्य सदस्यों की भाँति वाद-विवाद में भाग लेने और मत देने का अधिकार होता है। सामान्यतः अध्यक्ष तभी मत देता है जब कि किसी प्रश्न पर ग्रंथि (tie) पड़ जाने के कारण उसका मत निर्णायक मत बन जाता है। यदि किसी प्रश्न पर दो-तिहाई बहुमत प्राप्त करने के लिए या गणपूर्ति (quorum) के लिए अध्यक्ष के मत की आवश्यकता पड़ती है तब भी वह मतदान करता है। यद्यपि अध्यक्ष अपनी इच्छानुसार वाद-विवाद में भाग लेने के लिए स्वतन्त्र है पर केवल महत्वपूर्ण प्रश्नों पर ही अध्यक्ष वाद-विवाद में भाग लेते हैं।

"सन् १९१०-११ की क्रांति" के पूर्व अध्यक्ष की अन्य शक्तियाँ—ऊपर प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष की वर्तमान शक्तियों का उल्लेख किया गया है; परन्तु सन् १९११ तक उसे कुछ अन्य अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त थीं। उस समय तक अध्यक्ष को समस्त स्थायी समितियों, एवं विशेष तथा सम्मेलन समितियों को नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त वह सदन की सबसे महत्वपूर्ण समिति—नियम समिति—का सभापति भी होता था। सन् १८९१

में नियम समिति को किसी भी समय किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोई भी नया नियम प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त हो गया था। इस अधिकार के कारण नियम-समिति का सदन द्वारा पारित किए जाने वाले समस्त विधेयकों पर पूर्ण नियंत्रण रहता था। इस समिति का सभापति होने तथा बहुमत दल का नेता होने के नाते अध्यक्ष की जिस विधेयक पर कृपादृष्टि हो जाती वह तुरन्त सदन के सामने प्रस्तुत होकर पारित हो जाता तथा अन्य विधेयक खटाई में ही पड़े रहते। समितियों के सदस्य नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त होने के कारण भी अध्यक्ष का प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया था और सदन के सदस्य उसके कृपाकांक्षी ही बने रहते थे। टॉमस रीड की अध्यक्षता के काल में तो निरंकुशता इस सीमा तक पहुँच गई थी कि सदन के सदस्य उसे "जार रीड" (Czar Reed) कहने लगे थे। टॉमस रीड के पश्चात् जोजेफ कैनान (Joseph G. Cannon) ने रीड की परम्परा को विद्यमान् रखा। जब स्थिति असह्य हो गई तो रिपब्लिकन दल के सदस्यों तथा डेमोक्रेटिक दल के एक अल्पमत गुट के सदस्यों ने अध्यक्ष के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उनके संयुक्त प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि सन् १९१० में अध्यक्ष को नियम समिति के सभापतित्व से वंचित कर दिया गया तथा सन् १९११ में समस्त स्थायी समितियों को नियुक्त करने का अधिकार प्रतिनिधि सभा ने अध्यक्ष से अपने हाथ में ले लिया।

अध्यक्ष की वर्तमान स्थिति—यद्यपि सन् १९१०-११ की "क्रांति" के फलस्वरूप अध्यक्ष के दो अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिकार छिन गये, परन्तु इसके कारण यह समझना कि अध्यक्ष सर्वथा अशक्त अथवा प्रभावहीन बन गया भ्रामक ही होगा। वस्तुतः स्थिति इसके विपरीत है। ऊपर अध्यक्ष की जिन वर्तमान शक्तियों का उल्लेख किया है वे पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि प्रत्येक विधान सभा में एक नेतृत्वकारी शक्ति की आवश्यकता होती है। ब्रिटिश कामंस सभा तथा संसदीय प्रणाली वाले अन्य देशों के विधानमंडलों में प्रधान मंत्री अथवा मंत्रिमंडल इस आवश्यकता की पूर्ति करता है। संयुक्त राज्य में शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त के कारण कार्यपालिका के सदस्य विधानमंडल से पृथक रहते हैं। अमेरिकी प्रतिनिधि-सभा का एक मात्र निर्वाचित अधिकारी अध्यक्ष होता है और वही उनके अभाव की पूर्ति करता है। बहुमत दल का नेता होने के कारण वह पूरे सदन का नेता होता है। डा० फाइनर ने

उसकी वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है : "वह अब भी कांग्रेस के उन थोड़े से नेताओं में से एक हैं जो "प्रशासनिक" विधेयकों के पारण के सम्बन्ध में राष्ट्रपति से वार्ता करते हैं। अब भी उसके दल की संचालन समिति तथा दल का नेता उससे मंत्रणा करते हैं तथा उन पर उसका प्रभाव रहता है। समितियों को काम सौंपने तथा कार्यक्रम निर्धारित करने में उसका प्रमुख हाथ रहता है क्योंकि वह अपने दल के सर्वप्रधान व्यक्तियों में से एक अथवा स्वयं सर्वप्रधान व्यक्ति होता है; वस्तुत: इसीलिए तो वह अध्यक्ष चुना जाता है। चार सौ पैंतीस सदस्यों वाले सदन में व्यवस्था तथा क्रम होना तो आवश्यक ही है और इसके लिए किसी न किसी को तो नेतृत्व की शक्ति सौंपी ही जायगी। सन् १९१० तक यह शक्ति अध्यक्ष और उसके इच्छित मित्रों में केन्द्रित थी; अब वह अध्यक्ष के मित्रों और अध्यक्ष के हाथों में केन्द्रित है। नेतृत्व एक समूह (Syndicate) या आयोग में केन्द्रित कर दिया गया है; परन्तु अध्यक्ष इस समूह का प्रधान सदस्य है।"[1]

प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष की ब्रिटिश कामन्स सभा के अध्यक्ष के तुलना—यद्यपि ब्रिटेन और संयुक्त राज्य दोनों के राष्ट्रीय विधानमंडल के निम्न

[1] "He is still one of the very small knot of Congressional leaders who treat with the President for passage of "administration" measures. He is still consulted by, and has great sway with, his party "steering" Committee and the floor leader of the majority party. He is still a major factor in deciding assignments to committees and the priority of business, because he is one of the most eminent, usually the most eminent of his party: that, indeed, is why he was elected speaker. Order and system in a House of four and thirty-five members there is bound to be, and the power of leadership must somewhere be lodged. While, until 1911, it was concentrated in the speaker and his friends by grace it is now concentraded in the speaker's friends and the speaker. Leadership has been "syndicated" or put into "commission", but the speaker is still the predominant member of the syndicate."—Finer, *op. cit.*, p. 480.

सदन के पीठासन-पदाधिकारियों में नाम की समानता है, परन्तु दोनों की शक्तियों और स्थिति में महत्वपूर्ण अन्तर हैं। ब्रिटेन में कामंस सभा के अध्यक्ष पद के लिए सामान्यतः निर्वाचन कराने की आवश्यकता नहीं पड़ती। पिछली कामंस सभा का अध्यक्ष प्रायः सदा ही अध्यक्ष पद के लिए निर्विरोध निर्वाचित कर लिया जाता है। यदि बहुमत दल अल्पमत दल बन जाय और अल्पमत दल बहुमत दल तो भी अध्यक्ष वही रहता है। परन्तु संयुक्त राज्य में ऐसा नहीं होता। नवीन निर्वाचन के पश्चात् पिछली प्रतिनिधि-सभा का अध्यक्ष उसी दशा में पुनः निर्वाचित किया जाता है जब कि उसके दल को पुनः बहुमत प्राप्त हो।

इस वैषम्य का कारण जानना कठिन नहीं। इंगलैंड में कामंस सभा के लिए निर्वाचित व्यक्ति दलगत राजनीति से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है; यहाँ तक कि न वह अपने दल की बैठकों में भाग लेता है और न दल के कोष में चन्दा आदि देता है। यही कारण है कि जिस निर्वाचन-क्षेत्र से कामंस सभा का अध्यक्ष सदन की सदस्यता के लिए खड़ा होता है, उस निर्वाचन क्षेत्र से सामान्यतः अन्य कोई राजनीतिक दल अपना प्रत्याशी नहीं खड़ा करता। इसके विपरीत संयुक्त राज्य में प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष पद के लिए चुना गया व्यक्ति न केवल अपने दल का सक्रिय नेता बना रहता है वरन् हर सम्भव वैधानिक उपाय से अपने दल को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करता है। प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष द्वारा अपने दल के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाना असामान्य अथवा आश्चर्यजनक बात नहीं है। प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष का ब्रिटेन की कामंस सभा के अध्यक्ष की भाँति सदन में स्थान आरक्षित (reserved) नहीं रहता, इस कारण उसे भी अपने निर्वाचन-क्षेत्र के लोगों को वैयक्तिक लाभ पहुँचाकर संतुष्ट और प्रसन्न रखना पड़ता है। वस्तुस्थिति यह है कि अध्यक्ष बनने के बाद अपने राजनीतिक दल से उसके सम्बन्ध टूटते नहीं, और दृढ़ हो जाते हैं। फाइनर ने तो स्पष्ट शब्दों में प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष को "गम्भीरतम अर्थ में पक्षपाती" तथा "बहुमत का घोषित अभिकर्ता (एजेंट)" कहा है।[1]

---

[1] Finer, *op. cit.*, p. 477.

ब्रिटेन की कामंस सभा और संयुक्त राज्य की प्रतिनिधि सभा के अध्यक्षों में न केवल उपर्युक्त अन्तर ही हैं वरन् उनकी शक्तियों में भी महान् अन्तर है। निश्चय ही अमेरिकी अध्यक्ष को विधि-निर्माण पर कामंस सभा के अध्यक्ष से अधिक नियंत्रण प्राप्त रहता है। सन् १९११ तक तो प्रत्येक विधेयक के भाग्य का निर्णय करना उसके हाथ में पूर्ण रूप से था ही, अभी भी इस दिशा में वह बहुत कुछ कर सकता है।

विधेयकों के संचालन (steering) तथा कार्यक्रम-निर्धारण से संबंधित अनेक ऐसी शक्तियाँ जो इङ्गलैंड में मंत्रिमंडल को प्राप्त हैं, अमेरिका में प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष द्वारा प्रयुक्त की जाती हैं। शक्तियों के इस अन्तर के अतिरिक्त दोनों की प्रतिष्ठा और स्थिति के अन्तर का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। संयुक्त राज्य में राष्ट्रपति के अतिरिक्त सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति प्रतिनिधि-सभा का अध्यक्ष ही होता है। इङ्गलैंड की कामंस सभा के अध्यक्ष की स्थिति किसी भी प्रकार उसके समरूप नहीं है।

प्रतिनिधि सभा की समितियाँ (Committees)

वर्तमान काल में प्रत्येक जनतांत्रिक देश में विधि-निर्माण में विधानमांडलिक समितियों का महत्व बढ़ता ही जा रहा है। विधानमंडलों के पास इतना अधिक काम रहता है कि वे प्रत्येक विषय पर स्वयं विचार नहीं कर सकते। इसी कारण वे अधिकांश मामलों को अपनी समितियों को सौंप देते हैं जो उन पर विचार करती हैं और अपनी सिफारिशों से युक्त आख्याएँ सदन के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। सामान्यतः सदन इन्हीं आख्याओं को अंगीकृत कर लेता है। संयुक्त राज्य की शासन प्रणाली में तो समितियों का इतना अधिक महत्व है कि उन्हें "प्रतिनिधि सभा के वास्तविक विधानमांडलिक निकाय[१]" "लघु विधानमंडल"[२], तथा "प्रतिनिधि सभा की आँख, कान, हाथ तथा मस्तिष्क"[३] आदि नामों से सम्बोधित

[१] "Real legislative bodies of the House."—Finer, *op. cit.*, p. 497.

[२] "Little legislatures."—Senator Hoar as quoted by Wilson in *Congressional Government*, p. 103.

[३] "The eye, the ear, the hand and very often the brain of the House."—Speaker Reed's opinion quoted by Jefferson in *Manual and Rules of the House of Representatives*, p. 59.

किया जाता है। समय-समय पर समितियों की संख्या घटती-बढ़ती रही है तथा उनकी नियुक्ति आदि की प्रणाली में भी परिवर्तन हुए हैं, पर उनका महत्व कभी कम नहीं हुआ।

समितियों के प्रकार—प्रतिनिधि सभा में कई प्रकार की समितियाँ कार्य करती हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थायी समितियाँ (Standing Committees) होती हैं। प्रायः "समिति" शब्द स्थायी समिति के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। अन्य प्रकार की समितियों के नाम निम्नलिखित हैं—सकल सदन समिति (the Committee of the Whole), सम्मेलन समितियाँ (Conference Committees), विशेष समितियाँ (Special Committees) तथा संयुक्त समितियाँ (Joint Committees)।

स्थायी समितियाँ—प्रारम्भ में स्थायी समितियों की संख्या अधिक नहीं थी, परन्तु उसमें धीरे-धीरे निरन्तर वृद्धि होती गई। सन् १९२६ तक प्रतिनिधि-सभा की स्थायी समितियों की संख्या इकसठ हो गई थी। इनमें से अनेक समितियाँ ऐसी थीं जिनके पास कोई काम ही नहीं रहता था, अथवा बहुत कम काम रहता था। इसी कारण सन् १९२७ में समितियों का पुनर्गठन किया गया और उनकी संख्या घटा कर सैंतालिस कर दी गई। सन् १९४६ में पुनः यह अनुभव किया गया कि सदन की समितियों की संख्या बहुत अधिक है, उनमें से अनेक के पास कोई कार्य नहीं है और उनमें अकारण ही क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) सम्बन्धी विवाद उत्पन्न होते रहने से गतिरोध हो जाता है। इस वर्ष कांग्रेस के सङ्गठन के सम्बन्ध में आख्या प्रस्तुत करने के लिए एक संयुक्त समिति नियुक्त की गई। इसी संयुक्त समिति की सिफारिशों के आधार पर विधानमाण्डलिक पुनर्सङ्गठन अधिनियम (१९४६) पारित किया गया। इस अधिनियम ने समितियों की संख्या आधी से भी कम कर दी। अब प्रतिनिधि सभा में केवल उन्नीस समितियाँ रह गई हैं। इन समितियों के नाम तथा प्रत्येक के सदस्यों की संख्या निम्नलिखित है :

१. कृषि, ३०
२. विनियोग (Appropriations), ४५
३. सायुध सेवाएँ (Armed services), ३६

४. बैंकिंग और करेंसी, २७
५, कोलम्बिया जिला, २५
६. शिक्षा तथा श्रम, २५
७. कार्यपालिका विभागों में व्यय, २४
८. वैदेशिक मामले
९, प्रतिनिधि सभा प्रशासन
१०. अन्तर्राज्यिक तथा वैदेशिक वाणिज्य, २८
११. न्यायपालिका, २७
१२. व्यापारिक पोत तथा मत्स्यक्षेत्र (Merchant Marine and Fisheries), २५
१३. डाकखाने तथा लोक सेवाएँ, २५
१४. सार्वजनिक भूमि, २८
१५. सार्वजनिक कार्य २७
१६. नियम, १२
१७. अमेरिका-विरोधी कार्यवाहियाँ, २७
१८. वयोवृद्ध सम्बन्धी मामले (Veterans Affairs), २७
१९. अर्थोपाय (Ways and Means), २५

उपरोक्त समितियों में अर्थोपाय-समिति, नियम-समिति, विनियोग-समिति, न्याय-समिति, अन्तर्राज्यिक तथा वैदेशिक वाणिज्य-समिति आदि कुछ समितियाँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इन समितियों की सदस्यता के लिए प्रतिनिधि विशेष रूप से उत्सुक रहते हैं। इनमें से किसी एक की सदस्यता प्राप्त हो जाने पर एक प्रतिनिधि दूसरी किसी समिति का सदस्य नहीं हो सकता।

कोई भी विधेयक बिना किसी स्थायी समिति के पास गए, विधि का रूप नहीं ले सकता; यहाँ तक कि राष्ट्रपति के संदेश को भी एक स्थायी समिति के पास विचारार्थ भेजा जाता है। ये समितियाँ यदि चाहें तो किसी विधेयक पर अपनी आख्या प्रस्तुत न कर उसके अंत का कारण बन सकती हैं। स्थायी

समितियों में नियम-समिति भी सम्मिलित है जिसे सन् १९४९ तक इतने विस्तृत अधिकार प्राप्त थे कि यह जिस विधेयक को चाहती, समाप्त कर सकती थी। इसका कारण यह था कि इस समिति के द्वारा ही यह निश्चय किया जाता था कि सदन के समक्ष कौन विधेयक किस समय उपस्थित किया जाएगा तथा उस पर कितनी देर वाद-विवाद होगा। सन् १९४९ में प्रतिनिधि-सभा ने एक नया नियम पारित किया। अब विषय समितियों के अध्यक्ष किसी ऐसे विधेयक को जिसे उनकी समिति ने स्वीकृत कर लिया हो पर जिसे नियम समिति इक्कीस दिन तक कार्य-क्रम में स्थान न दे किसी मास के द्वितीय अथवा चतुर्थ सोमवार को सदन में प्रस्तुत कर सकते हैं। परन्तु अब भी यदि सदन का अध्यक्ष चाहे तो उन्हें बोलने का अवसर न देकर किसी विधेयक का अंत कर सकता है।

उप-समितियाँ—आजकल महत्वपूर्ण समितियों के पास काम इतना अधिक रहता है कि वे कभी-कभी उसका कुछ भाग उपसमितियों (sub-committees) को सौंप देती है। ये उपसमितियाँ मुख्य समितियों के द्वारा ही नियुक्त की जाती है। ये समितियाँ अपनी आख्या सदन के सम्मुख प्रस्तुत न कर अपनी मुख्य समिति के समक्ष प्रस्तुत करती है। इनके सभापति की नियुक्ति करते समय ज्येष्टता के नियम (seniority rule) का ध्यान नहीं रखा जाता, इस कारण सदन का कोई नया सदस्य भी किसी उपसमिति का सभापति बन सकता है।

विशेष समितियाँ—समय समय पर प्रतिनिधि सभा कुछ विशेष समितियाँ (Special Committees) नियुक्त करती है, जो इङ्गलैंड की कामन्स सभा की प्रवर समितियों(Select Committees) के समरूप होती हैं। ये समितियाँ किसी विशेष तथा असामान्य प्रश्न या विधेयक पर विचार करने के लिए नियुक्त की जाती हैं और अपना कार्य समाप्त करने के उपरांत विघटित हो जाती हैं। प्रतिनिधि सभा आवश्यकता समझने पर अनुसंधान समितियाँ (Committees of Investigation) भी नियुक्ति कर सकती है जिनका कार्य उसके सम्मुख उपस्थित करने के लिए तथ्य तथा आंकडे एकत्र करना होता है। ये समितियाँ साक्षियों (witnesses) को बुला सकती हैं और उनसे शपथ दिला कर जानकारी प्राप्त कर सकती हैं। संयुक्त राज्य की कांग्रेस में इंगलैंड की पार्लमेंट की भाँति मंत्रिगण सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उपस्थित नहीं रहते, इसी कारण इन समितियों का महत्व और अधिक होता है।

सम्मेलन समितियाँ—सम्मेलन समिति एक विशिष्ट प्रकार की विशेष समिति होती है जिसकी नियुक्ति प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष द्वारा की जाती है। जब प्रतिनिधि-सभा और सिनेट में किसी विधेयक पर विवाद उत्पन्न हो जाता है, अर्थात् उन में से एक जिस रूप में विधेयक को पारित करता है उससे दूसरा सहमत नहीं होता, तब दोनों सदनों के बीच मतैक्य स्थापित करने के लिए दोनों सदनों के पीठासन-पदाधिकारी (Presiding Officers) सम्मेलन समितियाँ नियुक्त करते हैं। सामान्यतः इनके सदस्यों की संख्या तीन होती है। दोनों सदनों की सम्मेलन समितियाँ विचार-विमर्ष के द्वारा पारस्परिक मतभेद को दूर करने का प्रयत्न करती हैं। अपने उद्देश्य में ये सफल हों या असफल, इन्हे अपने सदन के समक्ष आख्या प्रस्तुत करनी होती है। इनका कार्य एक दिन या एक घंटे में ही समाप्त हो सकता है अथवा सप्ताहों या महीनों में। इन्हें यह विशेषाधिकार प्राप्त होता है कि ये अपनी आख्या किसी भी समय प्रस्तुत कर सकती हैं।

संयुक्त समितियाँ—कभी-कभी कांग्रेस के दोनों सदन किसी प्रश्न पर विचार करने के लिए एक संयुक्त समिति (Joint Committee) नियुक्त करते हैं। ऐसी समितियों के उदाहरण के रूप में कांग्रेस के संगठन से सम्बन्धित संयुक्त समिति तथा अणुशक्ति सम्बन्धी संयुक्त समिति के नाम लिए जा सकते हैं।

सकल सदन समिति—कभी-कभी प्रतिनिधि सभा कुछ प्रश्नों पर विचार करने के लिए सकल समिति (Committee of the Whole) के रूप में कार्य करती है। प्रतिनिधि सभा के ऐसी समिति के रूप में कार्य करने का उद्देश्य औपचारिक बंधनों को दूर कर काम को शीघ्रतापूर्वक निबटाना होता है। सदन की सामान्य बैठकों तथा सकल सदन समिति की बैठकों में कुछ महत्वपूर्ण अन्तर होते हैं। सकल सदन समिति की बैठकों का सभापतित्व अध्यक्ष (Speaker) नहीं करता, वरन् कोई सदस्य उसका स्थान ग्रहण करता है। इन बैठकों में गणपूर्ति संख्या १०० होती है, तथा प्रक्रिया सम्बन्धी जटिल नियम लागू नहीं होते। कोई सदस्य पाँच मिनट से अधिक तब तक नहीं बोल सकता जब तक समिति उसे सर्वसम्मति से इसकी अनुमति दे दे। इससे सदस्यों को एक बड़ी संख्या को अपने विचार प्रकट करने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

समितियों की नियुक्ति—प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष की शक्तियों पर विचार

करते समय यह उल्लेख किया जा चुका है कि सन् १९११ तक स्थायी समितियों को नियुक्त करने का अधिकार अध्यक्ष को प्राप्त था, परन्तु उस वर्ष उसे इस अधिकार से वंचित कर दिया गया। तब से निरंतर समितियों की नियुक्ति प्रतिनिधि सभा द्वारा स्वयं की जाती है। परन्तु यह केवल वैधानिक दृष्टि से ही सत्य है। वस्तुस्थिति यह है कि प्रतिनिधि सभा जिस प्रकार अपने अध्यक्ष का निर्वाचन करते समय बहुमत दल के प्रत्याशी के नामांकन की पुष्टि मात्र करती है, उसी पुकार समितियों के निर्वाचन में भी वह दलीय नेताओं के चुनाव की ही पुष्टि करती है। नव-निर्वाचित कांग्रेस का सत्र आरम्भ होते ही प्रत्येक दल के नेताओं का मण्डल (Caucus) समितियों के सदस्यों का चुनाव करने के लिए एक 'समितियों की समिति' (Committee on Committees) अथवा चुनाव-समिति (Committee of Selection) नियुक्त करता है। सर्वप्रथम् बहुमत दल की समिति यह निश्चित करती है कि किस समिति में किस दल के कितने सदस्य रहेंगे। सामान्यतः समितियों में संयुक्त राज्य के दो प्रमुख दलों, रिपब्लिकन और डेमोक्रेट, के ही सदस्य रहते हैं और समितियों में भी उनका अनुपात लगभग वही होता है जो सदन में उनके सदस्यों का होता है। यह मालूम हो जाने पर कि किस समिति में उसके कितने सदस्य रहेंगे, प्रत्येक दल विभिन्न समितियों के लिए अपने दल के सदस्य चुनता है और इसमें उसे पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। इस प्रकार प्रत्येक दल के द्वारा जो सूची तैयार की जाती है, सदन अपनी बैठक में उसकी पुष्टि कर देता है। प्रायः सदन का एक सदस्य जब एक समिति का सदस्य निर्वाचित हो जाता है, तब वह उसी दशा में उसकी सदस्यता से वंचित किया जाता है जब या तो वह निर्वाचित होने में असफल रहे, अथवा उसके दल को पहले की अपेक्षा बहुत कम स्थान प्राप्त हों। इसी कारण दलों की 'समितियों की समिति' सामान्यतः रिक्त स्थानों के ही लिए सदस्यों को चुनती है। सारे स्थानों के लिए नहीं।

अधिकांश पर्यवेक्षकों का यही विचार है कि अध्यक्ष से समितियों के सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार प्रतिनिधि-सभा के द्वारा अपने हाथ में ले लिये जाने से वस्तुस्थिति में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि समितियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में जो परिपाटियाँ सन् १९११ तक प्रचलित थीं, वे ही अभी भी प्रचलित हैं। परिपाटी के अनुसार समितियों की सदस्यता सदन

के ज्येष्ठ सदस्यों को ही प्रदान की जाती है और कोई नया सदस्य अधिक से अधिक किसी महत्वरहित समिति का सदस्य ही बन सकता है। सदस्यों के निवास-स्थान का भी ध्यान रखा जाता है क्योंकि सभी सदस्य देश के एक ही भाग से नहीं लिए जा सकते। सदस्य की वैयक्तिक पसन्द का भी ध्यान रखा जाता है। अन्ततः यह कहना अनुचित न होगा कि महत्वपूर्ण समितियों में उन्हीं सदस्यों को स्थान मिलता है जिन पर दलीय नेताओं की कृपादृष्टि हो।

समितियों के सभापति—सामान्य बुद्धि के आधार पर हम यह आशा करेंगे कि समितियों के सभापति वही सदस्य बनाए जाते होंगे जो सर्वाधिक योग्य, अनुभवी तथा ज्ञाता हों। परन्तु यथार्थ स्थिति इससे बिलकुल भिन्न है। समितियों के सभापति योग्यता के आधार पर नहीं, ज्येष्ठता (Seniority) के आधार पर चुने जाते हैं। यह एक भली भाँति पुष्ट प्रथा बन गई है कि समिति का सभापति बहुमत दल का वह व्यक्ति बनाया जाता है जो समिति का सर्वाधिक काल तक सदस्य रहा हो। इस प्रथा के कारण कभी-कभी अपेक्षाकृत अयोग्य व्यक्ति भी महत्वपूर्ण समितियों के सभापति बन जाते हैं। इस प्रथा के दोष स्पष्ट ही हैं और इसकी आलोचना भी बहुत अधिक हुई है। परन्तु इसका एक महत्वपूर्ण गुण भी है। इससे उन सब विवादों, षड्यन्त्रों तथा गतिरोधों का अन्त हो जाता है जो सम्भवतः इस नियम के न माने जाने पर प्रति दो वर्ष के पश्चात् उत्पन्न होते हैं।[१] इस प्रथा के पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा गया है और कहा जा सकता है, परन्तु इतना निश्चित है कि निकट भविष्य में इसके त्यागे जाने की कोई सम्भावना नहीं है। सन् १९४५ की कांग्रेस के पुनर्गठन से संबधित संयुक्त समिति ने अनेक महत्वपूर्ण सुधारों के सुझाव दिए, परन्तु वह भी इस प्रथा के उन्मूलन का सुझाव न दे सकी।

सभापति को समिति का कार्यक्रम निश्चित करने, उपसमितियाँ तथा समिति के कर्मचारी नियुक्त करने, तथा समिति के विनिश्चयों की सूचना सदन को देने की शक्ति प्राप्त रहती है। कुछ काल पूव तक सभापति अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर सदस्यों का मत जाने बिना ही विनिश्चय कर दिया करते थे। यद्यपि अब

[१] Ogg and Ray, *Essentials of American Government*, p. 204.

ऐसा नहीं होता, परन्तु फिर भी सभापतिपद, विशेषत: किसी महत्वपूर्ण समिति का सभापतिपद, विशेष महत्व का पद होता है।

प्रतिनिधि सभा की शक्तियाँ तथा कृत्य

संविधान द्वारा कांग्रेस को जो शक्तियाँ प्रदान की गई हैं उनमें से अधिकांश कांग्रेस के दोनों सदनों द्वारा संयुक्त रूप से ही प्रयुक्त की जा सकती हैं। ऐसी शक्तियों पर हम एक अगले अध्याय में विचार करेंगे। परन्तु कांग्रेस के दोनों सदनों को कुछ विशेष शक्तियाँ भी प्राप्त हैं जिन्हें वे पृथक् रूप से प्रयोग कर सकते है। इन्हीं को दोनों सदनों के विशेषाधिकारों (prerogatives) के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। यहाँ हम प्रतिनिधि सभा के विशेषाधिकारों पर विचार करेंगे।

प्रतिनिधि सभा के विशेषाधिकारों के रूप में उसकी निम्न तीन शक्तियों की गणना की जा सकती है :

१. राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा अन्य असैनिक पदाधिकारियों के विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाही आरम्भ करना;

२. राजस्व सम्बन्धी विधेयकों का सूत्रपात करना; तथा

३. विशेष परिस्थिति में राष्ट्रपति का निर्वाचन करना।

प्रतिनिधि सभा के प्रथम विशेषाधिकार के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह केवल महाभियोग (Impeachment) की कार्यवाही का सूत्रपात ही कर सकती है; उस पर सुनवाई तथा निर्णय सिनेट के द्वारा किया जाता है। इस कारण इस अधिकार का महत्व बहुत अधिक नहीं है। यह अधिकार उसी स्थिति में महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है जब सिनेट राष्ट्रपति या किसी अन्य अधिकारी को महाभियोग के द्वारा पदच्युत करना चाहती हो, पर प्रतिनिधि-सभा महाभियोग की कार्यवाही आरम्भ ही न करे। व्यवहार में महाभियोग का बहुत कम प्रयोग किया जाता है और इसे अन्तिम उपाय के रूप में ही अपनाया जाता है।

प्रतिनिधि-सभा का कोई भी सदस्य किसी पदाधिकारी के विरुद्ध महाभियोग का प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है। महाभियोग राष्ट्रद्रोह, घूसखोरी, दुर्व्यवहार

अथवा किसी अन्य घोर अपराध के लिए चलाया जाता है। यह निर्णय करना कि किन अपराधों को दुर्व्यवहार तथा घोर अपराधों की श्रेणी में गिना जाय, प्रतिनिधि-सभा का ही कार्य है। सदन के समक्ष महाभियोग का प्रस्ताव आने पर वह उसे न्यायिक समिति (Judicial Committee) को विचारार्थ सौंप देता है और उसकी आख्या प्राप्त करने के उपरांत उस पर स्वयं विचार करता है। यदि सदन का बहुमत महाभियोग चलाने के पक्ष में होता है तो महाभियोग का प्रस्ताव सिनेट के पास विचार तथा निर्णय के लिए भेज दिया जाता है। इस सम्बन्ध में प्रतिनिधि-सभा का कार्य यहीं समाप्त हो जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिनिधि-सभा का कार्य न्यायवादी या ग्रांड जूरी के कार्य के समान है।

यद्यपि राजस्व-विधेयक प्रतिनिधि सभा में ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं, परन्तु सिनेट को उनमें संशोधन प्रस्तुत करने का असीमित अधिकार है। जब तक सिनेट उस पर अपनी सहमति न दे दे तब तक कोई भी राजस्व विधेयक विधि का रूप नहीं ले सकता। इस कारण प्रतिनिधि सभा का यह विशेषाधिकार भी व्यवहार में अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।

राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया पर विचार करते समय उस परिस्थिति का उल्लेख किया जा चुका है जब प्रतिनिधि सभा राष्ट्रपति को निर्वाचित कर सकती है। संक्षेप में, वह ऐसा तभी कर सकती है जब राष्ट्रपति-पद के लिए चुनाव लड़ने वाले किसी प्रत्याशी को निर्वाचकों की पूर्ण संख्या का बहुमत प्राप्त न हो। अभी तक केवल दो बार ही राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रतिनिधि-सभा के द्वारा किया गया है। इस कारण इस अधिकार का महत्व भी अत्यन्त सीमित है।

प्रतिनिधि-सभा की तुलनात्मक स्थिति तथा उसकी दुर्बलता के कारण

सामान्यतः द्विआगरिक विधानमण्डल वाले राज्यों में प्रथम सदन द्वितीय सदन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है और इसी कारण उसकी अधिक प्रतिष्ठा होती है। परन्तु संयुक्त राज्य में कांग्रेस के द्वितीय सदन, सिनेट, की तुलना में प्रथम सदन, 'प्रतिनिधि सभा, दुर्बल और अशक्त है और इसी कारण उसे अन्य देशों के प्रथम सदनों जैसा सम्मान भी प्राप्त नहीं है। प्रो० लास्की ने इसके कार्यकरण पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि यह उन कृत्यों को करने में, जिनके

करने की इससे आशा की जानी चाहिए, बुरी तरह असफल रहा है।[1] यहाँ हम संक्षेप में प्रतिनिधि-सभा के निर्बल होने तथा अपने कृत्यों को पूरा करने में असफल रहने के कारणों पर विचार करेंगे।

प्रतिनिधि सभा के दुर्बल होने का एक प्रमुख कारण यह है कि इसे शासन के कार्याङ्ग पर नियन्त्रण रखने का कोई प्रत्यक्ष साधन उपलब्ध नहीं है। न तो यह ब्रिटेन की कामन्स सभा की भाँति कार्यपालिका को पदत्याग के लिए विवश कर सकती है और न सिनेट के समान उसके द्वारा की गई संधियों और नियुक्तियों की पुष्टि करने से इन्कार कर उससे अपनी बात मनवा सकती है। यद्यपि विधि-निर्माण में सिनेट और प्रतिनिधि सभा "दोनों को लगभग पूर्णतः समान शक्तियाँ प्राप्त हैं, परन्तु सिनेट के विशेषाधिकार प्रतिनिधि सभा के विशेषाधिकारियों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण हैं।

प्रतिनिधि सभा का संक्षिप्त कार्यकाल तथा वृहताकार भी उसकी दुर्बलता के प्रमुख कारण हैं। उसके सदस्यों को सदा आगामी निर्वाचन की चिंता बनी रहती है और इस कारण वे अपने निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाताओं को तुष्ट करने में ही लगे रहते हैं। इसके विपरीत सिनेट के सदस्यों का कार्यकाल अपेक्षाकृत अधिक लम्बा होता है और वे स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सकते हैं। अपने वृहताकार के कारण प्रतिनिधि-सभा के वाद-विवाद भी अनेक अवरोधों से युक्त तथा अपेक्षाकृत निम्न कोटि के होते हैं। इसके विपरीत सिनेट में वाद-विवाद पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता और सिनेट-सदस्यों के अनुभवी होने के कारण उनकी वक्तृताएँ जनता का ध्यान आकर्षित करने में अपेक्षाकृत अधिक सफल होती हैं।

प्रतिनिधि-सभा की रचना पर विचार करते समय क्षेत्र-नियम (locality rule) का उल्लेख किया जा चुका है। इसके कारण अनेक योग्य और अनुभवी व्यक्ति कभी भी प्रतिनिधि-सभा के सदस्य नहीं हो सकते। सिनेट के लिए निर्वाचित होने में ऐसा कोई बंधन न होने के कारण योग्य, अनुभवी और

---

[1] "The House of Representatives, in short has, gravely to failed fulfil the functions it might have been expected to perform." Laski,—H. J., *American Democracy*, p .48.

महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति उसी के सदस्य होना अधिक पसंद करते हैं। इसी कारण जनता की दृष्टि में सिनेट को अधिक सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त है।

ब्रिटिश कामंस सभा की तुलना में प्रतिनिधि-सभा के अशक्त होने का एक अन्य प्रमुख कारण यह है कि जहाँ ब्रिटिश लार्ड सभा कामंस सभा द्वारा पारित विधेयकों को विधि बनने से अधिक से अधिक एक वर्ष तक रोक सकती है, वहाँ अमेरिकी सिनेट की सहमति के बिना प्रतिनिधि-सभा द्वारा पारित कोई विधेयक कभी भी विधि नहीं बन सकता। इस कारण प्रतिनिधि-सभा ब्रिटिश कामंस सभा की तुलना में अत्यधिक अशक्त दीखती है। ब्रिटिश कामंस सभा को लार्ड सभा की तुलना में अधिक प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त होने का एक कारण यह है कि वह जनता का प्रतिनिधित्व करती है जबकि लार्ड सभा वैसा नहीं करती। अमेरिका में कांग्रेस के दोनों ही सदन समान रूप से जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं और इस कारण उनमें से कोई भी विशेष सम्मान का दावा नहीं कर सकता। वस्तुत: सिनेट न केवल जनता का ही प्रतिनिधित्व करती है वरन् राज्यों का भी। इस कारण भी उसका महत्व अधिक है।

प्रतिनिधि-सभा के अशक्त होने का अंतिम परन्तु अत्यधिक महत्वपूर्ण कारण यह है कि इसके अधिकांश सदस्य स्वयं ही अपने कार्य की उपेक्षा करते हैं। उन्हें राष्ट्र-हित की चिंता नहीं रहती वरन् अपने निर्वाचन-क्षेत्र के प्रभावशाली व्यक्तियों और समुदायों को प्रसन्न रखने का ही अधिक ध्यान रहता है। अनेक बार प्रतिनिधि-सभा को गणपूर्ति न होने के कारण अपनी कार्यवाही स्थगित कर देनी पड़ती है। सदस्यों को यह सुविधा उपलब्ध है कि वे सदन में अपना भाषण दिये बिना ही उसे सदन की कार्यवाही में प्रकाशित कर सकते हैं। ऐसी दशा में उनके द्वारा अपने कार्य की उपेक्षा करना अस्वाभाविक नहीं है, सदस्य इस कारण भी अपने कार्य में रुचि नहीं लेते कि उनकी सेवाओं और योग्यता का सदन में उचित सम्मान नहीं होता। ब्रिटिश कामंस सभा का सदस्य मन्त्री होने के स्वप्न देख सकता है, प्रतिनिधि-सभा का सदस्य नहीं। अधिक से अधिक वह किसी महत्वपूर्ण समिति का सभापति हो सकता है और उसके लिए ज्येष्ठता-नियम (Seniority rule) के कारण किसी प्रयत्न की आवश्यकता ही नहीं होती। ज्येष्ठता के अनुसार अपनी बारी आने पर सदस्य स्वयमेव समिति का सभापति बन जाता है।

यही सब कारण है जिनसे प्रतिनिधि-सभा दुर्बल सिद्ध हुई है। उसके सदस्य सिनेट के सदस्य होने के सदैव इच्छुक रहते हैं। यह उसकी हीनावस्था का सबसे पुष्ट प्रमाण है।

सुधार के लिए दिये गये सुझाव—अधिकांश आलोचकों ने इस बात पर जोर दिया है कि सदन को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिये ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की बहुत सी प्रथाओं को अपना लेना चाहिये। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि अमेरिकी प्रणाली में पूर्णरूपेण सुधार किये बिना ऐसा संभव नहीं है। नीचे कुछ आलोचकों द्वारा सुझाए गए महत्वपूर्ण सुधारों का उल्लेख किया गया है।

(१) राष्ट्रपति तथा उसके मंत्रिमंडल को सदन के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये; (२) कार्यकारिणी के सदन को भंग करने का अधिकार दिया जाना चाहिये; (३) सदन का कार्यकाल बढ़ाया जाय; (४) कार्यकारिणी तथा व्यवस्थापिका में अधिक सौहार्द्र तथा सहयोग होना चाहिये।

यह सभी सुधार ब्रिटिश प्रणाली पर आधारित हैं और इनको अपनाने से अमेरिका के संविधान के मूलभूत तत्व ही नष्ट हो जायँगे।

इसके अतिरिक्त कुछ लोगों का विचार है कि सदन अपनी दूषित निर्वाचन प्रणाली के कारण लोकमत का ठीक प्रतिनिधित्व नहीं करता है। बियर्ड महोदय ने अपनी पुस्तक 'अमेरिकन गवर्नमेंट ऐन्ड पॉलिटिक्स, में इसका एक उदाहरण दिया है। १९४२ के निर्वाचन में रिपब्लिकन दल को ५०·६% मत मिले तथा डैमोक्रेट दल को ४७·४ मत मिले, परन्तु फिर भी बहुमत डैमॉक्रेट दल का ही रहा। १९?० के निर्वाचन में पैनिसिल्वानिया राज्य में रिपब्लिकन दल को १,११४,००० मत तथा ३५ स्थान मिले जबकि ६०१,००० मत पाने वाले डैमोक्रेट तथा अन्य छोटे दलों को केवल एक स्थान मिला। इस कारण कुछ लोग आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) प्रणाली को अपनाने के पक्ष में हैं। परन्तु इंग्लैण्ड की भाँति अमेरिका में भी लोग द्विदलीय पद्धति (Two Party System) को नष्ट करने के पक्ष में नहीं है और इस कारण इस सुधार के अपनाये जाने की भी कोई संभावना नहीं है।

[1]Beard, C. A., *American Government and Politics*, p. 127.

अध्याय ११

सिनेट

गत अध्याय में हम उन कारणों पर विचार कर चुके हैं जिनसे प्रेरित होकर संविधान-निर्माताओं ने संयुक्त राज्य के लिए एक द्विआगरिक विधानमंडल की व्यवस्था की। कांग्रेस के प्रथम सदन की रचना, संगठन तथा शक्तियों आदि पर भी गत अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है। इस अध्याय में हम कांग्रेस के द्वितीय या उच्च सदन, सिनेट, की रचना, संगठन तथा शक्तियों आदि पर विचार करेंगे। सिनेट को संयुक्त राज्य की शासन-संस्थाओं तथा विश्व के विधानमण्डल के द्वितीय सदनों में सर्वाधिक सफल तथा शक्तिशाली संस्था कहा जाता है। इस कारण हम इस तथ्य पर भी विचार करेंगे कि उपर्युक्त कथन कहाँ तक सत्य है।

सिनेट की रचना

सिनेट की सदस्य संख्या तथा प्रतिनिधित्व का आधार—गत अध्याय में द्वितीय सदन के निर्माण के कारणों पर विचार करते समय यह उल्लेख किया गया था कि सांविधानिक सम्मेलन में संघीय विधानमण्डल में प्रतिनिधित्व के आधार के संबंध में उत्पन्न हुए विवाद को एक समझौते के द्वारा निपटाया गया था, जिसके द्वारा यह निश्चित किया गया था कि संघीय कांग्रेस के द्वितीय सदन में प्रतिनिधित्व का आधार राज्यों की समानता का सिद्धान्त हो। इसी सिद्धान्त के अनुसार संविधान में प्रत्येक राज्य को सिनेट में दो सदस्य चुन कर भेजने का अधिकार दिया गया है। संविधान-निर्माता इस सिद्धान्त को कितना महत्व देते थे, यह इसी तथ्य से स्पष्ट है कि संविधान में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख कर दिया गया है कि "किसी राज्य को उसकी सहमति के बिना सिनेट में मताधिकार की समानता से वंचित नहीं किया जा सकेगा।"[1]

---

[1] अनुच्छेद ५

संविधान के प्रवर्तन के समय संयुक्त राज्य में तेरह राज्य थे। इसीलिए उस समय सिनेट की सदस्य-संख्या २६ थी। कालांतर में राज्यों की संख्या बढ़ती गई, और इस कारण सिनेट की सदस्य संख्या भी बढ़ती गई। वर्तमान काल में सिनेट की सदस्य-संख्या ९६ है। यद्यपि सदस्य संख्या में इस वृद्धि के कारण अब सिनेट के लिए उस रूप में कार्य करना कठिन है, जिस रूप में संविधान-निर्माता चाहते थे, परन्तु प्रतिनिधि-सभा (House of Representatives) तथा अन्य देशों के विधानमंडलों के द्वितीय सदनों से तुलना करने पर हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि सिनेट की सदस्य-संख्या अधिक नहीं है।

राज्यों की समानता के सिद्धान्त की, जिसे संविधान-निर्माताओं ने इतना महत्त्व दिया है, बड़ी कड़ी आलोचना की गई है। अमेरिकी व्यवस्था के अनेक आलोचकों ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि इस सिद्धांत को मान्यता दिए जाने के कारण संयुक्त राज्य के छोटे से छोटे राज्य को भी सिनेट में उतने ही प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त हैं जितना बड़े से बड़े राज्य को। उदाहरणार्थ, सिनेट में लगभग डेढ़ करोड़ जनसंख्या वाले न्यूयार्क राज्य के भी उतने ही प्रतिनिधि होते हैं जितने केवल सोलह लाख जनसंख्या वाले नेवाडा (Nevada) राज्य के। अनुमान लगाया गया है कि कम जनसंख्या वाले अठारह राज्यों की सम्पूर्ण जनसंख्या केवल एक राज्य (एम्पायर राज्य) की जनसंख्या के बराबर होती है। फिर भी ये अठारह राज्य सिनेट के छत्तीस सदस्य निर्वाचित करते हैं और एम्पायर राज्य केवल दो। जनसंख्या के आँकड़ों के आधार पर यह भी अनुमान लगाया गया है कि एक दल संयुक्त राज्य की जनसंख्या के केवल पंचमांश ($\frac{1}{5}$ भाग) का प्रतिनिधित्व करने पर भी सिनेट में कुल स्थानों का बहुमत प्राप्त कर सकता है। आलोचकों का मत है कि इस व्यवस्था को किसी प्रकार भी न्यायसंगत तथा उचित नहीं कहा जा सकता; विशेषकर ऐसी स्थिति में जब सिनेट को विधि-निर्माण में कांग्रेस के लोकप्रिय सदन, प्रतिनिधि सभा, के समान शक्तियाँ प्राप्त हैं। यद्यपि यह आलोचना उचित ही प्रतीत होती है, परन्तु हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि सिनेट में किसी प्रश्न पर मतदान के समय समस्त छोटे राज्यों द्वारा एक ओर और बड़े राज्यों द्वारा दूसरी ओर मत देने के दृष्टांत अधिक नहीं हैं। सामान्यतः

मतों का विभाजन सिद्धान्तों के आधार पर होता है, सदस्यों के निवास-स्थान के आधार पर नहीं।

सिनेट में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व देने के दोष स्पष्ट ही हैं। परन्तु इससे कोई लाभ ही न हो ऐसी बात नहीं है। मनरो के अनुसार प्रतिनिधि सभा के सम्पूर्ण सदस्यों का बहुमत दस राज्यों से चुनकर आता है। यदि सिनेट में प्रतिनिधित्व की समानता न हो तो ये दस राज्य राष्ट्र की विधायक नीति (legislative policy) पर प्रभुत्व रख सकते हैं। परन्तु वर्तमान व्यवस्था में बहुमत पाने के लिए पच्चीस राज्यों का एक ओर होना आवश्यक है। इसका कारण यह है कि प्रतिनिधि सभा पर मिसिसिपी नदी के पूर्व तथा मेसन और डिक्सन की रेखाओं के उत्तर के भाग का प्रभुत्व रहता है, परन्तु इस भाग का सिनेट पर नियन्त्रण नहीं रहता।[1] इस प्रकार वर्तमान प्रणाली एक संतुलन बनाए रखने में सफल सिद्ध हुई है।

सिनेट में प्रतिनिधित्व की समानता का अंत करने के लिए जो प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए हैं उनमें एक प्रमुख प्रस्ताव का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। इस प्रस्ताव को 'बोनस प्रस्ताव' (Bonus proposal) के नाम से संबोधित किया जाता है। इसके अनुसार प्रत्येक राज्य को सिनेट में दो स्थान देने की प्रणाली को कायम रखा जाय, परन्तु ऐसे राज्यों को जिनकी जनसंख्या है 'बोनस' के रूप में अतिरिक्त स्थान दे दिए जायँ; उदाहरणार्थ, प्रति दस लाख जनसंख्या पर एक अधिक स्थान। वैसे तो यह निश्चित रूप से कहा ही नहीं जा सकता कि इस प्रस्ताव के अंगीकृत कर लिए जाने से कुछ लाभ ही होगा, क्योंकि इससे न केवल सिनेट की सदस्य संख्या में ही अत्यधिक वृद्धि हो जायगी, वरन् घने बसे हुए राज्यों को सिनेट में भी प्रभुत्व प्राप्त हो जायगा। परन्तु यदि इससे यथार्थ में लाभ हो भी तो भी इसका अङ्गीकृत किया जाना सरल नहीं है। उसके लिए प्रत्येक राज्य की वैयक्तिक सहमति लेनी होगी जिसके प्राप्त होने की आशा ही नहीं की जा सकती।

सिनेट की सदस्यता के लिए आवश्यक अर्हताएँ—संविधान के अनुसार सिनेट के सदस्य वही व्यक्ति हो सकते हैं :—

---

[1] Munro, *op. cit.*, p. 268,

१. जिनकी आयु तीस वर्ष से कम न हो,
२. जो नौ वर्ष से संयुक्त राज्य के नागरिक हों, तथा
३. उस राज्य के नागरिक हों जो उन्हें निर्वाचित करता है।[1]

इन अर्हताओं के अतिरिक्त संविधान में इस निर्बन्ध का भी उल्लेख है कि कोई ऐसा व्यक्ति जो संयुक्त राज्य के अधीन किसी पद पर कार्य कर रहा हो सिनेट का सदस्य नहीं हो सकता।

व्यवहार में सिनेट का सदस्य निर्वाचित होने के लिए उपर्युक्त अर्हताओं के अतिरिक्त भी अनेक अर्हताओं का होना आवश्यक है। सामान्यतः संयुक्त राज्य के जन्मजात नागरिकों (native-born citizens) को ही सिनेट का सदस्य निर्वाचित किया जाता है। यद्यपि संविधान में तीस वर्ष आयु को ही आवश्यक बताया गया है, परन्तु व्यवहार में प्रौढ़ व्यक्तियों को ही सिनेट का सदस्य चुना जाता है। सिनेट-सदस्यों की औसत आयु प्रायः पचपन वर्ष के लगभग ही रहती है। सिनेट की सदस्यता के लिए प्राय: उन्हीं व्यक्तियों को चुना जाता है जिन्होंने एक लम्बे समय तक अपने दल की सक्रिय सेवा की हो और जो प्रतिनिधि-सभा, तथा राज्य विधानमण्डल के रह चुके हों अथवा राज्य शासन में किसी महत्वपूर्ण कार्यपालिका पद पर कार्य कर चुके हों। सिनेट की सदस्यता प्राप्त करने के लिए पर्याप्त धन व्यय करना पड़ता है और इसलिए यह भी आवश्यक हो जाता है कि या तो प्रत्याशी स्वयं सम्पन्न हो अथवा अपने मित्रों आदि से आर्थिक सहायता प्राप्त कर सकता हो।[2]

प्रतिनिधि-सभा की ही भाँति सिनेट को भी अपने सदस्यों की अर्हताओं के सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार प्राप्त है।[3] सामान्यतः सिनेट इस अधिकार

---

[1] अनुच्छेद १ धारा (३)

[2] विधि के अनुसार कोई प्रत्याशी २५,००० डालर से अधिक अपने चुनाव में व्यय नहीं कर सकता पर इसमें अनेक व्यय सम्मिलित नहीं किए जाते। सिनेट की सदस्यता के लिए १००,००० डालर का व्यय किया जाना संयुक्त राज्य में असामान्य नहीं माना जायगा।

[3] अनुच्छेद १ धारा (५)

को प्रयुक्त नहीं करती, पर विशेष परिस्थितियों में उसने इस अधिकार के अधीन कुछ व्यक्तियों को अपना सदस्य मानने से इन्कार किया है। सन् १९२७ में सिनेट ने इलिनायस राज्य के फ्रैंक स्मिथ (Frank L. Smith) तथा पैनिसिल्वानिया राज्य के विलियम वेर (William S. Vare) को इस कारण अपना सदस्य नहीं माना था कि उन्होंने अपने निर्वाचन में अधिक धन व्यय किया था और यह धन अनुचित रीति से प्राप्त किया गया था। सिनेट के इस निर्णय की सांविधानिकता के सम्बन्ध में संदेह व्यक्त किया गया है क्योंकि सन् १९०३ में सिनेट ने यह मत व्यक्त किया था कि वह किसी नियमानुसार निर्वाचित व्यक्ति को सदस्य मानने से इन्कार नहीं कर सकती, पर वह किसी सदस्य को निष्कासित कर सकती है।

सन् १९४७ के पूर्व अर्हताओं और निर्वाचन सम्बन्धी विवादों पर सिनेट की विशेषाधिकार और निर्वाचन समिति विचार करती थी, परन्तु अब इन पर नियम तथा प्रशासन समिति विचार करती है। किसी सदस्य को निष्कासित करने का निर्णय दो-तिहाई बहुमत से किया जाता है।

सिनेट के सदस्यों की निर्वाचन-प्रणाली

मूल प्रणाली—कांग्रेस के द्वितीय सदन के सदस्यों की चुनाव-पद्धति निर्धारित करने के लिए संविधान-निर्माताओं ने अनेक प्रणालियों पर विचार किया और अंततः उन्होंने संविधान में उनके राज्य-विधानमण्डलों के द्वारा निर्वाचन की व्यवस्था की।[1] यहाँ यह प्रश्न हमारे सामने आता है कि उन्होंने जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन की जनतांत्रिक प्रणाली को न अपना कर विधान-मण्डलों द्वारा निर्वाचन की अप्रत्यक्ष प्रणाली को क्यों प्रश्रय दिया। इसके अनेक कारण थे। मुख्य कारण यह था कि संविधान-निर्मातागण चाहते थे कि सिनेट सुयोग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों की एक लघु परिषद रहे जो न केवल राष्ट्रपति को मंत्रणा दे सके वरन् उसके द्वारा शक्तियों के अनुचित उपयोग पर नियंत्रण रख सके। उन्हें यह भय था कि प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था के परिणामस्वरूप सिनेट में योग्य व्यक्तियों के स्थान पर ऐसे कुटिल और धूर्त व्यक्ति पहुँचेंगे जो जनता को अपनी धूर्ततापूर्ण बातों तथा झूठे वादों से बहकाने

---

[1] अनुच्छेद १ धारा (३)

में सफल हो जायँगे। उन्होंने यह अनुभव किया कि राज्य-विधानमण्डलों द्वारा निर्वाचन की व्यवस्था से सिनेट में अवांछनीय व्यक्ति नहीं पहुँच सकेंगे, क्योंकि उनके सदस्य अपने उत्तरदायित्व को अनुभव करते हुए केवल योग्यतम व्यक्तियों को ही सिनेट की सदस्यता के लिए चुनेंगे। इस मुख्य कारण के अतिरिक्त अन्य कारण भी थे। संविधान-निर्माताओं का यह विश्वास था कि विधान-मण्डल द्वारा निर्वाचित होने पर सिनेट-सदस्य अपने को किसी दल अथवा गुट का प्रतिनिधि न समझ कर सम्पूर्ण राज्य का प्रतिनिधि समझेंगे। विधानमण्डल द्वारा निर्वाचन की प्रणाली का एक लाभ यह भी था कि इससे राज्यों को आश्वस्त किया जा सका कि उनके विधानमण्डल भी उतने ही आवश्यक हैं जितने केन्द्रीय शासनांग तथा सिनेट के रहते उन्हें समाप्त न किया जा सकेगा।

यद्यपि संविधान-निर्माताओं ने सिनेट-सदस्यों के राज्य-विधानमण्डलों के द्वारा निर्वाचन की प्रणाली को सर्वाधिक उपयुक्त समझ कर ही अङ्गीकृत किया था, परन्तु व्यवहार में यह अनेक दोषों से युक्त सिद्ध हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में इस प्रणाली के विरुद्ध आंदोलन प्रारम्भ हुआ और उसकी अंतिम दशाब्दियों में इसने गम्भीर रूप ले लिया। न केवल राजनीतिक दलों व जनता ने सिनेट-सदस्यों के प्रत्यक्ष निर्वाचन की माँग की वरन् अनेक राज्यों के विधानमण्डलों तथा प्रतिनिधि-सभा ने भी तद्विषयक प्रस्ताव पारित किए। इस आंदोलन के गम्भीर रूप लेने का मुख्य कारण यह था कि अनेक राज्यों के विधानमण्डलों ने सिनेट के सदस्यों का निर्वाचन करने के अधिकार का अत्यन्त अनुचित एवं निन्दनीय उपयोग किया। कहा जाता है कि अनेक राज्यों के विधानमण्डल सिनेट-सदस्यों का निर्वाचन करते समय न तो जनता की इच्छा का ध्यान रखते थे और न प्रत्याशियों की योग्यता और उनके अनुभव का; उनके चुनाव को प्रभावित करने वाले तत्व अन्य ही होते थे। वे या तो दल-प्रमुखों की इच्छा का ध्यान रखते थे अथवा निहित स्वार्थों वाले व्यक्तियों और कम्पनियों का। विश्वास किया जाता है कि सन् १९०१ में मॉन्टना (Montana) राज्य के विधानमण्डल को ताँबे के प्रसिद्ध व्यवसायी विलियम क्लार्क (William F. Clark) ने "क्रय" कर लिया था।[१] इसके पूर्व सन् १८८३ में ओहियो

[१] Brogan, *American Political System*, p. 165.

(Ohio) राज्य के डेमोक्रेटिक सदस्यों ने अपने दल के आदेशों की अवहेलना कर स्टैन्डर्ड ऑयल कम्पनी के प्रत्याशी हैनरी पेन (Henry B. Payne) को सिनेट की सदस्यता के लिए निर्वाचित किया।[1] अन्य अनेक राज्यों के विधानमण्लों के सदस्यों के द्वारा अनुचित प्रभावों के कारण अवांछनीय व्यक्तियों को सिनेट की सदस्यता के लिए चुनने के उदाहरण दिये जाते हैं। भ्रष्टाचार के इन मामलों ने ही सिनेट को "लक्षाधीशों की गोष्ठी" (Millionaires Club) के नाम से विभूषित कराया था। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष निर्वाचन के समर्थकों को बल प्रदान करने वाला एक अन्य कारण यह था कि कभी-कभी राज्य-विधानमण्डलों में सिनेट-सदस्यों के निर्वाचन के प्रश्न पर गतिरोध उत्पन्न हो जाता था जिसके कारण अनेक बार मतदान कराये जाने के उपरान्त भी किसी प्रत्याशी को बहुमत प्राप्त न हो पाता था। फलस्वरूप कभी-कभी महीनों तक सिनेट में राज्य प्रतिनिधि-विहीन ही रहता था।

उपर्युक्त दोषों को दूर करने के लिए कुछ राज्यों ने राष्ट्रपति के निर्वाचन की भाँति सिनेट-सदस्यों के निर्वाचन के लिए भी "प्रत्यक्ष प्राइमरी" की व्यवस्था की। इस व्यवस्था के अनुसार विधानमण्डल के द्वारा निर्वाचन के पूर्व मतदाता अपनी इच्छा व्यक्त कर देते थे। विधानमण्डल का कार्य केवल उनका अनुसमर्थन कर देना मात्र रह जाता था। कुछ राज्यों नें तो विधि द्वारा अपने विधानमंडलों के लिए यह आवश्यक कर दिया कि वे "प्राइमरी" में विजयी प्रत्याशियों को ही सिनेट की सदस्यता के लिए चुनें। सन् १९०८ में ओरेगॉन (Oregon) राज्य के विधानमंडल को, रिपब्लिकन दल का बहुमत होते हुए भी, बाध्य होकर एक डेमोक्रेट प्रत्याशी को सिनेट की सदस्यता के लिए चुनना पड़ा। अंततः सिनेट ने यह अनुभव किया कि वह अधिक समय तक जनता की इच्छा की अवहेलना नहीं कर सकती और सन् १९१२ में उसने संविधान के सत्रहवें संशोधन के विधेयक को पारित कर दिया। यह संशोधन सन् १९१३ में प्रभावी हुआ।

वर्तमान प्रणाली—सत्रहवें संशोधन ने सिनेट-सदस्यों के अप्रत्यक्ष निर्वाचन की प्रणाली का अन्त कर दिया। विधानमण्डलों के स्थान पर राज्यों की

---

[1] *Ibid.*, p. 165.

जनता को सिनेट के सदस्यों का निर्वाचन करने का अधिकार प्राप्त हुआ।[1] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सत्रहवें संशोधन ने सिनेट-सदस्यों के कार्यकाल एवं अर्हताओं में कोई परिवर्तन नहीं किया। सिनेट के समस्त सदस्य एक साथ नहीं चुने जाते, प्रति दो वर्ष के पश्चात् केवल एक-तिहाई सदस्य ही निर्वाचित किए जाते हैं। इस कारण कोई राज्य उस समय तक अपने दोनों सिनेट-सदस्यों को एक साथ नहीं चुनता जब तक किसी असंभावित कारण से कोई स्थान रिक्त न हो जाय।

निर्वाचन के पूर्व प्रत्याशियों का नामांकन होता है। विभिन्न राज्यों में नामांकन की प्रणाली समान नहीं है। कुछ राज्यों में सिनेट की सदस्यता के लिए प्रत्याशी राजनीतिक दलों के राज्य सम्मेलनों (State Conventions) के द्वारा नामांकित किए जाते हैं तथा कुछ राज्यों में "प्रत्यक्ष प्राइमरी" के द्वारा।

यहाँ सिनेट-सदस्यों के निर्वाचन की प्रणाली में हुए उपर्युक्त परिवर्तन के परिणाम के बारे में भी कुछ कह देना आवश्यक है। अधिकांश पर्यवेक्षकों का मत है कि इस परिवर्तन से जिन लोगों को महान् आशाएँ थीं, वे निराश ही हुए हैं। यदि विधानमंडलों के सदस्यों को धन के लोभ से किसी प्रत्याशी का समर्थन करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है, तो जनता को भी उसी उपाय से वश में किया जा सकता है। हाँ यह सत्य है कि इसके लिए अधिक धन की आवश्यकता होगी। इसी कारण सन् १९१३ के पश्चात् सिनेट के लिए निर्वाचन लड़ना और अधिक व्ययसाध्य हो गया है। बड़े-बड़े वादों के द्वारा जनता को आकर्षित करने की क्षमता करने वाले कुटिल राजनीतिज्ञों को भी अब सिनेट की सदस्यता प्राप्त करना सरल हो गया है। वस्तुस्थिति यह है कि नवीन निर्वाचन प्रणाली से सिनेट के सदस्यों की कोटि में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ है। अब भी सिनेट में प्रायः उसी कोटि के सदस्य रहते हैं, जिसके सत्रहवें संशोधन के पारित होने के पूर्व रहते थे।

---

[1] इस संशोधन के अनुसार राज्य विधानमण्डल के अधिक संख्या वाले सदन के निर्वाचनों में जिन्हें मत देने का अधिकार प्राप्त है वे ही व्यक्ति सिनेट-सदस्यों के निर्वाचन में मतदान कर सकेंगे।

सिनेट के रिक्त स्थानों की पूर्ति—यदि सिनेट में किसी राज्य के प्रतिनिधि का स्थान रिक्त होता है तो उस राज्य का कार्यपालिका अधिकारी उसकी पूर्ति के लिए निर्वाचन की आज्ञा देता है। राज्यों के विधानमंडलों को यह अधिकार दिया गया है कि वे जनता द्वारा निर्वाचन किए जाने के समय तक के लिए अस्थायी नियुक्ति करने की शक्ति राज्य की कार्यपालिका को प्रदान कर सकते हैं।[1]

सिनेट सदस्यों का कार्यकाल—संविधान द्वारा सिनेट सदस्यों का कार्यकाल छः वर्ष निर्धारित किया गया है। सांविधानिक सम्मेलन में अनेक प्रतिनिधियों का यह मत था कि सिनेट-सदस्यों को जीवन भर के लिये चुना जाना चाहिये, परन्तु अंततः उनका कार्यकाल निश्चित कर देने का ही निर्णय किया गया। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यद्यपि सिनेट के सदस्यों का कार्यकाल सीमित है, परन्तु सिनेट स्वयं एक कभी विघटित न होने वाली संस्था है। इसका कारण यह है कि इसके समस्त सदस्यों का निर्वाचन एक समय पर नहीं होता। प्रति दो वर्ष पश्चात् एक-तिहाई सदस्यों का निर्वाचन होता है।[2] कार्यकाल का लम्बा होना तथा सदन का पूर्णरूपेण कभी विघटित न होना, ये दो ऐसे तत्व जिन्होंने सिनेट के प्रभाव में वृद्धि करने में बहुत योग दिया है। छः वर्ष के कार्यकाल में सिनेट-सदस्य पर्याप्त अनुभव और कभी-कभी नेतृत्व तक प्राप्त कर लेते हैं।[3] प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की भाँति उन्हें जल्द ही आगामी निर्वाचन की चिंता नहीं सताने लगती। कार्यकाल लम्बा होने से वे एक प्रकार की स्वतंत्रता का अनुभव करते हैं, और इसी कारण कभी-कभी अपने दल तक के

---

[1] सत्रहवाँ संशोधन

[2] भारतीय संसद् के द्वितीय सदन, राज्य परिषद्, के सदस्यों के निर्वाचन की भी यही व्यवस्था है। प्रति दो वर्ष पश्चात् उसके भी एक-तिहाई सदस्यों का पुनर्निर्वाचन होता है।

[3] प्रो० लास्की के मतानुसार एक सिनेट-सदस्य का कार्यकाल इतना पर्याप्त होता है कि वह योग्य होने पर सारे राष्ट्र का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। (Laski, H. J., *American Democracy*, p. 85.)

आदेशों की अवहेलना करने में नहीं हिचकिचाते। सिनेट के पूर्णरूपेण कभी विघटित न होने का लाभ यह है कि हर समय सिनेट के दो-तिहाई सदस्य अनुभव-प्राप्त होते हैं और सिनेट को जल्दी-जल्दी संगठन-सम्बन्धी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता।

संविधान में सिनेट-सदस्यों के पुनर्निर्वाचन पर कोई निर्बन्ध नहीं है। व्यवहार पर दृष्टि डालने से हमें पता चलता है कि अधिकांश सिनेट सदस्य दोबारा निर्वाचित कर लिए जाते हैं। चौबीस अथवा तीस वर्ष तक निरन्तर सिनेट-सदस्य रहने वाले व्यक्तियों के नामों का उल्लेख किया जा सकता है। ऐसे सदस्यों को निश्चय ही अनुभव, प्रभाव और प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाना अस्वाभाविक नहीं है।

सिनेट-सदस्यों का वेतन, भत्ते, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियाँ— सिनेट के सदस्यों का वेतन प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के समान ही है।[1] सिनेट-सदस्यों को साचिविक कार्यों के लिए लगभग सोलह हजार डालकर प्रति वर्ष मिलता है। उन्हें प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की भाँति डाक, तार, टेलीफोन तथा यातायात की सुविधाओं का आधिकारिक कार्य के लिए निःशुल्क उपयोग करने का अधिकार भी प्राप्त है। प्रत्येक अधिवेशन में आने तथा वापस जाने के लिए उन्हें भी २० सेंट प्रति मील के हिसाब से यात्रा भत्ता मिलता है।

सिनेट के सदस्यों को भी प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों के समान विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियाँ प्राप्त हैं। सिनेट-सदस्यों के द्वारा अपनी भाषण की स्वतंत्रता का दुरुपयोग किए जाने के अनेक उदाहरण हैं। सामान्यतः सिनेट या तो अपने सदस्यों के विरुद्ध इस स्वतंत्रता के दुरुपयोग के लिए कोई कार्यवाही नहीं करती, और यदि वह इस ओर ध्यान देती भी है तो केवल हल्की सी चेतावनी देकर संतुष्ट हो जाती है। इस अधिकार का दुरुपयोग करने वालों में स्वर्गीय सिनेट-सदस्य लोगों का नाम उल्लेखनीय है। आजकल सिनेट-सदस्य मैकार्थी (Mc Carthy) जब तब इस स्वतंत्रता की आड़ में उत्तरदायी पदों पर कार्य

[1] प्रतिनिधि सभा के सदस्यों का वेतन १५,००० डालर वार्षिक है।

[2] Long *v.* Ansell (1934).

करने वाले पदाधिकारियों पर कीचड़ उछाला करते हैं। सिनेट-सदस्य लॉंग (Senator Long) का मामला जब एक अमेरिकन नागरिक ने सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया तो उसने यह निर्णय दिया कि सिनेट के सदस्य सिनेट-भवन में चाहे कुछ कहें, पर वे किसी व्यक्ति पर अपने भाषण में लगाए गए गंदे अभियोगों का डाक द्वारा प्रचार नहीं कर सकते।

सिनेट के पदाधिकारी

अध्यक्ष—संयुक्त राज्य का उपराष्ट्रपति सिनेट का अध्यक्ष (President) होता है।[1] सिनेट का सदस्य न होने के कारण उसे सामान्य स्थिति में मतदान करने का अधिकार नहीं होता। वह वाद-विवाद में भाग नहीं लेता तथा केवल उसी स्थिति में मतदान कर सकता है तब किसी प्रश्न पर पक्ष और विपक्ष में समान मत हों। यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि प्रतिनिधि-सभा की भाँति सिनेट को अपना अध्यक्ष चुनने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इसके फल-स्वरूप कभी-कभी सिनेट मे बहुमत एक दल का होता है और अध्यक्ष (उपराष्ट्रपति) दूसरे दल का। न केवल प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष और सिनेट के अध्यक्ष में यही भिन्नता है वरन् उनकी शक्तियाँ भी समान नहीं हैं। प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष की शक्तियाँ निश्चय ही अधिक होती हैं। सिनेट का अध्यक्ष भी सदन में शांति बनाए रखता है, सदस्यों को बोलने की अनुमति प्रदान करता है, मतदान कराता है तथा उसके निर्णय की घोषणा करता है। परन्तु नियम संबंधी प्रश्नों पर अपना निर्णय देने की उसकी शक्ति अत्यंत सीमित है। सामान्यतः विधि-निर्माण में उसका प्रभाव तथा नेतृत्व अधिक नहीं रहता।

अस्थायी अध्यक्ष (President pro tempore)—अनेक उपराष्ट्रपति सिनेट की अध्यक्षता से सम्बन्धित कार्यों में अधिक रुचि नहीं लेते। अनेक अवसरों पर उपराष्ट्रपति को स्थानापन्न राष्ट्रपति के रूप में कार्य करना पड़ता है। उस दशा में भी वह सिनेट की अध्यक्षता नहीं कर सकते। इसीलिए सिनेट एक अस्थायी अध्यक्ष निर्वाचित करती है। प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष के निर्वाचन

---

[1] अनुच्छेद १ धारा (३) (भारतीय संसद के उच्च सदन का अध्यक्ष भी उपराष्ट्रपति ही लेता है।)

की भाँति अस्थायी अध्यक्ष का निर्वाचन भी केवल नाममात्र के ही लिए पूर्ण सदन के द्वारा किया जाता है। अन्यथा यथार्थ चुनाव तो बहुमत दल के प्रमुखों के द्वारा किया जाता है। अस्थायी अध्यक्ष के पद पर कार्य करने वाला व्यक्ति बहुमत दल का एक नेता या उसके नेताओं का विश्वासपात्र व्यक्ति होता है। इसी कारण उसका पर्याप्त प्रभाव रहता है।

अन्य पदाधिकारी—उपर्युक्त दो पदाधिकारियों के अतिरिक्त सिनेट में अन्य अनेक पदाधिकारी होते हैं। सिनेट का एक सचिव (Secretary) होता है जिसके कृत्य प्रतिनिधि सभा के लिपिक (Clerk) के समान होते हैं। वही विधेयकों का वाचन करता है, सदस्यों की उपस्थिति लेता है, तथा कार्यवाही का विवरण आदि रखने का प्रबंध करता है। उसके अतिरिक्त अन्य अनेक लिपिक तथा निम्न कर्मचारी रहते हैं।

सिनेट की समितियाँ

प्रतिनिधि-सभा की ही भाँति सिनेट में भी स्थायी, विशेष और सम्मेलन समितियाँ होती हैं। पहले सिनेट की भी स्थायी समितियाँ बहुत अधिक थी, और एक समय तो ऐसा आ गया था जब उनकी संख्या प्रतिनिधि सभा की समितियों की संख्या से भी अधिक हो गई थी। सन् १९२१ में उनकी संख्या इकहत्तर से घटा कर चौंतीस कर दी गई। जैसा कि स्पष्ट ही है, सिनेट के लघु आकार को देखते हुए यह संख्या भी अधिक थी। सन् १९४६ के विधानमांडलिक पुनर्संगठन अधिनियम (Legislative Reorganisation Act) ने उनकी संख्या में पुनः कमी की। सिनेट की वर्तमान स्थायी समितियों के नाम निम्न-लिखित हैं:—

१. कृषि तथा वन प्रदेश,
२. विनियोग (Appropriations)
३. सायुध सेवाएँ (Armed Services)
४. बैंकिंग व करेंसी
५. कोलम्बिया जिला
६. कार्यपालिका विभागों में व्यय
७. वित्त (finance)

८. वैदेशिक संबंध
९. आंतरिक तथा द्वीपीय मामले
१०. अन्तर्राज्यिक तथा वैदेशिक वाणिज्य
११. न्यायपालिका
१२. श्रम तथा सार्वजनिक कल्याण
१३. डाक विभाग तथा लोक सेवाएँ
१४. सार्वजनिक कार्य (Public Works)
१५. नियम और प्रशासन

समितियों की संख्या में कमी हो जाने के कारण निश्चय ही अब उनके पास पहले की अपेक्षा अधिक कार्य रहता है। उपर्युक्त समितियों में वित्त, विनियोग, न्यायपालिका, वैदेशिक संबंध, वाणिज्य, सायुध सेवाएँ आदि समितियाँ अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं। पहले समितियों की सदस्य-संख्या में पर्याप्त अंतर रहता था—न्यूनतम सदस्य संख्या तीन तथा अधिकतम पचीस थी। अब विनियोग समिति के अतिरिक्त (जिसकी सदस्य संख्या इक्कीस है) अन्य समस्त समितियों की सदस्य-संख्या तेरह है। पहले समितियों की संख्या अधिक होने के कारण एक-एक सिनेट-सदस्य का पाँच या छः समितियों का सदस्य होना असामान्य बात न थी, पर अब सामान्यत: एक सिनेट-सदस्य दो से अधिक समितियों का सदस्य नहीं होता। कभी-कभी सिनेट भी सकल सदन समिति के रूप में कार्य करती है, पर अब पर्याप्त समय से उसने ऐसा नहीं किया है।

सिनेट की समितियों के सदस्यों का चुनाव भी वैधानिक दृष्टि से सिनेट के द्वारा, पर यथार्थ में दलीय नेताओं द्वारा किया जाता है। कांग्रेस के नव-निर्वाचनों के पश्चात् प्रत्येक दल अपनी एक समितियों की समिति (Committee on Committees) नियुक्त करता है। यह समिति विभिन्न समितियों के लिए सदस्य चुने जाने वाले सदस्यों की सूची तैयार करती है। यह सूची सामान्यतः प्रथम दल के नेतृमंडल (caucus) द्वारा तथा बाद में सिनेट के द्वारा अङ्गीकृत कर ली जाती है। समितियों में प्रायः राजनीतिक दलों को सदन में उनकी सदस्य-संख्या के अनुपात में ही स्थान प्राप्त होते हैं, परन्तु बहुमत दल यह ध्यान रखता है कि महत्वपूर्ण समितियों में उसके पर्याप्त समर्थक हों। सिनेट के

सदस्यों का निर्वाचन एक साथ न होने के कारण समितियों के पूर्ण रूप से पुनर्संगठन की कभी आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल उन सदस्यों के स्थानों की पूर्ति कर दी जाती है जो दोबारा सदन के सदस्य निर्वाचित नहीं होते। यदि दलों की स्थिति में कोई महत्वपूर्ण अन्तर हो जाता है तब भी समितियों में कुछ परिवर्तन किये जाते हैं।

प्रतिनिधि-सभा की समितियों की भाँति सिनेट की समितियों का भी अपना-अपना सभापति होता है, जो सामान्यतः ज्येष्ठता के नियम (Seniority Rule) के अनुसार चुना जाता है। प्रत्येक समिति में बहुमत दल का जो सबसे पुराना सदस्य होता है वही सभापति हो जाता है। इस नियम के गुण-दोषों पर प्रतिनिधि-सभा की समितियों पर विचार करते समय प्रकाश डाला जा चुका है, अतः उनका पुनः उल्लेख करना आवश्यक नहीं प्रतीत होता।

सिनेट की शक्तियाँ तथा कृत्य

संयुक्त राज्य की कांग्रेस का द्वितीय सदन केवल प्रथम सदन द्वारा पारित विधियों पर पुनर्विचार तथा संशोधन प्रस्तावित करने वाला सदन नहीं है। उसे ऐसी अनेक शक्तियाँ प्राप्त हैं, जिन्होंने उसे संसार का सर्वाधिक शक्तिशाली द्वितीय सदन बना दिया है। वस्तुतः उसकी शक्तियाँ न केवल अन्य देशों के द्वितीय सदनों से ही अधिक हैं, वरन् संयुक्त राज्य की कांग्रेस के प्रथम सदन, प्रतिनिधि सभा, को भी उससे कम ही शक्तियाँ प्राप्त हैं। जहाँ प्रतिनिधि सभा की शक्तियाँ मुख्यतः विधायी (legislative) हैं, वहाँ सिनेट को कार्यपालिका और न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। सिनेट की विधायिनी शक्तियाँ प्रतिनिधि-सभा के साथ ही प्रयुक्त की जा सकती हैं, इस कारण इन पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे। यहाँ केवल इतना ही उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा कि विधि-निर्माण में सिनेट और प्रतिनिधि-सभा की शक्तियाँ प्रायः पूर्णतः समान हैं। इस समानता का केवल एक ही अपवाद है—सिनेट में राजस्व-वृद्धि संबंधी विधेयक प्रस्तुत नहीं किये जा सकते। ऐसे विधेयकों का सूत्रपात प्रतिनिधि सभा में ही होना चाहिए। परन्तु जब हम इस तथ्य पर ध्यान देते हैं कि सिनेट को इन विधेयकों में संशोधन प्रस्तावित करने का अमर्यादित अधिकार प्राप्त है तथा ऐसा कोई विधेयक सिनेट द्वारा पारित हुए बिना विधि नहीं बन सकता तो यह

अपवाद महत्वहीन ही प्रतीत होता है। संशोधन प्रस्तावित करने की आड़ में सिनेट लगभग एक नया विधेयक ही प्रतिनिधि सभा के पास भेज सकती है।[1]

सिनेट को संविधान द्वारा जो कार्यपालिका और न्यायिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं उन्हें हम सिनेट की विशेष शक्तियाँ कह सकते हैं—क्योंकि वह प्रतिनिधि सभा से पृथक रूप से इनका प्रयोग करने की अधिकारिणी है। सिनेट की ऐसी विशेष शक्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

१. नियुक्तियों की पुष्टि करना
२. संधियों की पुष्टि करना
३. महाभियोगों पर विचार करना तथा निर्णय देना।
४. कुछ विशेष परिस्थितियों में उपराष्ट्रपति को निर्वाचित करना।

नियुक्तियों की पुष्टि—राष्ट्रपति को संघीय शासन के अधीन महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियाँ करने की विस्तृत शक्ति प्राप्त है। संविधान-निर्माता इस तथ्य से परिचित थे कि इस शक्ति का राष्ट्रपति के द्वारा दुरुपयोग भी किया जा सकता है। इसीलिए उन्होंने इस अधिकार के प्रयोग में सिनेट को राष्ट्रपति का समभागी बना दिया। इस विषय पर राष्ट्रपति की शक्तियों पर विचार करते समय प्रकाश डाला जा चुका है। राष्ट्रपति को लगभग १६,००० पदों पर नियुक्तियाँ करने की शक्ति प्राप्त है। इन पदों पर नियुक्तियाँ सिनेट की "मन्त्रणा और सहमति" से ही की जाती हैं। यहाँ यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि सिनेट केवल राष्ट्रपति के नामांकनों (nominations) की पुष्टि ही कर सकती है, वह स्वयं किसी व्यक्ति का नाम प्रस्तावित नहीं कर सकती।

सामान्यतः जब राष्ट्रपति के पास से कोई नामांकन पुष्टि के लिए सिनेट के पास आता है तो सिनेट उसे यथोचित समिति को विचारार्थ सौंप देती है। उदाहरणार्थ, न्यायिक पदों के लिए नामांकन न्यायिक समिति के पास, संघीय व्यापार आयोग की सदस्यता के लिए नामांकन अन्तर्राज्यिक वाणिज्य समिति के पास,

[1] एक बार एक राजस्व विधेयक जब सिनेट द्वारा प्रतिनिधि सभा को वापस भेजा गया था तो उसमें ८४७ संशोधनों के प्रस्ताव संलग्न थे। वस्तुतः सिनेट प्रथम खंड को छोड़ कर संपूर्ण विधेयक को ही बदल सकती है।

तथा राजदूतों आदि के नामांकन वैदेशिक संबंध समिति के पास भेजे जाते हैं। ये समितियाँ नामांकन पर आपत्तियाँ सुनने तथा अनुसंधान करने के बाद सिनेट के सम्मुख अपनी आख्या प्रस्तुत करती हैं। सामान्यत: सिनेट इन्हीं की सिफारिशों के अनुसार निर्णय करती है। यदि समिति नामांकन की पुष्टि करने की सिफारिश करती है तभी सिनेट पुष्टि करती है, अन्यथा नहीं।

राष्ट्रपति की नियुक्ति संबंधी शक्तियों का उल्लेख करते समय 'सिनेट की शिष्टता' (Senatorial Courtesy) का भी उल्लेख किया जा चुका है। इस प्रथा के अनुसार राष्ट्रपति के नामांकनों की पुष्टि करते समय सिनेट अधिकतर उस राज्य के बहुमत दल के सिनेट-सदस्यों की इच्छानुसार निर्णय करती है जिसमें नियुक्ति की जाने वाली है। अधिकतर राष्ट्रपति नामांकन करने के पूर्व संबंधित राज्य के अपने दल के सिनेट-सदस्य से परामर्श कर लेते हैं और उसी के द्वारा सुझाये गये व्यक्ति को नामांकित करते हैं। प्राय: सिनेट-सदस्य स्वयं ही राष्ट्रपति को सूचित कर देते हैं कि वे किस पद पर किस व्यक्ति की नियुक्ति चाहते हैं। राष्ट्रपति सामान्यतः सिनेट-सदस्यों की इच्छानुसार ही नामांकन करता है, परन्तु यदि वह उनकी इच्छा के विपरीत नामांकन करता है तो अधिक संभावना यही रहती है कि सिनेट उसकी पुष्टि नहीं करेगी। सन् १९५१ में राष्ट्रपति ट्रूमैन को सिनेट-सदस्य पॉल डगलस की इच्छा के विरुद्ध इलिनायस राज्य में न्यायाधीशों की नियुक्ति करने पर सिनेट के द्वारा नामांकनों की पुष्टि न करने का कटु अनुभव हुआ था। यद्यपि इस प्रथा के पक्ष में कोई गंभीर तर्क प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, परन्तु इसकी जड़ें इतनी गहरी जम गई हैं कि इसका उच्छेदन करना सरल नहीं है।

संधियों की पुष्टि—कार्यपालिका द्वारा विदेशों से की गई संधियों की पुष्टि करना सिनेट की दूसरी महत्वपूर्ण शक्ति है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति विदेशों से सिनेट की "मन्त्रणा और सहमति" से संधियाँ करेगा, परन्तु इसके लिए संधि पर विचार करते समय उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई भाग का संधि के पक्ष में मत देना आवश्यक है।

"सिनेट की मन्त्रणा से" वाक्य का तात्पर्य क्या है यह संविधान में स्पष्ट नहीं किया गया है। संयुक्त राज्य के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने प्रारम्भ में

संधि-वार्ता के काल में सिनेट का परामर्श प्राप्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु उस अवसर पर सिनेट ने जो रुख अपनाया उससे उन्हें अत्यन्त निराशा हुई। उसके पश्चात् उन्होंने विदेशों से वार्ता के काल में सिनेट का परामर्श प्राप्त न कर अन्तिम संधियों को ही सिनेट के सम्मुख पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया। वही प्रथा आज भी चली आ रही है। यद्यपि अनेक सिनेट-सदस्य इसे संविधान का अतिक्रमण मानते हैं, परन्तु यथार्थ स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह असंभव ही प्रतीत होता है कि राष्ट्रपति किसी विदेशी राज्य से संधि-वार्ता के काल में सिनेट की मन्त्रणा और सहमति प्राप्त करे। आजकल सिनेट के विरोध को बचाने के लिए सामान्यतः राष्ट्रपति संधि-वार्ता के काल में उसके प्रमुख नेताओं (विशेषतः बहुमत दल के नेताओं) से परामर्श करते रहते हैं। ऐसा करने से संधि पर सिनेट का अनुसमर्थन प्राप्त करना सरल हो जाता है। कुछ राष्ट्रपतियों ने संधि का प्रारूप बनाने वाले आयोग में अथवा संधि-वार्ता के लिए नियुक्त प्रतिनिधि मण्डल में सिनेट के प्रभावशाली सदस्यों को स्थान देकर भी सिनेट को संतुष्ट करने का प्रयास किया है।

जब कोई संधि सिनेट के पास अनुसमर्थन के लिए पहुँचती है तो उसे विचारार्थ सदन की वैदेशिक संबंध समिति (Committee on Foreign Relations) को सौंप दिया जाता है। यह समिति अत्यन्त गम्भीरता के साथ संधि के प्रत्येक खंड पर विचार करती है तथा संयुक्त राज्य को उससे होने वाले हानि-लाभों का अनुमान करती है। कभी-कभी वह सप्ताहों और महीनों तक संधि पर विचार करती है। इसके पश्चात् वह सिनेट के समक्ष अपनी आख्या प्रस्तुत करती है, जिससे उसे अङ्गीकृत करने, अस्वीकृत करने, अथवा उसमें कुछ परिवर्तन किए जाने की शर्त पर उसे अङ्गीकृत करने की सिफारिश होती है। समिति की आख्या प्रस्तुत होने के पश्चात् सदन में संधि पर वाद-विवाद होता है। इसके पश्चात् मतदान के द्वारा सिनेट का निर्णय ज्ञात किया जाता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, उपस्थित सदस्यों में से दो-तिहाई का समर्थन प्राप्त होने पर ही सन्धि अनुसमर्थित मानी जाती है।

सिनेट की संधियों की पुष्टि करने की शक्ति की बहुत आलोचना की गई है। इस संबंध में भूतपूर्व राज्य-सचिव जॉन हे (John Hay) का कथन उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर कहा था—'सिनेट में

जाने वाली संधि रंगभूमि में जाने वाले साँड़ के समान है। यह नहीं कहा जा सकता कि उस पर अंतिम प्रहार किस प्रकार और कब होगा परन्तु एक बात निश्चित है—कि वह रंगभूमि से कभी जीवित बाहर नहीं आयगा।"[१] तथ्यों पर दृष्टि डालने से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यद्यपि यह सत्य है कि सिनेट अनेक महत्वपूर्ण संधियों की पुष्टि न कर उनके अंत का कारण बनी है, परन्तु इससे यह परिणाम निकालना असंगत होगा कि सिनेट अधिकांश संधियों को अस्वीकृत कर देती है। सन् १७८९ से १९३५ तक के आँकड़ों पर विचार करने पर यह पाया गया है कि सिनेट ने प्राय: अस्सी प्रतिशत सधियों को बिना किसी शर्त पर स्वीकृति प्रदान की। लगभग एक हजार संधियों में से ऐसी संधियों की संख्या केवल बासठ है जिन्हें सिनेट ने बिना कोई संशोधन आदि प्रस्तावित किए अस्वीकृत कर दिया।[२] कुछ लोगों को यह जानकर निश्चय ही आश्चर्य होगा कि सन् १९३४ में एक बार सिनेट ने एक घंटे में ही बारह संधियों को अनुसमर्थित कर दिया। संधियों की संख्या के स्थान पर जब हम उनके महत्त्व की ओर ध्यान देते हैं तब यह पाते हैं कि निश्चय ही प्रत्येक महत्वपूर्ण सन्धि के अनुसमर्थन के लिए तीव्र संघर्ष होता है और संधि की पुष्टि के लिए आवश्यक दो-तिहाई बहुमत की शर्त को पूरा करना कठिन होता है।[3] इस कठिनाई को दूर करने के ही लिए राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट विदेशों से संधियाँ कम तथा "कार्यपालिका समझौते" अधिक करते थे। इन समझौतों पर सिनेट का अनुसमर्थन प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती।[४]

---

[१] "A treaty entering the Senate is like a bull going into the arena; no one can say just how or when the final blow will fall—but one thing is certain - it will never leave the arena alive."—John Hay, as quoted by W. R. Thayer in *Life and Letters of John Hay*, II, p. 393.

[२] Ogg and Ray, *Essentials of American Govt.*, p. 475.

[३] Ogg and Ray, *Introduction to American Govt.*, p. 599.

[४] "कार्यपालिका समझौतों" पर राष्ट्रपति की शक्तियों पर विचार करते समय प्रकाश डाला जा चुका है।

महाभियोगों की सुनवाई तथा निर्णय—उपर्युक्त कार्यपालिका अधिकारों के अतिरिक्त सिनेट को राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, तथा समस्त असैनिक अधिकारियों पर लगाये गये देशद्रोह, भ्रष्टाचार अथवा अन्य गम्भीर अपराधों के महाभियोगों की सुनवाई करने तथा उन पर निर्णय करने का न्यायिक अधिकार भी प्राप्त है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सिनेट महाभियोग की कार्यवाही का सूत्रपात नहीं कर सकती। वह केवल प्रतिनिधि सभा द्वारा लगाये गये अभियोगों की जाँच कर सकती है तथा निर्णय दे सकती है। इस दृष्टि से सिनेट की स्थिति बहुत कुछ ब्रिटेन की लार्ड सभा (House of Lords) के समान है जो कामंस सभा (House of Commons) द्वारा लगाये गये अभियोगों पर विचार करती है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि जब संविधान में देश के लिए एक सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई थी तब महाभियोगों पर निर्णय उसे न सौंप कर सिनेट सरीखी एक राजनीतिक संस्था को क्यों सौंपा गया। इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। ऐसी दशा में उन्हें राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाये गये महाभियोग पर विचार करने की शक्ति देना किसी प्रकार भी उचित न होता। यद्यपि सिनेट को यह शक्ति देने के विरोध में भी अनेक तर्क दिये जा सकते हैं, परन्तु संविधान-निर्माताओं को संयुक्त राज्य की शासन संस्थाओं में इस कार्य के लिए सिनेट ही सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत हुई।

प्रतिनिधि-सभा द्वारा किसी पदाधिकारी के विरुद्ध महाभियोग का प्रस्ताव पारित हो कर जब सिनेट के पास आता है तो सिनेट को उस पर विचार करना ही पड़ता है। सिनेट महाभियोग की सुनवाई की तिथि निश्चित करती है तथा अभियुक्त को अभियोगों की सूचना देती है। राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग की सुनवाई के समय सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति (Chief Justice) सिनेट की अध्यक्षता करता है। अन्य पदाधिकारियों के विरुद्ध महाभियोग पर विचार करते समय उपराष्ट्रपति ही सिनेट की अध्यक्षता करता है। अभियुक्त पदाधिकारी को अपनी प्रतिरक्षा में वक्तव्य देने का अवसर दिया जाता है। वह वकील के द्वारा अपनी प्रतिरक्षा करा सकता है तथा साक्षियों को प्रस्तुत कर सकता है। यदि सिनेट चाहे तो महाभियोग की कार्यवाही के समय दर्शक दीर्घाओं को खाली करा सकती है। किसी पदाधिकारी को दोषी

ठहराने तथा उसे दंडित करने का निर्णय दो-तिहाई बहुमत से ही किया जा सकता है।

सिनेट किसी पदाधिकारी को उसके विरुद्ध महाभियोग की सुनवाई के पश्चात् केवल पदच्युत कर सकती है तथा भविष्य में आगे किसी संघीय पद पर कार्य करने पर प्रतिबंध लगा सकती है। वह किसी को मृत्यु, कारागार अथवा आर्थिक दंड नहीं दे सकती। सिनेट द्वारा दिए गये दंड को क्षमा करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है—राष्ट्रपति में भी नहीं। सिनेट द्वारा दंडित किये जाने के पश्चात् भी किसी पदाधिकारी पर सामान्य न्यायालयों में विधि-अनुसार मुकदमा चलाया जा सकता है।

संयुक्त राज्य के लगभग पौने दो सौ वर्ष के इतिहास में केवल बारह संघीय पदाधिकारियों के विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाही की गई। इनमें आठ को सिनेट ने निर्दोष घोषित कर विमुक्त (acquit) कर दिया। जिन चार पदाधिकारियों को सिनेट ने महाभियोग के द्वारा दंडित किया उनमें तीन जिला न्यायाधीश थे तथा एक विशेष वाणिज्य न्यायालय का न्यायाधीश था। विमुक्त होने वाले पदाधिकारियों में राष्ट्रपति जॉन्सन का नाम उल्लेखनीय है। राष्ट्रपति जॉन्सन से कांग्रेस असंतुष्ट थी। उसने उन पर ग्यारह आरोप लगाये। महाभियोग पर अंतिम निर्णय के समय दो-तिहाई बहुमत में एक मत की कमी रह गई और इस कारण राष्ट्रपति जॉन्सन को दोषी सिद्ध न किया जा सका। महाभियोगों की न्यून संख्या को ध्यान में रखने पर यह नहीं कहा जा सकता कि सिनेट ने इस शक्ति का दुरुपयोग किया है। वस्तुत: इसकी प्रक्रिया इतनी जटिल है कि इसका प्रयोग अन्तिम अस्त्र के रूप में ही किया जाता है।

विशेष दशाओं में उपराष्ट्रपति का निर्वाचन—उपराष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रणाली पर विचार करते समय यह उल्लेख किया जा चुका है कि मतगणना के पश्चात् उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशियों में से जिसे सर्वाधिक मत प्राप्त होते हैं और यदि उसे निर्वाचकों की पूर्ण संख्या के आधे से अधिक के मत प्राप्त होते हैं तो उसे उपराष्ट्रपति निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। परन्तु यदि किसी प्रत्याशी को निर्वाचकों की पूर्ण संख्या का बहुमत नहीं प्राप्त होता तो दो सर्वाधिक मत पाने वाले प्रत्याशियों में से सिनेट एक को उपराष्ट्रपति निर्वाचित करती है।

इस कार्य के लिए सिनेट की गणपूरक संख्या (quorum) सिनेट-सदस्यों की पूर्ण संख्या का दो-तिहाई भाग होती है।

सिनेट : सर्वाधिक शक्तिशाली द्वितीय सदन

संसार के लगभग सभी प्रमुख राज्यों के विधानमण्डल द्विआगरिक हैं; परन्तु उन सब के विधानमण्डल के द्वितीय सदनों में रचना, सङ्गठन, शक्तियों तथा प्रतिष्ठा आदि की दृष्टि से महान अन्तर हैं। जैसा कि लिंडसे रोजर्स का कथन है, संयुक्त राज्य की सिनेट संसार का सर्वाधिक शक्तिशाली सदन है। दूसरे देशों की शासन-व्यवस्था में द्वितीय सदन की शक्तियों में ह्रास हुआ है पर सिनेट की शक्ति में वृद्धि ही हुई है।[1] यहाँ संक्षेप में अन्य देशों के द्वितीय सदनों से सिनेट की शक्तियों की तुलना प्रस्तुत करना विषयातिरेक न होगा।

ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रिटिश लार्ड सभा (House of Lords) संसार का सर्वाधिक प्राचीन द्वितीय सदन है। एक समय था जब इसकी शक्तियाँ वास्तविक तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थीं। परन्तु आज वह अत्यधिक अशक्त द्वितीय सदन है। वह कामन्स सभा द्वारा पारित धन-सम्बन्धी विधेयकों को अधिक से अधिक एक माह तथा अन्य विधेयकों को अधिक से अधिक एक वर्ष तक विधि का रूप लेने से रोक सकता है, परन्तु उनके अन्त का कारण नहीं बन सकता। कार्यपालिका पर उसका अधिक प्रभाव नहीं रहता। उसे कुछ न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं परन्तु उनका प्रयोग करते समय उसके केवल कुछ ही सदस्य उसकी कार्यवाही में भाग लेते हैं, और इस कारण उसका स्वरूप ही बदल जाता है। इसके विपरीत अमेरिका में बिना सिनेट की सहमति प्राप्त किए कोई विधेयक विधि का रूप नहीं ले सकता। अपनी संधियों और नियुक्तियों को पुष्ट करने की शक्ति के कारण सिनेट कार्यपालिका के कार्यों को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करती

---

[1] 'The Senate of the United States is now the most powerful second chamber in the world. In all other constitutional systems of Government the powers of upper chambers have waned. The authority of the Senate has waxed."—Lindsay Rogers, *The Aspects of American Government*, p. 69.

है और अधिकतर उससे अपनी बात मनवाने में सफल हो जाती है। इस कारण निश्चय ही सिनेट लार्ड सभा की तुलना में बहुत अधिक शक्तिशाली है।

आस्ट्रेलिया की सिनेट रचना तथा संगठन की दृष्टि से बहुत कुछ अमेरिकी सिनेट के समरूप है और उसे लगभग निम्न सदन के समान ही शक्तियाँ प्राप्त हैं। परन्तु वह भी अमेरिकी सिनेट के समान शक्तिशाली नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि उसे अमेरिकी सिनेट के समान कोई विशेष शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। इसी प्रकार स्विट्जरलैंड और सोवियत संघ में भी संघीय विधानमण्डल के द्वितीय सदन को प्रथम सदन के समान शक्तियाँ प्राप्त हैं, परन्तु अमेरिकी सिनेट के समान विशेष शक्तियाँ प्राप्त न होने के कारण उन्हें उस जैसी स्थिति प्राप्त नहीं है। कनाडा में भी सिनेट की विधि-निर्माण शक्तियाँ लगभग कामन्स सभा की शक्तियों के बराबर हैं। परन्तु वह उसकी तुलना में अशक्त सिद्ध हुई है। इसके मुख्य कारण हैं सिनेट का अप्रजातान्त्रिक स्वरूप तथा शासन-प्रणाली का संसदीय स्वरूप। कनाडा की सिनेट के सदस्यों का निर्वाचन नहीं होता, वे गवर्नर जनरल द्वारा नामांकित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त मन्त्रिमण्डल केवल कामन्स सभा के प्रति ही उत्तरदायी होता है, सिनेट के प्रति नहीं।

फ्रांस की गणराज्य-परिषद (Council of the Republic) तथा भारत की राज्य-परिषद भी ब्रिटिश लार्ड सभा की भाँति केवल निम्न सदन के समक्ष संशोधन प्रस्तुत कर सकती है। वे सदन द्वारा पारित किसी विधेयक को विधि का रूप लेने से नहीं रोक सकतीं। फ्रांस में निम्न सदन के द्वारा दोबारा पारित कर दिये जाने पर उच्च सदन के विरोध का प्रभाव समाप्त हो जाता है। भारतीय संविधान में दोनों सदनों के बीच गतिरोध उत्पन्न होने पर सम्बन्धित विधेयकों की दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में प्रस्तुत किये जाने की व्यवस्था है। ऐसे अधिवेशन में निश्चित ही निर्णय निम्न सदन की इच्छानुसार होगा। इस प्रकार इन देशों के द्वितीय सदन भी निम्न सदन की तुलना में बहुत अशक्त हैं।

इस विश्लेषण से हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि संयुक्त राज्य की सिनेट संसार का सर्वाधिक शक्तिशाली द्वितीय सदन है। प्रो० लास्की का विचार है कि वह प्रतिनिधि सभा की स्वामिनी है और वित्त तथा आयात-निर्यात कर सम्बन्धी मामलों में भी वह उससे अपनी बात मनवा लेने में सफल हो जाती

में है। उनके मतानुसार यद्यपि यह कथन अत्युक्तिपूर्ण होगा कि वह राष्ट्रपति की भी स्वामिनी है, परन्तु यह कहना ठीक है कि कोई भी राष्ट्रपति सिनेट के मत के प्रवाह की अवहेलना नहीं कर सकता।[1]

सिनेट के शक्तिशाली तथा सफल होने के कारण

सिनेट की स्थिति पर विचार करने वाले अधिकांश लेखकों ने इसे एक अत्यन्त सफल संस्था बताया है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में सर हैनरी मेन ने लिखा था कि आधुनिक जनतन्त्र के ज्वार के चढ़ने के समय से अब तक संस्थापित समस्त संस्थाओं में सिनेट एकमात्र पूर्णतः सफल संस्था है।[2] उनके भी पूर्व उसके कार्यकरण की प्रशंसा प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक डी टाकविले (De Toqueville) ने की थी। ग्लैडस्टन ने, जो अनेक बार ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री रहे थे, सिनेट को आधुनिक राजनीति का सर्वाधिक असाधारण अविष्कार'[3] बताया था। 'आधुनिक काल में प्रो० लास्की ने भी इसे 'असाधारण रूप से सफल सभा' घोषित किया है। इन सबके मतों पर दृष्टि डालने पर यह जिज्ञासा होना अस्वाभाविक नहीं है कि सिनेट के इतना सफल सिद्ध होने के क्या कारण हैं। यहाँ हम संक्षेप में उन पर विचार करेंगे।

सिनेट का छोटा आकार और उसके सदस्यों का दीर्घ कार्यकाल उसे सफलता प्रदान करने वाले दो मुख्य तत्व हैं। इसके छोटे आकार के कारण इसके सदस्यों

---

१ "It (Senate) is the master of the House of Representatives; it is even able to make House give way on matters like finance and the tariff. And while it would be an exaggeration to say that the Senate is the master of the president, it is reasonable to argue that no president dare neglect the drift of the senatorial opinion."—Laski, H. J., *American presidency*, p. 90.

२ "......the one thoroughly successaful institution which has been established since the tide of modern democracy began to run."—Sir Henry Main, as quoted by Lindsay Rogers in *Aspects of American Governments*, p. 69.

३ "The most remarkable of all the inventions of modern politics."—Gladstone as quoted by L. Rogers, *Idid*, p. 70.

पारस्परिक विभेद होने पर भी घनिष्ठता रहना संभव होता है। सदस्य संख्या कम होने के कारण सदस्यों को अपने विचार अभिव्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। साथ ही अपने दीर्घ कार्यकाल के कारण इसके सदस्य अपने पुनर्निर्वाचन की चिंता और भय से मुक्त रहते हैं। इसके सदस्यों को अपने निर्वाचकों को संतुष्ट और प्रसन्न रखने की भी उतनी चिंता नहीं रहती जितनी प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों को। इस कारण वे स्थानीय हितों से ऊपर उठ कर राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से विचार कर सकते हैं। इसका एक अन्य कारण यह भी है कि सिनेट के सदस्यों का निर्वाचन-क्षेत्र बड़ा होता है।

सिनेट के सदस्यों के प्रत्यक्ष निर्वाचन की प्रणाली ने भी उसे शक्ति प्रदान की है। सिनेट के सदस्य प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों के समान ही जनता के प्रतिनिधि होते हैं और इस कारण उनमें कोई हीनभाव नहीं रहता।

अधिकांश पर्यवेक्षकों का विचार है कि प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों की तुलना में सिनेट के सदस्य अधिक योग्य, अनुभवी एवं ख्यातिप्राप्त होते हैं। सिनेट-सदस्यों का दीर्घ कार्यकाल, क्षेत्र-नियम का अभाव, सिनेट की अपेक्षाकृत अधिक शक्तियाँ तथा सिनेट-सदस्यों को प्राप्त सम्मान, प्रतिष्ठा तथा स्वतंत्रता इसके प्रमुख कारण हैं। वस्तुतः प्रत्येक महत्वाकांक्षी अमेरिकी राजनीतिज्ञ सिनेट की सदस्यता प्राप्त करने का इच्छुक रहता है। निश्चय ही ऐसी सभा का सफल होना आश्चर्य-जनक नहीं है। सिनेट के सदस्यों को अबाध भाषण की जो स्वतंत्रता प्राप्त है उसके कारण इसके वाद-विवाद भी अधिक रुचिप्रद, नाटकीय तथा लोकप्रिय होते हैं। वाद-विवाद की स्वतंत्रता के कारण सिनेट राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों पर विचाराभिव्यक्ति का मंच बन जाती है, और जनमत प्रकट करने तथा उसका मार्गदर्शन करने दोनों में सफल होती है।

अन्त में यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि सिनेट का शक्तिशाली बनाने तथा उसे सफलता प्रदान करने में उसे संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों का भी महत्वपूर्ण योग रहा है। वह अन्य देशों के विधानमंडलों के द्वितीय सदनों की भाँति अशक्त और दुर्बल न होकर सङ्घीय शासनांगों में सर्वाधिक स्वतंत्र है। राष्ट्रपति की शक्तियों में वृद्धि होने के साथ-साथ सिनेट की शक्तियों में भी स्वतः वृद्धि होती रही है क्योंकि उनमें से कुछ का प्रयोग सिनेट की "मंत्रणा

और सहमति" से ही हो सकता है। यह तथ्य भी कि सिनेट कभी भी अभिजात-वर्गीय, रूढ़िवादी अथवा अनुदार हितों की संरक्षक नहीं रही इसे सफलता प्राप्त करने में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुआ है।

सिनेट की कार्यप्रणाली में अनेक दोष हैं। 'फिलीबस्टरिंग' जैसी प्रथा का कोई समर्थन नहीं कर सकता। नियुक्तियों में जैसा पक्षपात होता है वह भी किसी दृष्टि से सराहनीय नहीं है। सिनेट ने अपने अधिकारों का अनेक बार दुरुपयोग भी किया है और समय-समय पर राष्ट्रपति का विरोध ही अपना प्रधान लक्ष्य बना लिया है। परन्तु अमेरिकी जनता इससे संतुष्ट है और इसे अपनी शासन-व्यवस्था का एक अत्यावश्यक तथा उपयोगी अंग मानती है। ऐसी अवस्था में इसके संगठन और कार्यप्रणाली में शीघ्र ही किन्हीं महत्वपूर्ण परिवर्तनों की संभावना नहीं है।

अध्याय १२

कांग्रेस : शक्तियाँ तथा कार्यकरण

कांग्रेस संयुक्त राज्य के सङ्घीय विधानमंडल के दोनों सदनों का संयुक्त नाम है। गत दो अध्यायों में कांग्रेस के दोनों सदनों की रचना, संगठन तथा विशेष शक्तियों पर विचार किया गया है। परन्तु इससे हमें कांग्रेस की शक्तियों और कर्मकरण का पूर्ण परिचय प्राप्त नहीं होता। अपनी विशेष शक्तियों के अतिरिक्त कांग्रेस के दोनों सदनों को ऐसी अनेक शक्तियाँ प्राप्त हैं जिनका वे संयुक्त रूप से ही प्रयोग कर सकते हैं। वस्तुतः किसी देश के विधानमंडल का मुख्य कार्य विधि-निर्माण होता है और अमेरिकी कांग्रेस का कोई एक सदन अकेले कोई विधि पारित नहीं कर सकता। कांग्रेस की समस्त 'विधि-निर्माण सम्बन्धी शक्तियों का प्रयोग दोनों सदनों के द्वारा संयुक्त रूप से ही किया जा सकता है। इस अध्याय में प्रथम हम कांग्रेस की शक्तियों पर विचार करेंगे तथा बाद में कांग्रेस की कार्य-प्रणाली का अध्ययन करेंगे।

यहाँ यह बात स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि कांग्रेस की शक्तियाँ केवल विधि-निर्माण तक ही सीमित नहीं हैं। वह संविधान में संशोधन का प्रस्ताव पारित कर सकती है, कर लगाती है, तथा यह निश्चित करती है कि राज्य की आय को किस प्रकार व्यय किया जायगा। विभिन्न विषयों पर अनुसंधान करने के लिए समितियाँ नियुक्त करना, प्रशासन का अधीक्षण तथा निर्देशन करना, विदेशों से युद्ध की घोषणा करना आदि कांग्रेस की अन्य कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं जिनकी गणना कांग्रेस की विधि-निर्माण सम्बन्धी शक्तियों में नहीं की जा सकती। यह समझना भी भ्रान्तिमूलक ही होगा कि विधि-निर्माण के क्षेत्र में कांग्रेस को अनन्य शक्ति प्राप्त है। उसकी विधि-निर्माण की शक्ति न केवल संविधान में उल्लिखित विषयों तक सीमित ही है, वरन् विधि-निर्माण प्रक्रिया में भी राष्ट्रपति का प्रमुख भाग रहता है। राष्ट्रपति कांग्रेस द्वारा पारित अनेक विधेयकों के अन्त का कारण बन सकता है।

कांग्रेस की शक्तियों का मूल स्रोत—कांग्रेस की समस्त शक्तियों का मूल स्रोत संविधान है। यद्यपि आज कांग्रेस के द्वारा ऐसी अनेक शक्तियाँ प्रयुक्त की जाती हैं जिनका संविधान में स्पष्टतः कहीं उल्लेख नहीं है, परन्तु यह माना जाता है कि वे समस्त शक्तियाँ संविधान की किसी न किसी धारा में निहित रूप से कांग्रेस को प्रदान की गई हैं। यह निश्चय करना कि कोई शक्ति संविधान कांग्रेस को प्रदान करता है या नहीं सर्वोच्च न्यायालय का कार्य है। यदि सर्वोच्च न्यायालय यह अनुभव करता है कि कांग्रेस ने अपनी शक्तियों की सीमा लाँघ कर कोई विधि बनाई है तो वह उसे अवैध तथा रद्द घोषित कर देता है।

कांग्रेस की शक्तियों का वर्गीकरण

कांग्रेस की शक्तियों का अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है। वर्गीकरण का आधार यह तथ्य हो सकता है कि कोई शक्ति संविधान में उल्लिखित है अथवा निहित रूप में प्रदान की गई है। वर्गीकरण का आधार अनन्य (exclusive) तथा समवर्ती (concurrent) शक्तियों का अन्तर हो सकता है, अथवा शक्तियों की प्रकृति के आधार पर भी हम उन्हें वर्गीकृत कर सकते हैं।

उल्लिखित तथा निहित शक्तियाँ—ऊपर यह उल्लेख किया जा चुका है कि आज कांग्रेस द्वारा ऐसी अनेक शक्तियाँ प्रयुक्त की जाती हैं जो उसे संविधान में स्पष्ट रूप से किसी स्थान पर प्रदान नहीं की गई हैं। संविधान के प्रथम अनुच्छेद की आठवीं धारा के अठारहवें खंड में कांग्रेस को ऐसी समस्त विधियाँ निर्मित करने की शक्ति प्रदान की गई है जो संविधान में उल्लिखित कांग्रेस की अन्य शक्तियों को तथा संयुक्त राज्य के शासन अथवा उसके किसी विभाग या पदाधिकारी को संविधान द्वारा प्रदान की गई शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिए "आवश्यक तथा उचित" हो।[1] इस उपबंध से स्पष्ट हो जाता है कि संविधान-

---

[1] The Congress shall have power "to make all laws which shall be necessary and proper for carrying into execution the foregoing powers, and all other powers vested by this Constitution in the Government of the United States, or in any department or officer thereof."—Art. 1, Sec. VIII, clause 18,

निर्माताओं ने जानबूझ कर कांग्रेस को कुछ निहित शक्तियाँ प्रदान की थीं। परन्तु उन्होंने यह कभी स्वप्न में भी न सोचा होगा कि इस उपबंध के कारण किसी समय कांग्रेस इतनी शक्तिशाली बन जावेगी जितनी वह आज बन गई है।

संविधान के प्रवर्तन के कुछ समय के बाद ही कांग्रेस की निहित शक्तियों के संबंध में विवाद उठ खड़ा हुआ था। हैमिल्टन तथा उनके जैसे विचार वाले कुछ अन्य नेताओं का मत था कि कांग्रेस अपनी निहित शक्तियों के द्वारा अनेक ऐसे कार्य कर सकती है जिन्हें करने की शक्ति उसे स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं की गई है। इस मत का विरोध करने वालों में टॉमस जैफरसन का नाम उल्लेखनीय है। जैफरसन का मत था कि यदि कांग्रेस की निहित शक्तियों के सिद्धान्त को एक बार मान लिया गया तो संघीय शासन की शक्तियों की कोई सीमा ही नहीं रहेगी। कांग्रेस अपनी निहित शक्तियों की आड़ में कुछभी करेगी। अंततः यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख गया। उस समय प्रधान न्यायाधीश मार्शल थे। उन्होंने कांग्रेस की निहित शक्तियों के सिद्धान्त के मान्यता प्रदान की।[१] इस मान्यता से कांग्रेस और संघीय शासन की शक्तियों में वृद्धि का मार्ग अनवरुद्ध हो गया।

अनन्य तथा समवर्ती शक्तियाँ—संविधान में कुछ विषयों पर विधियाँ बनाने की शक्ति कांग्रेस को प्रदान की गई है तथा उन विषयों पर विधियाँ बनाने से राज्य सरकारों को वर्जित किया गया है। सिक्के चलाना, तथा आयातों पर शुल्क लगाना ऐसे विषय हैं जिन पर विधि-निर्माण की कांग्रेस को अनन्य शक्ति प्राप्त है। परन्तु कुछ विषय ऐसे भी हैं जिन पर यद्यपि विधियाँ बनाने का अधिकार कांग्रेस को दिया है पर राज्य शासनों को उन पर विधियाँ बनाने से वर्जित नहीं किया गया है। यदि उन विषयों की प्रकृति ही ऐसी नहीं है कि उन पर राज्य सरकारें विधियाँ नहीं बना सकतीं, यथा अन्तर्राज्यिक तथा विदेशी व्यापार का नियमन, तो उन पर संघ और राज्य दोनों के शासन विधि-निर्माण कर सकते हैं। कुछ विषय ऐसे भी हैं जिन पर संविधान में संघ और राज्य दोनों की सरकारों की विधि-निर्माण की शक्ति को स्वीकार किया गया है। इसे हम समवर्ती शक्ति (Concurrent power) कह सकते हैं। उदाहरणार्थ,

---

[१] प्रधान न्यायाधीश का Mc Culloch *v.* Maryland (1819) में निर्णय।

कांग्रेस के निर्वाचन तथा दिवालियापन के संबंध में संघ और राज्य दोनों की सरकारें विधियाँ बना सकती हैं। जिन विषयों पर संघ और राज्य दोनों की सरकारें विधियाँ बना सकती हैं, उन पर विवाद की अवस्था में कांग्रेस की विधियों को प्राथमिकता दी जाती है। अर्थात् यदि दोनों की विधियाँ परस्पर विरोधी हों तो कांग्रेस की विधियों को मान्य माना जायगा।

प्रकृति के आधार पर शक्तियों का वर्गीकरण—कांग्रेस की शक्तियों को उनकी प्रकृति के आधार पर हम निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं :

१. विधायी तथा वित्तीय शक्तियाँ (Legislative and Financial Powers).

२. प्रतिरक्षा संबंधी शक्तियाँ (Military Powers)

३. प्रशासनीय तथा अधीक्षण संबंधी शक्तियाँ (Administrative and Supervisory Powers).

४. संविधान-संबंधी शक्तियाँ (Constituent Powers)

विधायी तथा वित्तीय शक्तियाँ—संविधान के प्रथम अनुच्छेद की आठवीं धारा में कांग्रेस की विधायी, वित्तीय तथा प्रतिरक्षा संबंधी शक्तियों का उल्लेख है। कांग्रेस को विधियाँ पारित कर विभिन्न प्रकार के कर और शुल्क लगाने, संयुक्त राज्य की साख पर ऋण लेने, तथा देश की प्रतिरक्षा और जन-कल्याण के लिए आवश्यक व्यवस्था करने की शक्ति प्रदान की गई है। इस शक्ति पर यह निर्बन्ध है कि समस्त कर और शुल्क सम्पूर्ण संयुक्त राज्य में समान होना चाहिए। कांग्रेस को विदेशी राष्ट्रों से तथा विभिन्न राज्यों के मध्य पारस्परिक व्यापार को नियमित (regulate) करने का अधिकार भी दिया गया है। यद्यपि ये शक्तियाँ देखने में सामान्य प्रतीत होती हैं, परन्तु कांग्रेस द्वारा पारित की जाने वाली विधियों का एक बड़ा भाग इन्हीं पर आधारित रहता है। विशेषतः "जन-कल्याण" के लिए व्यवस्था करने की शक्ति एक ऐसी शक्ति है जो कांग्रेस को कुछ भी करने की शक्ति प्रदान करती है। सङ्घीय शासन की शक्तियों में जो महान् वृद्धि हुई है उसमें इस उपबन्ध का महत्त्वपूर्ण योगदान है।[1]

[1]सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख जब सन् १९३७ में सामाजिक सुरक्षा अधि-नियम की सांविधानिकता का प्रश्न आया था तो उसने इसी उपबन्ध की ओर निर्देश कर उसे वैध घोषित किया था।

संविधान के द्वारा कांग्रेस को मुद्रा ढालने, देशी तथा विदेशी मुद्राओं का मूल्य निश्चित करने तथा तोल और माप के प्रतिमान निर्धारित करने की शक्ति दी गई है। कांग्रेस विधि के द्वारा जाली सिक्के बनाने वालों के लिये दंड की व्यवस्था कर सकती है तथा डाकखानों और डाक-मार्गों के निर्माण का प्रबंध कर सकती है। वह विज्ञान तथा कलाओं की उन्नति के लिए प्रतिलिप्योधिकार (Copyright) तथा एकस्व (Patent) आदि के नियम बना सकती है। कांग्रेस को सर्वोच्च न्यायालय से निम्न श्रेणी के न्यायाधिरणों (Tribunals) की स्थापना की विधि द्वारा व्यवस्था करने का भी अधिकार प्राप्त है। कांग्रेस को सामुद्रिक-दस्युओं तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध अपराध करने वालों के लिए दंड दिलवाने की व्यवस्था करने का भी अधिकार दिया गया है। कांग्रेस को संयुक्त राज्य की राजधानी के क्षेत्र के प्रशासन के लिए तथा विभिन्न राज्यों में राष्ट्रीय सरकार द्वारा दुर्ग, शस्त्रागार, 'डॉकयार्ड' आदि बनाने के लिए खरीदे हुए क्षेत्रों के लिए विधियाँ बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है। इसके अतिरिक्त कांग्रेस को "उपरोक्त शक्तियाँ तथा संघीय शासन और पदाधिकारियों को संविधान द्वारा प्रदान की गई समस्त शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक और उचित" समस्त विधियाँ बनाने की शक्ति दी गई है। इस अन्तिम शक्ति का महत्व इसी अध्याय में एक स्थान पर स्पष्ट किया जा चुका है।

प्रतिरक्षा सम्बन्धी शक्तियाँ—कांग्रेस को संविधान के द्वारा देश की प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक व्यवस्था करने के संबंध में भी कुछ शक्तियाँ दी गई हैं।[1] कांग्रेस विदेशी राज्यों से युद्ध घोषित कर सकती है, शत्रु के व्यापारिक जहाज को पकड़ने का आदेश दे सकती है, तथा स्थल और जलीय क्षेत्रों में शत्रु पक्ष के लोगों तथा सामान को पकड़ने की आज्ञा दे सकती है। कांग्रेस सेना संगठित कर सकती है तथा उसके पोषण की व्यवस्था कर सकती है। इस संबंध में यह निर्बन्ध है कि सेना के पोषण के लिए आवश्यक धन की स्वीकृति दो वर्ष से अधिक के लिए न दी जा सकेगी। कांग्रेस को जल और थल सेना

---

[1] इन शक्तियों की गणना कांग्रेस की विधायी शक्तियों में भी की जा सकती है। पर कांग्रेस विदेशों से युद्ध विधि पारित कर नहीं घोषित करती, इसीलिए इनका पृथक उल्लेख किया जा रहा है।

के प्रशासन और विनियमन के लिए आवश्यक नियम आदि बनाने का भी अधिकार है।

संविधान में कांग्रेस को संघीय शासन की विधियों के क्रियान्वय के लिए तथा आन्तरिक विद्रोहों का दमन करने और वाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा करने के लिए नागरिक-सेना (Militia) के बुलाए जाने की व्यवस्था करने की शक्ति दी गई है। नागरिक सेना के संगठन, शस्त्रीकरण तथा अनुशासन आदि के लिए भी कांग्रेस व्यवस्था कर सकती है।

प्रशासन, अधीक्षण तथा अनुसंधान सम्बन्धी शक्तियाँ—संविधान में कांग्रेस की प्रशासनीय तथा अधीक्षण-सम्बन्धी शक्तियों का विस्तृत उल्लेख नहीं है; यदा-कदा प्रसंगवश ही उनका वर्णन है। शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त में विश्वास रखने वाले संविधान-निर्माताओं से विधानमण्डल को व्यापक प्रशासनीय शक्तियाँ प्रदान करने की आशा भी नहीं की जा सकती। परन्तु व्यवहार में कांग्रेस पर्याप्त प्रशासनीय तथा अधीक्षण संबंधी शक्तियों का प्रयोग करती है। संविधान में किसी कार्यपालिका विभाग अथवा अभिकरण (agency) का उल्लेख नहीं है। उन सब की सृष्टि कांग्रेस द्वारा समय-समय पर कांग्रेस द्वारा पारित संविधियों (statutes) के द्वारा हुई है। केवल कुछ अस्थायी तथा अमहत्वपूर्ण अभिकरणों की सृष्टि कार्यपालिका द्वारा हुई है। कार्यपालिका-विभागों और प्रशासनिक अभिकरणों द्वारा अपने कृत्यों की पूर्ति के लिए जो धन व्यय किया जाता है वह भी कांग्रेस के द्वारा ही विनियोगों (appropriations) के रूप में स्वीकृत किया जाता है। इस कारण भी कांग्रेस का उनके कार्यों तथा नीतियों पर पर्याप्त नियंत्रण रहता है। कांग्रेस विभिन्न विभागों आदि से समय-समय पर आख्याएँ तथा आँकड़े माँगती रहती है। वह उनके कार्यों की जाँच करने के लिए समितियाँ तथा आयोग भी नियुक्त करती है। इस संबंध में अमेरिका-विरोधी कार्यवाहियों की समिति (Committee On Un-American Activities) का नाम उल्लेखनीय है, क्योंकि इसके कार्यों की बहुत अधिक आलोचना हुई है।[1]

[1] प्रो० जिंक के अनुसार सन् १९४५ में लगभग पचास विशेष समितियाँ अथवा स्थायी समितियों की उपसमितियाँ किसी न किसी प्रकार की जाँच कर रही थीं (Harold Zink, *op. cit.*, p. 365.),

कभी-कभी कांग्रेस ऐसे प्रस्ताव पारित करती है जिनमें प्रशासनीय विभागों को एक विशेष नीति का अनुसरण करने को कहा जाता है। कार्यपालिका-विभाग इन प्रस्तावों के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य नहीं है और न कांग्रेस उनके विरुद्ध कुछ कार्यवाही ही कर सकती है। परन्तु विभिन्न विभागों के लिए धन स्वीकृत करना कांग्रेस का एक ऐसा अस्त्र है जिससे वह अपनी बहुत बड़ी सीमा तक अपनी इच्छा मनवाने में सफल हो जाती है। यदि कोई विभाग या अभिकरण कांग्रेस द्वारा सुझाई गई नीति का अनुसरण नहीं करता तो कांग्रेस उसे धन देने से इन्कार कर सकती है। इसी अस्त्र के प्रयोग से कांग्रेस कार्यपालिका को अपनी वैदेशिक नीति में परिवर्तन करने के लिए बाध्य कर सकती है। उदाहरणार्थ, यदि राष्ट्रपति किसी विदेशी राज्य को आर्थिक सहायता देना चाहता है और कांग्रेस उसके लिए धन की स्वीकृति नहीं देती तो राष्ट्रपति असहाय हो जायगा।[1] कांग्रेस के वैदेशिक वाणिज्य (Foreign Trade) को विनियामित करने की शक्ति भी प्राप्त है और वैदेशिक नीति का वाणिज्य नीति से गहरा सम्बन्ध होने के कारण कांग्रेस विदेश नीति को भी प्रभावित कर सकती है। इसके अतिरिक्त सिनेट की संधियों और पदाधिकारियों की नियुक्तियों की पुष्टि करने की जो शक्ति प्राप्त है[2] वह भी कांग्रेस को कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने की पर्याप्त क्षमता प्रदान करती है।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रो० ज़िंक का यह कथन उचित ही प्रतीत होता है कि सिनेट और प्रतिनिधि सभा दोनों का पर्याप्त समय तथा शक्ति ऐसी समस्याओं पर व्यय होता है जो मुख्य रूप से प्रशासनीय हैं, यद्यपि उनके समाधान के लिए विधि पारित करना आवश्यक हो सकता है।[3] इनके कथन की पुष्टि प्रो० मनरो के इस अनुमान से होती है कि संभवतः तीन-चौथाई राष्ट्रीय "विधियाँ प्रशासनिक कार्यों का आवरण मात्र होती हैं।"[4]

[1] इसी वर्ष (सन् १९५६ में) कांग्रेस ने राष्ट्रपति आइजनहोवर की अपीलों की चिंता न कर विदेशों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता में पर्याप्त कमी की है।

[2] इस पर गत अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है।

[3] Zink, Harold, *op. cit.*, p. 364.

[4] Munro, W. B., *op. cit.*, p. 347.

संविधान संबंधी शक्तियाँ—कांग्रेस को उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण शक्ति प्राप्त है। संविधान में संशोधन का प्रस्ताव कांग्रेस के द्वारा, अथवा कांग्रेस द्वारा संयुक्त राज्य के दो-तिहाई राज्यों के विधानमण्डलों के अनुरोध पर बुलाए गए राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा ही प्रस्तुत किया जा सकता है। स्विट्ज़रलैंड तथा संयुक्त राज्य के ही कुछ राज्यों में नागरिकों की एक निश्चित संख्या को भी यह अधिकार प्राप्त है परन्तु संयुक्त राज्य के संघीय संविधान में वैसी कोई व्यवस्था नहीं है। व्यवहार में राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाए जाने का अवसर आज तक नहीं आया, अतएव वस्तुस्थिति यही है कि संविधान में संशोधन कांग्रेस के द्वारा ही दो-तिहाई बहुमत से प्रस्तावित किये जा सकते हैं, यद्यपि वे प्रभावी तभी होते हैं जब तीन-चौथाई राज्यों के विधानमण्डल या सम्मेलन उनका अनुसमर्थन कर देते हैं। कांग्रेस ही सांविधानिक उपबन्धों की व्याख्या कर विधियाँ पारित करती है। यद्यपि संविधान की व्याख्या-संबंधी प्रश्नों पर अन्तिम निर्णय सर्वोच्च न्यायालय ही करता है, परन्तु उसके सम्मुख कांग्रेस द्वारा पारित विधियों का एक अत्यल्प भाग ही परीक्षण के लिए जाता है। शेष समस्त विधियों का आधार कांग्रेस द्वारा किया गया संविधान का निर्वचन (interpretation) ही होता है। इस प्रकार संविधान के संशोधन, निर्वचन तथा परिवर्धन में कांग्रेस का महत्वपूर्ण योग होता है।

विधि-निर्माण प्रक्रिया (Law-making Procedure)

कांग्रेस का मुख्य कार्य, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, विधि-निर्माण है। ऊपर यह उल्लेख किया जा चुका है कि कांग्रेस किन-किन विषयों पर विधियाँ बना सकती है। यहाँ हम विधियों के निर्माण में व्यवहृत प्रक्रिया पर विचार करेंगे।

विधेयकों के भेद—कांग्रेस द्वारा पारित विधियों का सूत्रपात विधेयक (bill) अथवा संयुक्त प्रस्ताव (Joint Resolution) के रूप में होता है। इन दोनों का यथार्थ अन्तर बताना कठिन ही है और इस कारण इस अन्तर को समाप्त कर देने के सुझाव दिए गए हैं। विधेयकों को भी 'वैयक्तिक" (Private) और सार्वजनिक (Public) नामक दो वर्गों में विभक्त किया जाता है। "वैयक्तिक" विधेयक वे होते हैं जो सार्वजनिक दृष्टि से महत्वरहित होते हैं तथा जिनका संबंधी किसी विशेष व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों से ही होता है। उदाहरणार्थ, एक

ऐसा विधेयक जिसके द्वारा किसी सरकारी वाहन के द्वारा किसी व्यक्ति को पहुँचाई गई शक्ति के लिए प्रतिकर की व्यवस्था की जाती है, "वैयक्तिक विधेयक" कहलाएगा।[1] इसके विपरीत "सार्वजनिक विधेयक" वे होते हैं जिनका सम्बन्ध शासन की नीति अथवा कार्यक्रम से होता है तथा जो समस्त जनता अथवा उसके एक प्रमुख भाग के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। "सार्वजनिक" तथा "वैयक्तिक" विधेयकों में भेद करने के लिए कोई निश्चित मानदण्ड नहीं है, अतएव इनका अन्तर भी सैद्धान्तिक ही अधिक है।

विधेयकों का सूत्रपात—कांग्रेस के समस्त विधेयक प्रतिनिधि-सभा या सिनेट के सदस्यों, अथवा किसी समिति के द्वारा प्रस्तावित किए जाते हैं। यदि कोई सदस्य किसी भी विषय पर कोई विधेयक प्रस्तुत करना चाहता है तो उसे केवल उसकी एक प्रति जिस पर उसका नाम भी लिखा हो सदन के सचिव (प्रतिनिधि सभा में लिपिक) के स्थान के पास रखे बक्से में डाल देनी होती है। केवल राजस्व की वृद्धि से सम्बन्धित विधेयकों के अतिरिक्त अन्य सभी विधेयक कांग्रेस के दोनों सदनों में से किसी में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। राजस्व में वृद्धि से सम्बन्धित विधेयक केवल प्रतिनिधि सभा में ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कांग्रेस के सम्मुख प्रति सत्र में प्रस्तुत किए जाने वाले विधेयकों की संख्या इतनी अधिक होती है कि उसे देख कर आश्चर्य होता है। प्रो० ऑग और रे के अनुसार आजकल प्रत्येक सत्र में लगभग दस-बारह हजार विधेयक कांग्रेस के दोनों सदनों में प्रस्तुत किये जाते हैं। सन् १९४६ के विधानमांडलिक पुनगठन अधिनियम के अङ्गीकृत होने के पूर्व तो इनकी संख्या बीस हजार तक पहुँच जाती थी।[2]

---

[1] "वैयक्तिक विधेयक" संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों के व्यक्तिगत सदस्यों के विधेयक से सर्वथा भिन्न होते हैं। संयुक्त राज्य में कार्यपालिका के सदस्य स्वयं विधेयक प्रस्तुत नहीं कर सकते, अतएव वे सदस्यों के द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं।

[2] सन् १९४६ के अधिनियम ने कांग्रेस में "वैयक्तित" विधेयक प्रस्तुत करने पर अनेक निबंध लगा दिए हैं। इस अधिनियम के अनुसार वैयक्तिक शिकायतों के निराकरण के लिए सम्बन्धित शासन-विभागों की सहायता ली जानी चाहिए, कांग्रेस की विधि-निर्माण शक्ति की नहीं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन में से कुछ सौ अथवा हजार डेढ हजार विधेयक ही विधि का रूप ले पाते हैं। शेष की प्रक्रिया की विभिन्न अवस्थाओं में ही अन्त्येष्टि हो जाती है।

यद्यपि कांग्रेस का लगभग प्रत्येक सदस्य प्रत्येक सत्र में अनेक विधेयक प्रस्तुत करता है, परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि वे सब उनके द्वारा अपनी इच्छा से प्रस्तुत किए जाते हैं। अधिकांश महत्वपूर्ण विधेयकों का उद्गम-स्थल कार्यपालिका विभाग तथा अभिकरण होते हैं[१] जो कभी-कभी तो विधेयक का पूरा प्रारूप तैयार कर किसी सदस्य के द्वारा सदन में उसे प्रस्तुत कराते हैं। इसका कारण यह है कि संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों की भाँति संयुक्त राज्य में कार्यपालिका विभागों के प्रमुख स्वयं कांग्रेस में उपस्थित होकर विधेयक प्रस्तुत नहीं कर सकते। या तो वे विधेयक प्रस्तुत करने के लिए प्रतिनिधि-सभा या सिनेट के किसी सदस्य को माध्यम बनाते हैं अथवा किसी समिति को। सरकारी विभागों के अतिरिक्त अनेक व्यक्ति, संस्थाएँ तथा गुट आदि भी किसी सदन के द्वारा ही अपने इच्छित विधेयक प्रस्तुत कराते हैं। सदस्य अनेक बार तो विधेयक के विषय से असहमत अथवा अनभिज्ञ होते हुए भी उसे अपने नाम से प्रस्तावित कर देते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि उसके पारित होने की संभावना तो वैसे ही अत्यल्प है फिर वे किसी प्रभावशाली व्यक्ति या गुट को असंतुष्ट क्यों करें। कभी-कभी सदस्य अपने निर्वाचकों को प्रसन्न करने के लिए ही किसी विषय पर विधेयक प्रस्तावित कर देते हैं, यद्यपि वे यह भली-भाँति जानते हैं कि उसके पारित होने की कोई संभावना नहीं है। मनरो का कथन उचित ही है कि अधिकांश विधेयक किसी महत्वाकांक्षा, किसी शिकायत, किसी आशा, किसी उद्देश्य अथवा किसी आंदोलन का प्रतिनिधित्व करते हैं।[२] अधिकतर प्रतिनिधि-सभा या सिनेट के सदस्य विधेयक प्रस्तुत करते समय मध्यवर्ती का ही कार्य करते हैं, जनक का नहीं।

विधेयकों की समिति अवस्था—कांग्रेस के किसी सदन में विधेयक के

---

१ Robert Luce, *Congress—An Explanation.*

२ "They represent an ambition, a grievance, a hope, a cause, or a crusade."—Munro, W. B., *op. cit.*, p. 327.

प्रस्तुत किए जाने के उपरान्त उसका क्रमांक निश्चित कर दिया जाता है और तत्पश्चात् उसे विचारार्थ सदन की उपयुक्त स्थायी समिति को सौंप दिया जाता है। सामान्यत: विधेयकों को समितियों के सिपुर्द करने के संबंध में निर्णय अध्यक्ष के एक सहायक पदाधिकारी, पार्लमेंटेरियन (Parliamentarian) के द्वारा किया जाता है, पर विवाद की दशा में अध्यक्ष स्वयं यह निश्चिय करता है कि विधेयक किस समिति को सौंपा जाय। 'वैयक्तित विधेयकों' (Private Bills) के संबंध में प्रायः उनको प्रस्तुत करने वाला सदस्य ही यह सुझाव दे देता है कि विधेयक को किस समिति को सौंपा जाय। आवश्यकता पड़ने पर समय-समय पर विधेयकों को स्थायी समितियों को न सौंप कर विशेष समितियों को सौंपा जाता है।

सदन में प्रस्तुत किया गया विधेयक को किस समिति को सौंपा जाय, यह निश्चय करने का अध्यक्ष का अधिकार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यदि वह चाहे तो विधेयक को ऐसी समिति को सौंप सकता है जो उस पर आख्या प्रस्तुत न कर उसका अन्त करने में सफल हो सकती है। सन् १९११ तक इस अधिकार का बहुत अनुचित रीति से उपयोग किया गया था, पर अब सामान्यतः ऐसा नहीं किया जाता।

समिति के पास विधेयक पहुँचने के पश्चात् सर्वप्रथम् वह उसकी आवश्यकता पर विचार करती है। यदि वह विधेयक को अनावश्यक समझती है तो उसे उस विधेयक को फाइल में नत्थी कर देने के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं करना पड़ता। यदि वह उसकी आवश्यकता स्वीकार करती है तो वह उस पर विचार आरम्भ करती है। समितियों को विधेयक के विषय पर अध्ययन की सामग्री एकत्र करने में कठिनाई नहीं होती क्योंकि इसके लिए उन्हें न केवल अनेक सुविधाएँ ही उपलब्ध रहती हैं, वरन् वे व्यक्ति या गुट जो विधेयक के पारण के लिए उत्सुक रहते हैं उसे उस विधेयक के बारे में पर्याप्त सामग्री जुटा देते हैं। यदि विधेयक अधिक महत्वपूर्ण होता है तो समिति उसके विभिन्न विभागों को पृथक्-पृथक् उपसमितियों को विचारार्थ सौंप देती है।

समितियाँ प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को अपने विचार उनके सम्मुख व्यक्त करने का अवसर प्रदान करती हैं जिसे विधेयक के संबंध में कुछ कहना होता है। न

केवल इतना ही वरन् महत्वपूर्ण विषयों से संबंधित विधेयकों पर विचार करते समय वे अनेक व्यक्तियों को, जिनमें पदाधिकारी भी सम्मिलित होते हैं, भी अपने विचार प्रकट करने के लिए बुलाती हैं। विवादग्रस्त तथा महत्वपूर्ण विधेयकों पर समितियाँ सार्वजनिक सुनवाई (Public Hearing) करती हैं, जिसमें न केवल विधेयक में रुचि रखने वाले व्यक्ति ही अपना मत व्यक्त कर सकते हैं वरन् वे वकीलों की सेवा का भी लाभ उठा सकते हैं। प्रायः समिति के सदस्य इनसे प्रश्न आदि कर वस्तुस्थिति का पता लगाने का यत्न करते हैं और इस कारण ये न्यायालय का सा रूप ले लेती हैं।[1] समिति यदि आवश्यकता समझे तो तथ्यों को जानने के लिए विभिन्न स्थानों का भ्रमण भी कर सकती है। प्रायः प्रत्येक समिति की बैठकों का ब्यौरा रखा जाता है जिससे अनुपस्थित सदस्य उसकी कार्यवाही से परिचित हो सकें।

उपर्युक्त रीति से एकत्र सामग्री के अतिरिक्त समितियों को अन्य अनेक बातों का भी ध्यान रखना पड़ता है। किसी महत्वपूर्ण विधेयक पर विचार करते समय समितियों पर प्रायः सदैव ही बाह्य प्रभाव पड़ते रहते हैं। यहाँ तक कि स्वयं राष्ट्रपति के द्वारा वैयक्तिक वार्ता अथवा पत्रों के द्वारा समिति के निर्णय को प्रभावित करने का प्रयत्न करने के उदाहरण दिए जा सकते हैं। कार्यपालिका विभागों तथा अभिकरणों के प्रधानादि भी समितियों से अपने इच्छित विधेयकों पर शीघ्र आख्या प्रस्तुत करने के लिए गम्भीर प्रयत्न करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे गुट अथवा संगठन होते हैं जिनके हित किसी विशेष विधेयक के पारित होने या न होने से संबद्ध होते हैं और वे भी उचित अनुचित सभी उपायों से समितियों के सदस्यों को प्रभावित करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

किसी विधेयक पर विचार समाप्त करने के उपरांत समिति निम्न मार्गों में से किसी मार्ग का अवलंबन कर सकती है :

१. समिति विधेयक को उसके मूल स्वरूप में, अर्थात् बिना किसी संशोधन या परिवर्तन के, सदन के समक्ष उपस्थित करती है। इसका तात्पर्य

---

[1]न्यायालय पुनर्गठन विधेयक, प्रशासनीय पुनर्गठन विधेयक, तथा तटस्थता विधेयक ऐसे विधेयकों के कुछ उदाहरण है जिन पर समितियों ने विचार करते समय सार्वजनिक सुनवाई की थी।

यह होता है कि समिति उसके इसी रूप में पारित किए जाने के पक्ष में है ।

२. समिति विधेयक में कुछ संशोधन करके सदन के समक्ष प्रस्तुत कर सकती है ।

३. समिति विधेयक की पुनर्रचना कर सकती है और इस प्रकार एक नया तथा भिन्न विधेयक सदन के समक्ष प्रस्तुत कर सकती है ।

४. समिति विधेयक पर कोई आख्या प्रस्तुत न कर उसके अंत का कारण बन सकती है ।

५. समिति सदन से उस विधेयक को रद्द करने की सिफारिश कर सकती है ।

प्रथम तीन मार्गों में से किसी भी मार्ग का अवलम्बन किए जाने की दशा में सदन अधिकतर समिति की सिफारिशों को मान लेता है । इसका कारण यह है कि सदन और समितियों में एक ही दल का बहुमत रहता है । चतुर्थ मार्ग का अवलम्बन किए जाने पर प्रायः विधेयक का अंत निश्चित हो जाता है । प्रतिनिधि-सभा के एक नियम के अनुसार सदन केवल अपनी सदस्य-संख्या के पूर्ण बहुमत से प्रस्ताव पारित करके ही समिति को अपनी आख्या (report) प्रस्तुत करने के लिए बाध्य कर सकता है । सदस्य-संख्या के पूर्ण बहुमत से ही सदन विधेयक को एक समिति से दूसरी समिति को हस्तांतरित कर सकता है । इस युक्ति का सदन द्वारा प्रयोग किए जाने के उदाहरण अधिक नहीं हैं । सामान्यतः समितियाँ पाँचवें मार्ग का अवलंबन नहीं करतीं, क्योंकि यदि उनका मत किसी विधेयक के पारित किए जाने के प्रतिकूल होता है तो वे चौथे मार्ग का अवलंबन कर विधेयक को आजीवन कारावास का दण्ड दे सकती हैं ।

समितियों द्वारा आख्या प्रस्तुत न कर विधेयक का अन्त कर देने के फलस्वरूप लगभग साठ-सत्तर प्रतिशत विधेयक सदन में प्रस्तुत होने के उपरांत कभी उसके सामने नहीं आते । अन्य देशों के निवासियों को यह प्रथा अवश्य ही आश्चर्यजनक तथा अनिष्टकर प्रतीत होगी । ब्रिटेन, भारत आदि देशों में प्रत्येक विधेयक जो किसी समिति को सौंपा जाता है सदन के समक्ष समिति की आख्या के साथ अवश्य वापस आता है । परन्तु इस प्रथा का औचित्य तब

हमारे ध्यान में आता है जब हम इस तथ्य पर विचार करते हैं कि कांग्रेस के सदस्यों के द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले समस्त विधेयकों पर दोनों सदनों द्वारा विचार किया जाय तो शायद महत्वपूर्ण विधेयक पारित ही न हो पायें। एक प्रसिद्ध लेखक के अनुसार समितियाँ विधायी यंत्र के उपस्नैहन तैल का काम करती हैं और उसे जाम होने से बचाती हैं।[1]

प्रतिवेदन अवस्था (Report Stage)—किसी विधेयक पर समिति जब विचार समाप्त कर अपनी आख्या तैयार कर लेती है तो वह विधेयक को आख्या के साथ सदन के लिपिक (Clerk) को देती है। लिपिक, विधेयक को उसकी प्रकृति के अनुसार सदन की सूचियों (Calendars) में से किसी एक में स्थान देता है।[2] विधेयकों को सूचियों में उसी क्रम से स्थान दिया जाता है जिस क्रम से वे लिपिक के पास पहुँचते हैं। एक बार सूची में स्थान प्राप्त कर लेने पर विधेयक दो ही दशाओं में उस पर से हटाया जा सकता है—या तो जब सदन द्वारा उस पर विचार आरम्भ कर दिया जाय, या जब कांग्रेस का कार्य-काल समाप्त हो जाय। सामान्यतः सदन विधेयकों पर उसी क्रम से विचार करता है जिस क्रम से वे सूची में अंकित होते है, परन्तु राजस्व व विनियोग सम्बन्धी विधेयकों तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण विधेयकों को प्राथमिकता दी जाती है। विधेयकों को प्राथमिकता देने के सम्बन्ध में निर्णय सदन के बहुमत दल के नेता अथवा अध्यक्ष (Speaker) तथा बहुमत दल की संचालन समिति के द्वारा किया

---

[1] "...The committees serve as the lubricants of the legislative machine and keep it from becoming clogged."—Munro, W. B., *op. cit.*, p. 330.

[2] प्रतिनिधि सभा में निम्न तीन सूचियाँ हैं :

१. 'यूनियन सूची' (Union Calendar)—इसमें विनियोग और सार्व-जनिक सम्पति से संबंधित विधेयकों को स्थान दिया जाता है।

२. 'हाउस सूची' (House Calendar) इसमें उपर्युक्त विधेयकों के अतिरिक्त अन्य समस्त सार्वजनिक विधेयकों को स्थान दिया जाता है।

३. 'संपूर्ण सदन समिति सूची' (The Committee of the Whole House Calendar)—इसमें व्यक्तिगत विधेयकों को स्थान दिया जाता है।

जाता है। वे नियम समिति को अपना निर्णय सूचित कर देते हैं और वह उसी के अनुसार विधेयकों पर विचार का क्रम निर्धारित कर देती है।

जब सदन द्वारा विधेयक पर विचार करने का पूर्व-निर्धारित समय आता है तब सामान्यतः सदन अपने को सम्पूर्ण-सदन समिति के रूप में परिवर्तित कर लेता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, प्रतिनिधि-सभा के सामान्य सत्र तथा सम्पूर्ण सदन समिति के रूप में कार्य करते समय विशेष अन्तर नहीं होता। यदि कोई महत्वपूर्ण अन्तर होता है तो यह कि अध्यक्ष अपना स्थान रिक्त कर देता है तथा उसके स्थान पर सदन द्वारा निर्वाचित एक अस्थायी सभापति कार्य करता है, एवं सदन के वाद-विवाद संबंधी नियम कुछ उदार कर दिए जाते हैं जिससे अधिक सदस्य उसमें भाग ले सकते हैं। सदन जब संपूर्ण सदन समिति के रूप में कार्य करता है तब उसके विषयों की पुष्टि सामान्य बैठक में होना आवश्यक होता है। संपूर्ण सदन समिति के रूप में अथवा सामान्य बैठक में सदन इसी समय विधेयक की धाराओं पर विस्तारपूर्वक विचार करता है। इसे विधेयक का द्वितीय वाचन (Second Reading) कहते हैं। विचार समाप्त करने के पश्चात् सदन इस प्रश्न पर निर्णय करता है कि क्या विधेयक को संशोधित अवस्था में पुनर्मुद्रित किया जाय और उसका तृतीय वाचन किया जाय। इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में होने पर विधेयक का तृतीय वाचन (Third Reading) होता है।

कांग्रेस के वाद-विवाद—विधेयक के तृतीय वाचन के संबंध में कुछ कहने के पूर्व दोनों सदनों के वाद-विवाद पर भी संक्षेप में विचार कर लेना उचित ही होगा। इस संबंध में प्रतिनिधि-सभा और सिनेट के नियमों में महत्वपूर्ण अन्तर हैं। प्रतिनिधि सभा प्रायः संपूर्ण सदन के रूप में कार्य करती है और इस कारण अधिकतर समस्त सदस्यों को केवल पाँच-पाँच मिनट में ही अपना भाषण समाप्त करना होता है।[1] प्रतिनिधि सभा की नियम समिति अपनी विशेष व्यवस्था के द्वारा किसी विधेयक पर वाद-विवाद

---

[1] पाँच मिनट से अधिक बोलने की अनुमति सदन द्वारा सर्वसम्मति से दी जा सकती है, पर सामान्यतः सदस्य अनुमति नहीं माँगते।

को निर्बन्धित कर सकती है अथवा वाद-विवाद के बिना ही विधेयक पर मतदान कराने की व्यवस्था कर सकती है। राष्ट्रपति रूजवेल्ट की "नवीन योजना" (New Deal) के काल में प्राय: सदन को वाद-विवाद का अवसर ही नहीं दिया जाता था, परन्तु सामान्य स्थिति में ऐसा नहीं किया जाता। प्रत्येक विधेयक पर वाद-विवाद का पर्याप्त समय दिया जाता है। इतना अवश्य होता है कि सदस्यों को बोलने के लिए अवसर कम मिलता है और इस कारण उन्हें अपनी बात को संक्षेप में कहना पड़ता है। अधिकतर यथार्थ वाद-विवाद धन-संबंधी विधेयकों पर[1] अथवा विशेष महत्व के विधेयकों पर ही होता है और अनेक विधेयक तो प्रतिनिधि सभा द्वारा बिना किसी वाद-विवाद के ही पारित कर दिए जाते हैं।

प्रतिनिधि-सभा की तुलना में सिनेट में सदस्यों को भाषण देने की बहुत अधिक स्वतंत्रता रहती है। सन् १६१७ तक तो उनका भाषण देने का अधिकार असीमित था, परन्तु इस अधिकार के दुरुपयोग को देखते हुए उस वर्ष यह नियम बना दिया गया कि यदि दो-तिहाई सदस्य वाद-विवाद समाप्त करने के पक्ष में हों तो सदस्यों को एक घंटे में ही भाषण समाप्त करने के लिए बाध्य किया जा सकेगा। व्यवहार में इस नियम से स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ क्योंकि वाद-विवाद समाप्त करने के प्रस्ताव पर दो-तिहाई सदस्यों का मत प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होता है। लगभग सत्ताईस वर्ष (१९१९-४६) के समय में केवल चार बार ही ऐसा प्रस्ताव पारित किया जा सका। सिनेट के सदस्य अपनी भाषण की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सदैव सतर्क रहते हैं और यही कारण है कि अनेक बार प्रयत्न किए जाने पर भी वाद-विवाद पर यथार्थ प्रतिबंध लगाने वाला कोई नियम न बनाया जा सका।

सिनेट के सदस्यों द्वारा अपने भाषण के अधिकार के दुरुपयोग को अंग्रेजी में 'फिलीबास्टिंग' (Filibustering) कहते हैं। कुछ सदस्य जो किसी विधेयक को पारित नहीं होने देना चाहते अपना भाषण अकारण ही जारी रखते हैं और अपने अनर्गल प्रलाप के द्वारा सिनेट के कार्य को अवरुद्ध कर देते

[1] Bryce, *Modern Democracies*, Vol. II, p. 65.

हैं। कुछ सदस्य मिलकर ही इस युक्ति का उपयोग नहीं करते; ऐसे भी उदाहरण दिए जा सकते हैं जब एक ही सदस्य ने कई दिन तक अपना भाषण जारी रख कर सिनेट को विधेयक को पारित नहीं कर दिया, यद्यपि अधिकांश सदस्य उसके पारित किए जाने के पक्ष में थे। सदस्यों ने भाषण की स्वतंत्रता की आड़ में सदन में बाइबिल और शब्द-कोष तक पढ़ कर सुनाए हैं।[1] कभी-कभी तो भाषण समाप्त न करने की धमकी का ही इतना प्रभाव होता है कि बहुमत पक्ष वाले विधेयक में महत्वपूर्ण संशोधन करने को प्रस्तुत हो जाते हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रो० कार्विन ने यह शंका व्यक्त की है कि 'फिलीबस्टिंग' के कारण न केवल अनेक अच्छे विधेयकों का ही अन्त हो जाता है वरन् अनेक अवांछनीय विधेयक भी पारित हो जाते हैं।[2] परन्तु फिलीबस्टिंग का प्रयोग कभी-कभी ही किया जाता है और अनेक लेखकों के अनुसार इसके कारण जनहितकारी विधेयकों की बड़ी संख्या का अन्त नहीं हुआ।

कांग्रेस के दोनों सदनों के सदस्यों को अपने भाषण के आधिकारिक रूप से प्रकाशित होने वाले वर्णन में परिवर्तन करने की सुविधा प्राप्त है। वे सदन की आज्ञा से उसमें कुछ अंश जोड़ भी सकते हैं, अथवा बिना सदन में भाषण दिए ही अपना भाषण प्रकाशित करा सकते हैं। इस व्यवस्था के परिणामस्वरूप सदस्यों का ध्यान विधेयक के गुण दोषों के स्थान पर अपने निर्वाचकों के मत पर अधिक केन्द्रित रहता है।

तृतीय वाचन तथा मतदान—ऊपर यह उल्लेख किया जा चुका है कि समिति की आख्या पर विस्तृत विचार करने के पश्चात् इस प्रश्न पर मतदान कराया जा सकता है कि क्या विधेयक का तीसरा वाचन हो। यदि सदन का बहुमत तृतीय वाचन के पक्ष में मत देता है तो उसको संशोधित रूप में पुनर्मुद्रित कराया जाता है और उसके पश्चात् विधेयक सदन के तृतीय वाचन के लिए

---

[1] Zink, H., *op. cit.*, p. 402.

[2] "Nor, unfortunately is the question simply whether the filibuster has killed good measures, but also whether it had led to the enactment of bad ones."—Corwin, *The President : Office and Powers*, p. 291.

प्रस्तुत किया जाता है। सामान्यतः तृतीय वाचन की कार्यवाही औपचारिक ही होती है क्योंकि इस समय केवल विधेयक का शीर्षक ही पढ़ कर सुना दिया जाता है।[1] और उसके पश्चात् सम्पूर्ण विधेयक पर मतदान कराया जाता है। यदि मतदान के फलस्वरूप यह पाया जाता है कि उपस्थित सदस्यों का बहुमत विधेयक के पक्ष में है तो विधेयक को सदन द्वारा पारित मान लिया जाता है।

उपर्युक्त प्रक्रिया से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी विधेयक के पारण में उसकी समिति अवस्था तथा द्वितीय वाचन की अवस्था ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। प्रथम और तृतीय वाचन के समय तो सामन्यतः केवल शीर्षक का नाम ही पढ़ कर सुना दिया जाता है।

द्वितीय सदन द्वारा विधेयक का पारण—एक सदन द्वारा पारित कर दिये जाने के पश्चात् विधेयक को सदन के अध्यक्ष (अथवा सभापति) के हस्ताक्षर करा कर द्वितीय सदन में विचारार्थ भेज दिया जाता है। अर्थात् प्रतिनिधि सभा में पारित होने वाला विधेयक सिनेट को भेजा जाता है और सिनेट में पारित होने वाला प्रतिनिधि सभा को। द्वितीय सदन में भी विधेयक को उन्हीं सब अवस्थाओं को पार करना पड़ता है जो उसे प्रथम सदन में पार करना पड़ीं थीं। प्रथम वाचन, समिति अवस्था, द्वितीय वाचन, तथा तृतीय वाचन—इन सब अवस्थाओं को सफलतापूर्वक पार कर लेने पर विधेयक द्वितीय सदन के द्वारा पारित होता है। द्वितीय सदन का अध्यक्ष (अथवा सभापति) भी उस पर अपने हस्ताक्षर कर उसे प्रमाणीकृत करता है।

दानों सदनों में विवाद—किसी विधेयक के विधि का रूप लेने के लिए यह आवश्यक है कि वह दोनों सदनों द्वारा एक ही रूप में पारित किया जाय। यहाँ "एक ही रूप" वाक्य का शाब्दिक अर्थ ही समझना चाहिए क्योंकि दोनों सदनों का विधेयक के सिद्धान्तों से ही सहमत होना पर्याप्त नहीं है; उनके द्वारा

---

[1]यदि कोई सदस्य चाहे तो वह यह माँग कर सकता है कि सम्पूर्ण विधेयक पढ़ा जाय अथवा संशोधन प्रस्तुत कर सकता है, परन्तु सामान्यतः न तो सम्पूर्ण विधेयक को पढ़ने की माँग की जाती है और न इस समय प्रस्तुत संशोधन ही अङ्गीकृत किए जाते हैं। (देखिए: Munro, W. B., *op. cit.*, p. 332)

विधेयक का बिल्कुल एक ही रूप में, बिना किसी परिवर्तन के, पारित होना आवश्यक है। यदि दूसरा सदन विधेयक को उसी रूप में पारित नहीं करता जिसमें पहले सदन ने उसे पारित किया था तो विधेयक को संशोधित अवस्था में पुनः पहले सदन के पास भेज दिया जाता है। यदि वह दूसरे सदन के द्वारा किये गये संशोधनों को स्वीकार कर लेता है और संशोधित अवस्था में उसे पुनः पारित कर देता है तो विधेयक कांग्रेस के दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है। परन्तु यदि पहला सदन दूसरे सदन द्वारा विधेयक में किये गये संशोधनों को स्वीकार करने से इन्कार कर देता है तो दोनों सदनों के बीच गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस गतिरोध को दूर करने के प्रयास के लिए संविधान में सम्मेलन समितियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है।

सम्मेलन समितियाँ—सम्मेलन समिति दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति होती है जिसमें दोनों सदनों के अध्यक्षों के द्वारा नियुक्त, समान संख्या में प्रतिनिधि होते हैं। ये प्रतिनिधि, जिन्हें व्यवस्थापक कहा जाता है, गुप्त रूप से परस्पर वार्ता करते हैं और विवादग्रस्त उपबन्धों पर विचार कर दोनों सदनों के बीच मतैक्य कराने का प्रयास करते हैं। सम्मेलन समिति के सदस्य यदि विवादग्रस्त प्रश्नों का कोई हल ढूँढ निकालते हैं तो उसे वे अपनी आख्या में सदनों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। इस आख्या में विधेयक में ऐसे परिवर्तन कर देने के सुझाव होते हैं जिससे वह दोनों सदनों द्वारा एक ही रूप में पारित कर दिया जाय। सामान्यतः दोनों सदन उनके सुझावों को मान लेते हैं और इस प्रकार विधेयक समान रूप में पारित हो जाता है। परन्तु ऐसा भी होता है कि सम्मेलन समिति में दोनों सदनों के प्रतिनिधियों में समझौता न हो सके अथवा दोनों या एक सदन उनके सुझाव मानने से इन्कार कर दें। तब विधेयक का अंत हो जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सम्मेलन समिति के सुझावों को पूर्णतः ही स्वीकृत या अस्वीकृत किया जा सकता है। कोई सदन उनमें परिवर्तन नहीं कर सकता।

विधेयक की अन्तिम अवस्था : राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षर—दोनों सदनों द्वारा एक ही रूप में पारित किए गये विधेयक राष्ट्रपति के पास हस्ताक्षर के लिए भेजे जाते हैं। यदि राष्ट्रपति विधेयक से सहमत होता है तो वह उस पर हस्ताक्षर कर देता है, जिसके पश्चात् विधेयक अधिनियम (Act) बन जाता है। परन्तु

राष्ट्रपति दोनों सदनों से विधेयक पर पुनर्विचार करने या उसमें कुछ संशोधन करने को भी कह सकता है अथवा उस पर हस्ताक्षर करने से मना कर सकता है। प्रथम दशा में सदनों को यह अधिकार है कि वह राष्ट्रपति द्वारा सुझाये गये संशोधनों को मानें या न मानें। परन्तु यदि राष्ट्रपति बिना उन संशोधनों के हस्ताक्षर करने से इन्कार करता है अथवा सम्पूर्ण विधेयक पर अपनी अभिषेध-शक्ति (Veto Power) का प्रयोग करता है तो विधेयक विधि का रूप तभी ले सकता है जब दोनों सदन उसे पुनः दो-तिहाई बहुमत से पारित करें। किसी भी दशा में राष्ट्रपति को विधेयक पर अपना निश्चय कांग्रेस को सूचित करने के लिए केवल दस दिन का समय प्राप्त रहता है। यदि वह दस दिन की अवधि के अन्दर विधेयक पर न हस्ताक्षर करता है, न उसे कांग्रेस को लौटाता है और न उस पर अभिषेध-शक्ति का प्रयोग करता है तो विधेयक उसके हस्ताक्षर के बिना ही विधि बन जाता है। परन्तु यदि इस अवधि के बीच ही कांग्रेस का सत्रावसान हो जाता है तो राष्ट्रपति द्वारा उस पर कोई कार्यवाही न करने पर विधेयक का अन्त हो जाता है। अन्तिम रूप से पारित विधेयक कांग्रेस का सत्र समाप्त होने पर संयुक्त राज्य की संविधि-पुस्तक (Statutes at Large of the United States) में प्रकाशित किये जाते हैं और तत्पचात् राज्य-सचिव (Secretary of the State) के द्वारा प्रभावी घोषित किये जाते हैं।

विधि-निर्माण पर वाह्य-प्रभाव : "लाबींग" (Lobbying)

संयुक्त राज्य की कांग्रेस के कार्यकरण का वास्तविक परिचय प्राप्त करने के लिए हमें उन वाह्य प्रभावों पर भी दृष्टि डालनी होगी जो सदैव क्रियाशील रहते हैं। कांग्रेस के प्रत्येक सदस्य को दो प्रकार के प्रभावों का सदैव ध्यान रखना होता है—प्रथम अपने निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाताओं की इच्छाएँ, तथा द्वितीय वे प्रभावी गुट (Pressure groups) जो वाशिंगटन में, सदैव कुछ विधियों को पारित कराने अथवा कुछ विधियों के पारण को रोकने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

चार्ल्स बियर्ड ने इन प्रभावी गुटों को चार वर्गों में विभक्त किया है :[१]

---

[१] Beard., C. A., *op. cit.*, p. 147.

१. आर्थिक
२. व्यावसायिक
३. सुधारवादी
४. धार्मिक

प्रथम वर्ग में औद्योगिक, व्यापारिक तथा कृषक राष्ट्रीय संगठनों के प्रतिनिधि आते हैं। इस गुट का महत्व बहुत अधिक होता है क्योंकि इनके पास धन की शक्ति होती है। यह दल के चुनाव-कोष में एक बड़ी धन-राशि दे कर अथवा कांग्रेस-सदस्यों से वैयक्तिक रूप से संबंध स्थापित कर विधि-निर्माण को प्रभावित करते हैं। प्रमुख उद्योगों के अधिपति तथा औद्योगिक व व्यापारिक संगठन वाशिंगटन में अपने ऐसे कुटिल और कुशल कर्मचारी रखते हैं जो येन केन प्रकारेण उनके हितों की रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं। बियर्ड महोदय के अनुसार यह अनुमान लगाया गया है कि लगभग डेढ़ सौ ऐसे आर्थिक संगठन हैं जो कभी भी कांग्रेस की 'लॉबियों' में अपने अभिकर्ताओं को कार्यरत कर सकते हैं।[1]

द्वितीय वर्ग उन वकीलों, इंजीनियरों, वास्तु-शिल्पियों आदि के संगठनों का है जो अपने व्यवसाय के लोगों के हितों की रक्षा तथा संवर्धन के लिए सजग रहते हैं। सुधार की माँग करने वाले प्रभावशाली संगठन भी वाशिंगटन में अपने अभिकर्ता रखते हैं। इनमें वे संगठन भी सम्मिलित किए जा सकते हैं जो देशभक्ति के नाम पर सेना तथा सैनिकीकरण पर अधिक व्यय की स्वीकृति चाहते हैं। अंतिम वर्ग में उन धार्मिक संगठनों को सम्मिलित किया जा सकता है जो धार्मिक मामलों में विधि-निर्माण को प्रभावित करने का यत्न करते हैं।

यहाँ यह संभव नहीं है कि इन प्रभावी गुटों के द्वारा अपनाए जाने वाले उपायों पर प्रकाश डाला जाय। संक्षेप में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि वे अपना कार्य सिद्ध करने के लिए सभी उपाय अपनाने को तत्पर रहते हैं और प्रत्येक अवसर का पूरा-पूरा उपयोग करते हैं। ऑग और रे के अनुसार प्रत्येक कांग्रेस-सदस्य के पीछे ऐसे मनुष्य (स्त्रियाँ भी) लगे रहते हैं, जो किसी विशेष विधेयक, कर प्रस्ताव, अनुदान, आदि के पक्ष या विपक्ष में मत देने के संबंध में

[1] *Ibid.*, p. 175.

उसको प्रार्थना, वादे या धमकी से प्रभावित करने में ही व्यस्त रहते हैं। लगभग प्रत्येक महत्वपूर्ण विधेयक पर किन्हीं न किन्हीं क्षेत्रों के द्वारा यह शिकायत अवश्य होती है कि उसे पारित कराने में प्रभावी गुटों का हाथ था; और अधिकांशत: यह शिकायत गलत नहीं होती।[1]

कांग्रेस का पुनर्गठन

कांग्रेस की रचना तथा कर्मकरण आदि में जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है, अनेक दोष हैं। संगठित नेतृत्व का अभाव कांग्रेस की एक प्रमुख समस्या है। संसदीय शासन-प्रणाली वाले देशों के मंत्रिमंडल की भाँति कांग्रेस में कोई नेतृत्वकारी-वर्ग नहीं होता। उसके अभाव में कार्यक्रम तथा प्रक्रिया संबंधी अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। कांग्रेस की समितियों और उनके अध्यक्षों को विधेयकों का भाग्य-निर्णय करने की शक्ति प्राप्त होने का मुख्य कारण यही है। परन्तु वे मंत्रिमण्डल के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकतीं। नेतृत्व के अभाव का ही यह परिणाम है कि कांग्रेस के सदस्य दलीय अनुशासन की अधिक चिन्ता नहीं करते। प्रभावी गुटों की कार्यवाही पर ऊपर प्रकाश डाला गया है। जिस प्रकार के उपाय वे अपनाते हैं उनकी कोई भी पर्यवेक्षक सराहना नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त कांग्रेस की एक प्रमुख समस्या यह है कि उसके सम्मुख कार्य का इतना विशाल ढेर रहता है कि वह अपने कृत्यों को भली भाँति पूर्ण नहीं कर पाती।

कांग्रेस और कार्यपालिका के संबंधों की स्थिति भी सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। कभी तो कांग्रेस राष्ट्रपति का इतना उग्र विरोध करती है कि उसके

---

[1] "The fact remains, however, that footsteps of every Congressman are dogged by men, increasing numbers of women too, whose flattering attention is aimed exclusively at influencing him, by entreaty, promise, or threat, to vote for or against this or that particular bill, tariff schedule, subsidy, or privilege....Scarcely an important bill passes without complaint arising in some quarter that an importunate and lavishly paid "locust swarm" of lobbyists has had a hand in enacting it; and as often as not the complaint is fully justified."—Ogg and Ray, *op. cit.*, p. 259.

समस्त महत्वपूर्ण प्रस्तावों को अस्वीकृत कर देती है और कभी वह बिल्कुल राष्ट्रपति के हाथों में रबर की मुहर के समान बन जाती है। सिनेट द्वारा राष्ट्रपति के द्वारा की गई नियुक्तियों तथा संधियों को पुष्ट करने की शक्ति का जिस रीति से प्रयोग किया गया है उसकी भी तीव्र आलोचना हुई है। इसी प्रकार राष्ट्रपति के द्वारा भी अपनी शक्तियों का अनेक बार अनुचित उपयोग किया गया है। वस्तुस्थिति यह है कि राजनीतिक दलों के प्रादुर्भाव के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसकी संविधान-निर्माताओं ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। दलीय व्यवस्था के सभी दोष एक बड़ी सीमा तक कांग्रेस के कर्मकरण तथा कांग्रेस एवं कार्यपालिका के सम्बन्धों में दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हीं सब दोषों को ध्यान में रखते हुए कांग्रेस के पुनर्गठन के अनेक प्रस्ताव और योजनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। सन् १९४४ में कांग्रेस ने अपने पुनर्गठन के सम्बन्ध में सिफारिशें प्रस्तुत करने के लिए एक संयुक्त-समिति भी नियुक्त की। इस समिति के सिफारिशों पर कांग्रेस ने एक विधि पारित की। इस विधि को लाफालेट-मोनरोनी विधान-मांडलिक पुनर्गठन अधिनियम[1] के नाम से संबोधित किया जाता है।[1] परन्तु इस विधि से भी समस्याओं का अन्त न हो सका। इस विधि के उपबन्ध मुख्यतः समितियों की रचना तथा प्रक्रिया, उनकी संख्या एवं उनके कर्मकरण आदि से सम्बन्धित हैं। इस विधि से समितियों की संख्या में पर्याप्त कमी की गई, उनके कार्यों की स्पष्ट व्याख्या की गई तथा इस प्रकार उनकी मनमानी पर कुछ रोक लगाई गई। साथ ही वैयक्तिक विधेयकों (Private Bills) से सम्बन्धित कार्यभार में कुछ कमी की गई, प्रभावी गुटों (Pressure groups) के अभिकर्ताओं के पंजीकरण आदि की व्याख्या कर उनका प्रभाव कम करने का प्रयास किया गया, तथा वित्तीय विधेयकों के पारण की प्रक्रिया में भी कुछ संशोधन किए गये। परन्तु इससे कांग्रेस की समस्याओं का अंत नहीं हुआ।

कांग्रेस की अधिकांश समस्याओं का मूल शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त है, क्योंकि यही राष्ट्रपति और कांग्रेस के बीच विरोध की स्थिति उत्पन्न करता है। जब तक संविधान में मूलभूत संशोधन नहीं किये जाते तब तक इस सिद्धान्त के

---

[1] *La Follelte-Monroney Legislative Reorganisation Act,* 1946.

अनाकांक्षित प्रभावों से मुक्ति नहीं मिल सकती । परन्तु शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को निकट भविष्य में पूर्णतः तिरोहित या बड़ी मात्रा में संशोधित किया जा सकेगा, यह संदेहजनक है। ऐसे किसी परिवर्तन के लिए जनमत का उसके पक्ष में होना आवश्यक होगा और इसके लिए प्रबल आन्दोलन की आवश्यकता होगी। कोई प्रमुख राजनीतिक दल इसे अपने कार्यक्रम का मुख्य विषय बनायेगा, ऐसी संभावना नहीं है।

राज्य के नागरिक अथवा ... करने का आरोप लगाया ...
सकता था।

५. संविधान तथा उ... विधियों अथवा विदेशों से ...
गई संधियों के समुचित नि... ...tion) के लिए भी ...
न्यायपालिका का स्थापित... ...। यदि ऐसा न किया जा...
तो संविधान, विधियों तथ... ...क राज्य के द्वारा पृथक-पृथ...
तथा संभवतः परस्पर विरे... ...हास्यास्पद दृश्य उपस्थित...
सकता था। इससे उत्पन्न ... की भली-भांति कल्पना की ...
सकती है।

६. विदेशी राजदूतों ... अन्तर्राष्ट्रीय ...
के अधीन उत्पन्न होने ... करने के लिए ...
राष्ट्रीय न्यायपालिका ... विदेशी ...
संघीय शासन से ... की सरकारों से। ...
दशा में उनके ... का अधिकार राज्यों...
न्यायालयों को देना ...
संघीय न्यायपालिका ...

अध्याय १३

संघीय न्यायपालिका

संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन का तृतीय अंग संघीय न्यायपालिका है जिसके संगठन, क्षेत्राधिकार आदि का उल्लेख संविधान के तृतीय अनुच्छेद में किया गया है। अमेरिकी शासन-प्रणाली में न्यायपालिका की महत्वपूर्ण स्थिति का अनुमान हम इसी तथ्य से लगा सकते हैं कि विल्सन ने उसे 'सम्पूर्ण व्यवस्था का एकमात्र प्रभावी संतुलन-चक्र'[१] कहा है। प्रो० चार्ल्स बियर्ड के मतानुसार न्यायपालिका कई प्रकार से सत्ताओं के संतुलन तथा वैयक्तिक अधिकारों की संरक्षक है।[२]

पृथक संघीय न्याय व्यवस्था की आवश्यकता—यहाँ हमारे समक्ष यह प्रश्न आता है कि सन् १७८७ में संविधान-निर्माताओं ने राज्यों का सुस्थापित न्याय-व्यवस्था के होते हुए भी पृथक् संघीय न्याय-व्यवस्था की स्थापना का निश्चय क्यों किया? इस प्रश्न का उत्तर जानने की जिज्ञासा तब और भी बढ़ जाती है जब हम सुनते हैं कि पृथक संघीय न्याय-व्यवस्था की स्थापना के प्रश्न पर फिलाडेल्फिया सांविधानिक सम्मेलन के सदस्यों में लगभग मतैक्य सा था। संक्षेप में वे कारण, जिन्होंने संविधान-निर्माताओं को पृथक् संघीय न्याय-व्यवस्था की स्थापना की व्यवस्था करने के लिए प्रेरित किया, निम्नलिखित है :—

१. संविधान-निर्माता राज्यमंडलकालीन शासन-प्रणाली के उन दोषों से भली भाँति परिचित थे जिन्होंने उसे असफल बनाया। अलैक्जेंडर हैमिल्टन ने

---

[१] 'The only effectual balance-wheel of the whole system.'—Wilson, *Congressional Government*, p. 34.

[२] In many ways the judiciary is the guardian of the balance in power and of individual rights.—Charles Beard, *American Government and Politics*, p. 226.

"न्यायिक शक्ति के अभाव" को राज्यमंडल के विधान (Articles of Confederation) का सर्वप्रधान दोष बताया था।[1] यह स्वाभाविक ही था कि संविधान-निर्माताओं ने इस दोष को दूर करने के लिए पूर्ण प्रयत्न किया।

२. संविधान-निर्माता संयुक्त राज्य के लिए जिस शासन-प्रणाली की व्यवस्था कर रहे थे उसका स्वरूप संघीय था। संघीय शासन-प्रणाली का एक आवश्यक लक्षण केन्द्र और एककों के बीच शक्तियों का वितरण होता है जिसके कारण उनमें समय-समय पर विवाद उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है। इन विवादों का निपटारा करने के लिए राष्ट्रीय न्याय-व्यवस्था की स्थापना करना उन्हें आवश्यक प्रतीत हुआ। राज्यों और केन्द्र के मध्य उत्पन्न होने वाले विवादों के अतिरिक्त विभिन्न राज्यों के बीच उत्पन्न होने वाले पारस्परिक विवादों को तय करने के लिए भी राष्ट्रीय न्यायपालिका की स्थापना करना आवश्यक था।

३. संयुक्त राज्य के संविधान के द्वारा न केवल संघ और राज्यों के बीच ही शक्ति-वितरण किया गया है, वरन् शासन के विभिन्न अङ्गों के बीच भी शक्ति का विभाजन किया गया है। इस प्रकार कांग्रेस और राष्ट्रपति की शक्तियाँ संविधान द्वारा निर्दिष्ट कर दी गई हैं। इनको अपनी शक्तियों का अतिक्रमण न करने देने के लिए एक ऐसी शक्ति की आवश्यकता संविधान-निर्माताओं ने अनुभव की जो इनके प्रभाव से मुक्त हो। सर्वोच्च न्यायालय इसी अनुभूति का परिणाम है।

४. संविधान-निर्माता जनतांत्रिक सिद्धान्तों में विश्वास रखते थे और इसी कारण नागरिकों के अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए उन्होंने एक ऐसे स्वतंत्र निकाय की स्थापना की जो राज्य और नागरिकों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों पर निष्पक्षतापूर्ण निर्णय दे सके। इस संबन्ध में यह कहा जा सकता है कि यह कार्य राज्यों के न्यायालयों द्वारा भी किया जा सकता था, परन्तु कठिनाई यह थी कि दो भिन्न राज्यों के नागरिकों अथवा एक राज्य के नागरिक और दूसरे राज्य के शासन के बीच कोई विवाद उत्पन्न होने पर राज्य न्यायालय पर अपने

---

[1] Alexander Hamilton, *The Federalist*, (quoted by Ogg and Ray in *Essentials of American Government*, p. 332).

राज्य के नागरिक अथवा शासन का पक्ष ग्रहण करने का आरोप लगाया जा सकता था।

५. संविधान तथा उसके आधार पर बनी विधियों अथवा विदेशों से की गई संधियों के समुचित निर्वचन (interpretation) के लिए भी संघीय न्यायपालिका का स्थापित किया जाना आवश्यक था। यदि ऐसा न किया जाता तो संविधान, विधियों तथा संधियों आदि की प्रत्येक राज्य के द्वारा पृथक-पृथक तथा संभवतः परस्पर विरोधी व्याख्या किए जाने का हास्यास्पद दृश्य उपस्थित हो सकता था। इससे उत्पन्न होने वाली अव्यवस्था की भली भाँति कल्पना की जा सकती है।

६. विदेशी राजदूतों, अभिकर्ताओं आदि के मामलों तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों पर विचार तथा निर्णय करने के लिए भी राष्ट्रीय न्यायपालिका का स्थापित किया जाना आवश्यक था। विदेशी राष्ट्र संघीय शासन से संबंध स्थापित करते हैं, न कि राज्यों की सरकारों से। ऐसी दशा में उनसे संबंध करने वाले मामलों पर विचार करने का अधिकार राज्यों के न्यायालयों को देना सर्वथा अनुचित होता।

संघीय न्यायपालिका का क्षेत्राधिकार

संविधान के तृतीय अनुच्छेद की दूसरी धारा में संयुक्त राज्य की संघीय न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार का उल्लेख है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि संघीय शासन के अन्य अंगों की भाँति न्यायांग की शक्ति भी उल्लिखित तथा सीमित है। संघीय न्यायालय केवल उन्हीं मुकदमों पर विचार कर सकते और निर्णय दे सकते हैं जो संविधान में उल्लिखित संघीय क्षेत्राधिकार के अधीन आते हैं। संघीय शासन के न्यायिक क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत निम्न मामले आते हैं :—

१. वे मामले जो संविधान, संघीय विधियों, तथा उनके द्वारा दिए गए प्राधिकार के अधीन की गई संधियों के उपबंधों से संबंधित होते हैं। सामान्यतः ऐसे मामलों में न्यायालयों को संविधान, विधि अथवा संधि की व्याख्या कर निर्णय देना होता है।

२. राजदूतों, वाणिज्य दूतों तथा अन्य विदेशी प्रतिनिधियों से संबंध रखने वाले मामले। ऐसे मामलों पर विचार करने का अवसर संघीय न्यायालय को

कम ही प्राप्त होता है क्योंकि सामान्यत: राजदूत उस राज्य के जहाँ वे भेजे जाते हैं न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से मुक्त रहते हैं। संघीय न्यायालय को इन मामलों में क्षेत्राधिकार देने का मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि राज्यों के न्यायालय अन्तर्राष्ट्रीय विधियों का अतिक्रमण न करें।

३. नौसेना विभाग (Admiralty) तथा सामुद्रिक क्षेत्राधिकार (maritime jurisdiction) से संबंधित मामले। अमेरिकी जहाजों तथा अमेरिकी जल-सीमा में आने वाले विदेशी जहाजों पर होने वाले अपराधों पर संघीय न्यायालय ही विचार कर सकते हैं।

४. ऐसे मामले जो दो या अधिक राज्यों के बीच, दो भिन्न राज्यों के नागरिकों के बीच, अथवा एक ही राज्य के ऐसे नागरिकों के बीच जो भिन्न राज्यों के अनुदानों के अधीन भूमि पर दावा करते हैं, अथवा एक राज्य या उसके नागरिकों के तथा किसी विदेशी राज्य एवं उसके नागरिकों या प्रजा के बीच विवाद के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। संविधान की मूल व्यवस्था के अनुसार संघीय न्यायपालिका को ऐसे मामलों पर भी विचार करने का अधिकार था जो एक राज्य के नागरिकों द्वारा किसी अन्य राज्य के विरुद्ध अथवा किसी विदेशी राज्य के नागरिकों द्वारा किसी अमेरिकी राज्य के विरुद्ध दायर किए गए हों, पर ग्यारहवें संशोधन ने संघीय न्यायालयों को ऐसे मामलों में क्षेत्राधिकार से वंचित कर दिया।[१]

अनन्य तथा समवर्ती क्षेत्राधिकार—यहाँ एक बात का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। यह समझना असंगत होगा कि ऊपर जिस प्रकार के मामलों का उल्लेख किया गया है उन पर संघीय न्यायालयों को अनन्य क्षेत्राधिकार (exclusive jurisdiction) प्राप्त है, अथवा उन पर राज्य न्यायालयों के द्वारा विचार ही नहीं किया जा सकता। कुछ मामले ऐसे अवश्य

---

[१] "The judicial power of the United States shall not be construed to extend to any suit in law or equity, commenced or prosecuted against one of the United States by citizens of another States, or by citizens or subjects of any foreign State."—XIth Amendment to the *U.S. Constitution.*

हैं जिन पर केवल संघीय न्यायालय ही विचार कर सकते हैं। परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। ऐसे मामलों की सुनवाई जिनमें संयुक्त राज्य स्वयं एक पक्ष होता है केवल संघीय न्यायालयों में हो सकती है। कोई नागरिक संयुक्त राज्य के विरुद्ध, अथवा कोई राज्य दूसरे राज्य के विरुद्ध केवल संघीय न्यायालयों में ही मुकदमा चला सकते हैं। राजदूतों, वाणिज्य दूतों तथा अन्य प्रकार के विदेशी प्रतिनिधियों पर केवल संघीय न्यायालय को ही अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त है। किसी संघीय संविधि के विरुद्ध किए गए अपराधों के मामलों पर संघीय न्यायालय ही विचार कर सकते हैं। इसी प्रकार एकस्व (patent), दिवालियेपन, नौ सेना, तथा सामुद्रिक अपराधों से संबंधित मामले भी संघीय न्यायालयों के अनन्य क्षेत्राधिकार में आते हैं। युद्ध में पकड़े गए विदेशी जहाजों के मामलों पर भी केवल संघीय न्यायालय ही विचार और निर्णय कर सकते हैं। शेष सभी प्रकार के मामलों पर संघीय न्यायालयों और राज्य न्यायालयों को समवर्ती क्षेत्राधिकार प्राप्त है, अर्थात् दोनों ही उन पर विचार कर सकते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि किन मामलों पर संघीय न्यायालयों को अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा इसका निश्चय कांग्रेस द्वारा संविधानों के द्वारा किया जाता है। इस कारण संघीय न्यायालय के अनन्य क्षेत्राधिकार में संविधान में संशोधन किये बिना ही कमी या वृद्धि की जा सकती है।

संघीय न्यायालयों का संगठन तथा कार्यकरण

संयुक्त राज्य के संविधान में संघीय न्यायालयों के क्षेत्राधिकार का अपेक्षाकृत कुछ अधिक विस्तार से वर्णन किया गया है, पर संविधान उनकी रचना, संगठन तथा कार्यकरण के संबंध में मौन सा ही है। उसमें केवल इतना ही उल्लेख है कि संयुक्त राज्य की न्यायिक शक्ति एक सर्वोच्च न्यायालय तथा उन निम्न न्यायालयों में निहित होगी जिनकी कांग्रेस विधि द्वारा समय-समय पर स्थापना करेगी।[1] संविधान के प्रवर्तित किए जाने के तुरन्त पश्चात् सन् १७८९ में कांग्रेस ने न्यायपालिका अधिनियम (Judiciary Act, 1798) पारित किया जिसमें न्यायालयों के संगठन, क्षेत्राधिकार आदि के संबंध में व्यवस्था

[1] अनुच्छेद ३ धारा (१)

की गई थी। उसके पश्चात् कांग्रेस ने समय-समय पर अन्य विधियाँ पारित कर न्यायालयों के संगठन, क्षेत्राधिकार, कार्यकरण आदि के संबंध में व्यवस्था की है। संयुक्त राज्य की वर्तमान न्याय-व्यवस्था का आधार यही विधियाँ हैं।

संघीय न्यायालयों की उत्तरोत्तर व्यवस्था—संयुक्त राज्य में संघीय न्यायालयों की एक उत्तरोत्तर व्यवस्था (hierarchy) है जिसके शीर्ष पर संयुक्त राज्य का सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) तथा निम्नतम स्तर पर जिला न्यायालय (District Courts) स्थित हैं। इन दोनों के बीच एक अन्य श्रेणी के न्यायालय भी हैं जिन्हें दौरा न्यायालय (Circuit Courts) कहते हैं। हम सर्वप्रथम जिला न्यायालयों के संगठन, क्षेत्राधिकार, कार्यकरण आदि पर विचार करेंगे और तत्पश्चात् दौरा न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के संगठन आदि पर।

जिला न्यायालय—संयुक्त राज्य के संपूर्ण राज्य-क्षेत्र को न्याय-व्यवस्था की दृष्टि से लगभग नब्बे जिलों (districts) में विभाजित किया गया है। प्रत्येक राज्य में कम से कम एक जिला होना आवश्यक है। सामान्यतः जिलों की सीमारेखाएँ राज्यों की सीमारेखाओं को पार नहीं करतीं, पर कुछ जिलों में दो राज्यों के क्षेत्र सम्मिलित हैं। प्रत्येक जिले में कम से कम एक न्यायाधीश होता है, परन्तु जिन जिलों में जनसंख्या अधिक होने के कारण अथवा अन्य कारणों से न्यायालयों के समक्ष कार्य की मात्रा बहुत अधिक होती है उनमें अधिक न्यायाधीश होते हैं।[1] संपूर्ण संयुक्त राज्य में लगभग दो सौ जिला न्यायाधीश हैं। कुछ जिला न्यायालय अपने क्षेत्र के तीन-चार स्थानों पर मुकदमों की सुनवाई करते हैं। न्यायाधीश के अतिरिक्त प्रत्येक जिला न्यायालय में लिपिक (Clerk), आयुक्त (Commissioners), मार्शल एवं जिला न्यायवादी होते हैं। कुछ जिलों में उपर्युक्त अधिकारियों के साथ एक-एक या एकाधिक सहकारी भी नियुक्त किए जाते हैं। लिपिक का कार्य न्यायालय की कार्यवाही का ब्यौरा रखना, आयुक्त का दांडिक मामलों (Criminal Cases) में प्रारंभिक

---

[1] आॅग और रे के अनुसार किसी जिले में सोलह न्यायाधीश तक हो सकते हैं। (Ogg & Ray, *op cit.*, p. 338). प्रत्येक न्यायाधीश का न्यायालय पृथक होता है।

सुनवाई करना, मार्शल का न्यायालय के आदेशों तथा विनिश्चयों को क्रियान्वित करना तथा न्यायवादी का कार्य अभियुक्त के विरुद्ध अभियोग प्रस्तुत करना होता है।

जिला न्यायालय संघीय न्यायालयों में निम्नतम न्यायालय होते हैं, अतएव उनका क्षेत्राधिकार केवल प्रारंभिक (Original) ही होता है। उन्हें अपीलीय (Appellate) क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं होता। ये व्यवहार (Civil) तथा दंड (Criminal) दोनों प्रकार के मुकदमों पर विचार करते हैं। संघीय शासन के विरुद्ध किए गए समस्त अपराधों पर जिला न्यायालय विचार कर सकते हैं। किसी राज्य न्यायालय से निर्णय के पूर्व हटाए गए मुकदमों, विभिन्न राज्यों के नागरिकों के बीच मुकदमों, तथा संयुक्त राज्य से किसी राज्य एवं किसी विदेशी राज्य अथवा उसके नागरिकों के बीच ऐसे मुकदमों पर जिनका मूल्य तीन हजार डालर से अधिक हो, पर भी जिला न्यायालय विचार करते हैं। संघीय न्यायालयों में केवल जिला न्यायालय ही मुकदमों पर विचार करते समय जूरियों (Juries) तथा ग्रांड जूरियों (Grand Juries) का उपयोग करते हैं। सन् १९४६ के एक अधिनियम ने जिला न्यायालयों को संघीय शासन के विरुद्ध दावों पर विचार करने का अधिकार भी दे दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिला न्यायालयों का क्षेत्राधिकार पर्याप्त व्यापक है।

कुछ दशाओं में न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध दौरा न्यायालयों में अपील की जा सकती है। कुछ विशेष परिस्थितियों में उनके निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में भी अपील की जा सकती है। परन्तु जिला न्यायालयों द्वारा निर्णीत अधिकांश मुकदमों के विरुद्ध अपील नहीं की जाती, अतएव उनमें इनका निर्णय ही अंतिम रहता है।

अपीलीय दौरा न्यायालय—न्यायिक उत्तरोत्तर व्यवस्था में सर्वोच्च न्यायालय के नीचे तथा जिला न्यायालयों के ऊपर अपीलीय दौरा न्यायालय हैं। संयुक्त राज्य के समस्त राज्य-क्षेत्र को न्यायिक व्यवस्था की दृष्टि से दस क्षेत्रों (Circuits) में विभाजित किया गया है जिनमें से प्रत्येक में एक अपीलीय दौरा न्यायालय (Circuit Court of Appeal) है। कोलम्बिया जिले के लिए, अर्थात् उस क्षेत्र के लिए जिसमें संयुक्त राज्य की राजधानी अवस्थित है,

एक पृथक दौरा न्यायालय है। इस प्रकार दौरा न्यायालयों की पूर्ण संख्या ग्यारह है। प्रत्येक दौरा न्यायालय में तीन से लेकर नौ तक न्यायाधीश होते हैं। इन न्यायालयों के वर्तमान न्यायाधीशों की पूर्ण संख्या पचास के लगभग है। इन न्यायाधीशों के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायलिय के न्यायाधीशों को भी एक-एक या दो-दो दौरा न्यायालयों से सम्बद्ध कर दिया जाता है और वे उसकी कार्यवाही में भाग ले सकते हैं—यद्यपि सामान्यतः उनके स्वयं के पास इतना अधिक कार्य रहता है कि उन्हें इनकी कार्यवाही में भाग लेने का अवकाश ही नहीं मिलता। प्रत्येक मामले पर विचार करने के लिए कम से कम दो न्यायाधीशों का न्यायालय में बैठना आवश्यक है, परन्तु सामान्यतः तीन न्यायाधीश प्रत्येक मामले पर विचार करते हैं। यद्यपि, जैसा कि उनके नाम से ध्वनित होता है, अधिकांश दौरा न्यायालय अपने क्षेत्र में भिन्न-भिन्न नगरों में अपना सत्र करते हैं, पर सभी दौरा न्यायालयों के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता।

दौरा न्यायालयों को कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है; वे केवल जिला न्यायालयों तथा संघीय अभिकरणों (agencies) के निर्णयों के विरुद्ध अपीलों पर विचार करते और निर्णय देते हैं। इनकी स्थापना जिला न्यायालयों की स्थापना के लगभग दो वर्ष बाद हुई थी, और इनकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य सर्वोच्च न्यायालय के कार्यभार को हल्का करना था। सन् १९२५ में कांग्रेस ने इनके अधिकार में वृद्धि कर अनेक प्रकार के मामलों में इन्हें अन्तिम निर्णय करने का अधिकार दे दिया था। परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सर्वोच्च न्यायालय इनके द्वारा निर्णीत किसी भी मामले को पुनर्विलोकन के लिए अपने पास मँगवा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय इनके द्वारा विचाराधीन मामलों को भी अपने पास सुनवाई और निर्णय के लिए मँगवा सकता है। ऐसे सभी मामलों की, जिनमें कोई दौरा न्यायालय किसी राज्य की विधि को अवैध घोषित करता है, अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है। वस्तुतः ऐसे सभी मामलों की अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है जिनमें सर्वोच्च न्यायालय के मतानुसार किसी सांविधानिक प्रश्न पर निर्णय होना होता है। दौरा न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय से किसी वैधानिक प्रश्न पर अनुदेश भी प्राप्त कर सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय—संयुक्त राज्य की संघीय न्याय व्यवस्था के शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय स्थित है। इसकी स्थापना सन् १७८९ के न्यायपालिका

अधिनियम के अधीन हुई थी और उस समय इसमें एक प्रधान न्यायाधीश तथा पाँच सह-न्यायाधीश थे। न्यायाधीशों की संख्या संविधान द्वारा निर्धारित न होने के कारण कांग्रेस विधि द्वारा समय-समय पर उसमें परिवर्तन करती रही है।[1] आजकल सर्वोच्च न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश तथा आठ सह-न्यायाधीश होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का वर्तमान वार्षिक वेतन पचीस हजार डालर है। प्रधान न्यायाधीश को अन्य न्यायाधीशों से पाँच सौ डालर वार्षिक अधिक मिलता है। प्रधान न्यायाधीश को कोई विशेष वैधानिक शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। वह सर्वोच्च न्यायालय के सत्रों की अध्यक्षता करता है तथा अपने सहकारी न्यायाधीशों में से किसी एक को उन मामलों पर न्यायालय का निर्णय लिखने का कार्य सौंपता है जिन पर न्यायालय द्वारा सुनवाई और विचार किया जा चुका है। परन्तु प्रतिष्ठा की दृष्टि से सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जनता राष्ट्रपति के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति का उतना सम्मान नहीं करती जितना सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश का।

सर्वोच्च न्यायालय के नियमित सत्र (regular sessions) सामान्यतः अक्तूबर के प्रथम सोमवार को आरम्भ होते हैं तथा मई के अन्त में समाप्त होते हैं। किसी मामले की सुनवाई के समय कम से कम छः न्यायाधीशों की उपस्थिति आवश्यक होती है। न्यायालय किसी मामले पर निर्णय बहुमत से करता है— अर्थात् उसके लिए कम से कम चार न्यायाधीशों की सहमति आवश्यक होती है। यदि किसी मामले के निर्णय के संबंध में न्यायाधीशों का आवश्यक बहुमत एक ओर नहीं होता तो उसकी दोबारा सुनवाई होती है। सामान्यतः न्यायालय का अधिकांश महत्वपूर्ण कार्य न्यायालय की बैठकों में न किया जाकर न्यायाधीशों द्वारा अपने निवासस्थान अथवा कार्यालय में किया जाता है क्योंकि किसी मामले पर अपना मत देने के लिए न्यायाधीशों को पर्याप्त अध्ययन करना पड़ता है। साधारणतः

---

[1] सन् १८०१ में कांग्रेस ने न्यायाधीशों की पूर्ण संख्या पाँच निर्धारित की, सन् १८०७ में सात तथा सन् १८३७ में नौ। सन् १८६३ में कांग्रेस द्वारा की गई व्यवस्था के अनुसार न्यायाधीशों की संख्या दस हो गई। सन् १८६७ में कांग्रेस ने उनकी संख्या सात तथा १८६९ में नौ निर्धारित की। तब से अब तक उनकी संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

न्यायालय में निर्णय सोमवार को सुनाए जाते हैं। शनिवार को न्यायाधीशों की गोपनीय बैठक होती है जिसमें पिछले दिनों में सुने गए मामलों पर परस्पर विचार-विमर्श किया जाता है। न्यायालय के प्रत्येक निर्णय के साथ न्यायालय का विस्तृत "मत" (Opinion) संलग्न रहता है जिसमें युक्तियाँ दी होती हैं। जो न्यायाधीश निर्णय के पक्ष में होते हुए भी युक्तियों से सहमत नहीं होते वे अपना पृथक "सहमति सूचक" (Concurring) मत संलग्न कर सकते हैं। जो न्यायाधीश निर्णय के विपक्ष में होते हैं वे "असहमति सूचक" (dissenting) मत संलग्न कर सकते हैं। न्यायालय के बहुमत का "मत" लिख कर तैयार करने का कार्य न्यायाधीश या तो किसी न्यायाधीश को सौंपता है या, कभी-कभी अपने हाथ में भी ले लेता है। न्यायालय के समस्त निर्णय और मत संघीय शासन द्वारा 'यूनाइटेड स्टेट्स रिपोर्ट्स' नामक पत्रिका में नियमित रूप से प्रकाशित किये जाते हैं।

सर्वोच्च-न्यायालय का क्षेत्राधिकार—सर्वोच्च न्यायालय को प्रारंभिक और अपीलीय दोनों प्रकार का क्षेत्राधिकार प्राप्त है—यद्यपि उसका प्रारंभिक क्षेत्राधिकार केवल संविधान में उल्लिखित दो प्रकार के मामलों तक ही सीमित है। संविधान के प्रवर्तन के कुछ ही वर्ष पश्चात् यह निश्चित हो गया था कि कांग्रेस सर्वोच्च न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार में वृद्धि नहीं कर सकती। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कांग्रेस निम्न संघीय न्यायालयों के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार में वृद्धि कर सकती है और करती रही है।

सर्वोच्च न्यायालय को जिन दो प्रकार के मामलों पर प्रारंभिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है वे ये हैं: (१) ऐसे मामले जिनका संबंध राजदूतों, वाणिज्यदूतों अथवा अन्य प्रकार के विदेशी राज्यों के प्रतिनिधियों से हो, तथा (२) ऐसे मामले जिनमें एक पक्ष संयुक्त राज्य में सम्मिलित कोई राज्य हो। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रारंभिक सुनवाई के लिए बहुत कम मामले आते हैं। उसके सम्मुख आने वाले अधिकांश मामले किसी निम्न संघीय न्यायालय अथवा किसी राज्य के उच्चतम न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील के रूप में आते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के कार्यभार में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण उसके अपीलीय क्षेत्राधिकार को बहुत सीमित कर दिया गया है। आजकल केवल दो प्रकार के मामलों की ही

अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है : (१) वे मामले जिनमें यह दावा किया गया हो कि राष्ट्रीय संविधान, संधि अथवा संविधियों के किसी अधिकार अथवा उपबन्ध की अवहेलना की गई हो, तथा (२) ऐसे मामले जिनमें यह आरोप लगाया गया हो कि किसी राज्य की किसी विधि अथवा राज्य-संविधान के किसी उपबन्ध (provision) से राष्ट्रीय संविधान, उसके प्राधिकार के अधीन की गई संधियों, अथवा उसके अनुसार बनाई गई विधियों का संघर्ष होता है। इन दोनों ही प्रकार के मामले पर्याप्त संख्या में सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख विचारार्थ आते हैं। संविधान के किसी अधिकार अथवा उपबन्ध की अवहेलना करने के कारण सर्वोच्च न्यायालय ने डेढ़ सौ से अधिक संघीय विधियों को अवैध घोषित किया है। इसी प्रकार संघीय संविधान का अतिक्रमण करने के कारण अवैध घोषित की गई राज्यों की विधियों की संख्या भी सैकड़ों में है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के मामलों के अतिरिक्त कुछ ऐसे मामले भी सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख आते हैं जिन्हें वह स्वयं ही किसी निम्न संघीय न्यायालय अथवा राज्य न्यायालय से उत्प्रेषण-लेख (Writ of Certiorari) के द्वारा अपने पास मँगवा लेता है। उत्प्रेषण-लेख के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय न केवल ऐसे मामलों को ही अपने सम्मुख विचारार्थ मँगवा सकता है जिन पर विचार किया जा रहा है वरन् उन्हें भी जिन पर निर्णय दिया जा चुका है।

न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review)

संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्ति सङ्घीय कांग्रेस व राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा पारित की गई विधियों की सांविधानिकता पर विचार करने की शक्ति है। इसी शक्ति ने सर्वोच्च न्यायालय को 'संविधान के अभिभावक' की गरिमामय स्थिति प्रदान की है। परन्तु, जैसा कि इसके पूर्व भी उल्लेख किया जा चुका है, यहं एक रोचक तथ्य है कि संविधान में किसी भी स्थान पर सर्वोच्च न्यायालय को यह शक्ति स्पष्टतः प्रदान नहीं की गई है। इसे सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी संविधान में उल्लिखित शक्तियों तथा कृत्यों में निहित माना है। इस शक्ति ने संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय को कितना

[1] Zink, Harold, *op. cit.*, p. 447.

प्रभावशाली तथा शक्तिवान बना दिया है यह इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि अनेक पर्यवेक्षकों ने उसे 'संविधान का संतुलन-चक्र'[1] 'कांग्रेस का तृतीय सदन,'[2] 'एक निरन्तर कार्य करने वाला सांविधानिक सम्मेलन'[3] आदि नामों से संबोधित किया है।

न्यायिक पुनर्विलोकन के पक्ष और विषय में दिये गये तर्कों का उल्लेख करने के पूर्व यह उचित होगा कि हम उसकी प्रकृति तथा सीमाओं, आदि को भली प्रकार समझ लें। यह सत्य है कि सर्वोच्च न्यायालय कांग्रेस अथवा राज्य विधानमण्डलों के द्वारा पारित की गई विधियों की सांविधानिकता पर विचार कर सकता है, तथा इस संबंध में उसका निर्णय अन्तिम होता है। परन्तु इस संबंध में यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि सर्वोच्च न्यायालय स्वेच्छा से किसी विधि की वैधानिकता पर विचार नहीं कर सकता। ऐसा वह तभी कर सकता है जब उसके सम्मुख कोई ऐसा मामला प्रस्तुत किया जाय, जिसमें संघीय कांग्रेस या राज्य विधानमण्डलों की किसी विधि की वैधानिकता के संबंध में शंका व्यक्त की गई हो। एक अन्य बात जिसका यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक है वह यह है कि विधियों की वैधानिकता पर विचार करने की शक्ति अनन्य रूप से सर्वोच्च न्यायालय को ही प्राप्त नहीं है। राज्यों के सर्वोच्च न्यायालय राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित किसी विधि को अवैध घोषित कर सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय से निम्नतर स्तर के संघीय न्यायालय भी संघीय विधियों की वैधानिकता पर विचार और निर्णय कर सकते हैं। परन्तु उनके निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में विचार किया जा सकता है और यदि वह ऐसा आवश्यक समझे, तो सर्वोच्च न्यायालय उनके निर्णय को रद्द भी कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय न केवल कांग्रेस और राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित विधियों की वैधानिकता पर ही निर्णय दे सकता है, वरन् संघ और राज्यों की कार्यपालिका के आदेशों तथा कार्यों की वैधानिकता का भी परीक्षण कर सकता है। परन्तु उसे केवल वैधानिक प्रश्नों पर ही विचार करने का अधिकार है, राजनीतिक प्रश्नों पर नहीं। अंत में इस

[1] 'Balance-wheel of the constitution.'

[2] 'Third chamber of the Congress.'

[3] 'A continuous constitutional convention.'

तथ्य का उल्लेख कर देना भी विषयातिरेक न होगा कि सर्वोच्च न्यायालय अपने पिछले निर्णयों को मान्यता देने के लिए बाध्य नहीं है; वह ऐसा निर्णय दे सकता है जो उसके किसी पूर्व निर्णय का पूर्णतः विरोधी हो।

संयुक्त राज्य का अनुकरण कर अन्य अनेक देशों के संविधानों में भी न्यायपालिका को संविधान का निर्वचन करने की शक्ति प्रदान की गई है। उदाहरणार्थ, भारत तथा आस्ट्रेलिया के सर्वोच्च न्यायालय भी इन शक्तियों से युक्त हैं। परन्तु संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति इनसे अधिक विस्तृत तथा व्यापक है। इसके दो कारण हैं। प्रथम कारण यह है कि संयुक्त राज्य के संविधान में केवल शासन-प्रणाली तथा विभिन्न शासनांगों की शक्तियों आदि के सामान्य सिद्धान्तों का ही उल्लेख है विवरण का नहीं। इससे सर्वोच्च न्यायालय को उनका निर्वचन करने में अधिक स्वतंत्रता रहती है। कांग्रेस को विदेशी राज्यों से, विभिन्न राज्यों के बीच तथा आदिवासी जातियों के साथ व्यापार का नियमन करने का अधिकार होगा, इस छोटे से सांविधानिक उपबन्ध का कोई भी अर्थ लगाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय स्वतंत्र है। वह इस उपबंध के अन्तर्गत कांग्रेस को अत्यंत व्यापक शक्तियाँ प्रदान कर सकता है, जैसा कि इसने वास्तव में किया भी है, अथवा उसकी शक्तियों को अत्यन्त सीमित कर सकता है। दूसरा कारण यह है कि संयुक्त राज्य का सर्वोच्च न्यायालय किसी अधिनियम की सांविधानिकता पर विचार करते समय यह भी देखता है कि वह अधिनियम 'विधि की उचित प्रक्रिया' (due process of law) की शर्तों को पूरा करता है या नहीं। यदि कोई विधि इस शर्त को पूरा नहीं करती तो भी अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय उसे असांविधानिक घोषित कर सकता है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त नहीं है; वह केवल यही देख सकता है कि अधिनियम या आदेश जिस प्राधिकारी द्वारा बनाया गया है उसे उस या नहीं।

न्यायिक-पुनर्विलोकन के संबंध में पुस्तकों तथा अधिक चर्चा हुई है कि बहुत से लोगों की यह धारणा सर्वोच्च न्यायालय कांग्रेस द्वारा पारित अधिकांश विधिय देता है। यह धारणा बहुत गलत है क्योंकि वस्तुस्थि अपने कार्यारंभ करने के समय से अब तक सर्वो

अस्सी संघीय विधियाँ तथा राज्यों की तीन सौ के लगभग विधियों को अवैध घोषित किया है। इनमें भी ऐसी विधियाँ सम्मिलित हैं जो विशेष महत्वपूर्ण नहीं थीं। जब हम इस तथ्य पर ध्यान देते हैं कि प्रति वर्ष संघीय कांग्रेस कई सौ तथा राज्यों के विधानमंडल हजारों विधियाँ बनाते हैं तो हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि इस संबंध में फैली हुई व्यापक धारणा निश्चय ही भ्रामक है। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि समय-समय पर सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक महत्वपूर्ण विधियों को अवैध घोषित कर कांग्रेस की इच्छा को मूर्तरूप नहीं लेने दिया है।

न्यायिक-पुनर्विलोकन की आलोचना तथा प्रत्यालोचना—लगभग उसी समय से जब से संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने अपने को कांग्रेस तथा राज्यों के विधानमंडलों द्वारा पारित विधियों की वैधानिकता पर विचार करने के लिए सक्षम घोषित किया, सर्वोच्च न्यायालय के इस अधिकार की कड़ी आलोचना की गई है। इस आलोचना के साथ ही साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किये गए कार्य की अनेक पर्यवेक्षकों के द्वारा मुक्त कंठ से प्रशंसा भी की गई है। यहाँ इन दोनों पक्षों के तर्कों पर एक सामान्य दृष्टि डालना उचित ही होगा।

आलोचकों में सर्वप्रथम स्थान उन्हें दिया जाना चाहिए जो यह मानते ही नहीं कि सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का निर्वचन करने तथा विधियों की वैधानिकता पर विचार करने का अधिकार है। परन्तु इनके मत का महत्व अधिक नहीं है क्योंकि पिछले डेढ़ सौ वर्ष से अधिक काल से सर्वोच्च न्यायालय इस अधिकार का प्रयोग करता रहा है। इन आलोचकों के मत से अधिक महत्व उन व्यक्तियों के विचारों का है जो इस अधिकार का अस्तित्व स्वीकार करते हैं परन्तु इसे अनिष्टकर मानते हैं।

इस द्वितीय वर्ग के आलोचकों में प्रो० लास्की का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने न्यायिक-पुनर्विलोकन की प्रणाली को आधुनिक सामाजिक और आर्थिक दशाओं के लिए अनुपयुक्त बताया है।[1] उनके मतानुसार सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश मुख्यतः समाज के सम्पन्न वर्ग के होते हैं और वे स्वभावतः

---

[1] Laski, H. J., *American Democracy*, pp. 115-16.

ही रूढ़िवादी होते हैं। उन्होंने सदैव ही विधि की उचित प्रक्रिया की आड़ में संयुक्त राज्य के राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक लोकतंत्र में परिवर्तित होने से रोकने का प्रयास किया है। इसकी पुष्टि के लिए सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा अवैध घोषित की गई उन विधियों की ओर इंगित किया जाता है जो राष्ट्रपति रूजवेल्ट के शासन-काल में सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन करने की दृष्टि से पारित की गई थीं और जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध घोषित कर दिया था। इनमें राष्ट्रीय औद्योगिक पुनरुद्धार अधिनियम (National Industrial Recovery Act) तथा कृषि समायोजन अधिनियम (Agri-cultre Adjustment Act) के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने निहित स्वार्थों वाले वर्गों के हितों के संरक्षक का कार्य किया है जो किसी भी दशा में उचित नहीं कहा जा सकता।

न्यायिक-पुनर्विलोकन की इस कारण भी तीव्र आलोचना की गई है कि अनेक बार सर्वोच्च न्यायालय ने केवल एक न्यायाधीश के किसी विधि के पक्ष या विपक्ष में होने के कारण उसे वैध या अवैध घोषित किया है। ऐसा उस स्थिति में होता है जब न्यायालय के चार न्यायाधीश निर्णय के संबंध में एक मत रखते हैं और पाँच न्यायाधीश दूसरा। यदि न्यायालय इस प्रकार एक न्याया-धीश के मत के कारण किसी विधि को वैध या अवैध घोषित करता है तब उसके निर्णय के संबंध में शका रहना स्वाभाविक ही है। अंततः, कोई भी विधि एक साथ ही वैध और अवैध दोनों नहीं हो सकती। फिर न्यायाधीशों में मतभेद क्यों होता है? आलोचकों के अनुसार यह तथ्य यह बात सिद्ध करता है कि न्यायाधीशों के निर्णय को न्याय की भावना के अतिरिक्त अन्य तत्व भी प्रभावित करते हैं। ऐसी दशा में उनके कांग्रेस तथा राष्ट्रपति की, जो कि दोनों ही जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं, स्वीकृति-प्राप्त विधियों तथा प्रस्तावों का अभिषेध करने का क्या औचित्य हो सकता है।

इसके अतिरिक्त कुछ पर्यवेक्षकों ने इस कारण भी न्यायिक-पुनर्विलोकन की आलोचना की है कि इससे न्यायाधीशों को नीति-निर्माण में अत्यधिक महत्व प्राप्त हो जाता है और विधायकों में अनुत्तरदायित्व की भावना आ जाती है। उनका विचार है कि इससे विधायकों में इस प्रकार सोचने की वृत्ति उत्पन्न हो

जाती है कि उन्हें विधियों के औचित्य के संबंध में अधिक सजग रहने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि यदि कोई विधि अनुचित है तो न्यायालय उसे अवैध घोषित कर ही देंगे।

इन तर्कों के विरोध में न्यायिक-पुनर्विलोकन के समर्थकों ने भी प्रबल तर्क प्रस्तुत किये हैं। वे नागरिकों के अधिकारों के महत्व की ओर संकेत करते हैं और इस बात पर बल देते हैं कि उनकी रक्षा के लिए न्यायिक-पुनर्विलोकन अत्यन्त आवश्यक है। इसी प्रकार संघीय व्यवस्था को एकीय व्यवस्था में परिवर्तन न होने देने के लिए भी यह आवश्यक है कि न्यायपालिका को संघीय शासन की ऐसी विधियों का जो राज्यों की शक्तियों का अतिक्रमण करती हों, अवैध घोषित करने का अधिकार हो। न्यायाधीश फेलिक्स फ्रैंकफ़र्टर ने अब तक के अनुभव के आधार पर लिखा है : "प्रत्येक अमेरिकी राजनीतिक दल ने किसी न किसी समय सर्वोच्च न्यायालय की आड़ ली है और कभी न कभी न्यायालय के विनिश्चयों को अपने उद्देश्यों के मार्ग की बाधा पाया है।" उनके मतानुसार यह तथ्य इस बात को सिद्ध करता है कि न्यायालय सदैव किसी दल विशेष का भाग नहीं रहा है और न उसने केवल दलीय मतभेदों की पुष्टि की है।[1] न्यायिक पुनर्विलोकन के समर्थकों का मत है कि सर्वोच्च न्यायालय की इस शक्ति ने ही इसे सांविधानिक व्यवस्था को विद्यमान रखने में सहायता दी है और इस शक्ति को इससे छीन लेने का परिणाम निश्चय ही यह होगा कि संविधान की "अवरोध और संतुलन" की प्रणाली का अन्त हो जायगा।

दोनों पक्षों के तर्कों को ध्यान में रखते हुए इतना ही कहा जा सकता है कि आज की परिस्थितियों में न्यायिक पुनर्विलोकन की उपयोगिता चाहे शकायुक्त हो

---

[1] "Every American political party at some time has sheltered itself behind the Supreme Court and at others has found in the Court's decisions obstructions to its purposes. This is a reflection of the fact that the Court throughout its history has not been the organ of anv party or registered merely party differences."—Frankfurter, F., in *Aspects of American Government*, edited by D. Beiley, p. 45.

गई हो, परन्तु इसने अमेरिकी संविधान की रक्षा करने तथा उसका परिवर्धन करने में बहुत अधिक योग दिया है।

सर्वोच्च न्यायालय के पुनर्गठन के प्रस्ताव

सर्वोच्च न्यायालय के आलोचकों ने समय-समय पर उसके सुधार के लिए अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत किये हैं। इस शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट ने न्यायालय के राज्यों की विधियों को अभिषिद्ध करने वाले निर्णयों पर जनमतगणना कराने का प्रस्ताव रखा था। सन् १९२४ में सिनेट-सदस्य ला फ़ॉलेट ने यह प्रस्ताव रखा कि सर्वोच्च न्यायालय सांविधानिकता के प्रश्नों पर निर्णय कम से कम सात न्यायाधीशों की सहमति से करे। इन दोनों में से एक भी प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका। इन से अधिक महत्व का प्रस्ताव राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट ने प्रस्तुत किया था जिस पर अत्यन्त तीव्र विवाद हुआ था। उनके सुझाव पर सन् १९३७ में कांग्रेस में इस आशय का एक विधेयक प्रस्तुत किया गया कि राष्ट्रपति को यह शक्ति दी जाय कि वह ७० वर्ष से अधिक आयु के न्यायाधीशों की संख्या के बराबर अतिरिक्त न्यायाधीश (सिनेट की सहमति से) नियुक्त कर सके। इस व्यवस्था पर यह निर्बन्ध रहे कि अतिरिक्त न्यायाधीशों की संख्या छः से अधिक न हो। वस्तुतः इस योजना का उद्देश्य न्यायालय को राष्ट्रपति के समर्थकों से भर देना था, और इस कारण इसका अत्यन्त उग्र विरोध हुआ। इस विरोध का परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस ने विधेयक को पारित नहीं किया। परन्तु एक दैवी संयोग से राष्ट्रपति को अपने उद्देश्य में सफलता मिल गई। इस विधेयक के अस्वीकृत होने के कुछ ही समय बाद कुछ न्यायाधीशों की मृत्यु हो गई और कुछ पद से निवृत्त हो गये। इससे राष्ट्रपति रूजवेल्ट को अपने समर्थकों को न्यायाधीश नियुक्त करने का अवसर मिल गया।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट को अपने उद्देश्य में सफलता मिल जाने का परिणाम यह हुआ कि सर्वोच्च न्यायालय के पुनर्गठन का प्रश्न समाप्त-सा हो गया। आज भी उसके संगठन की वही रीति है जो इस विवाद के पूर्व थी। अभी भी इसके संगठन तथा शक्तियों में परिवर्तन करने के सुझाव दिये जाते हैं परन्तु उनके निकट भविष्य में स्वीकृत किये जाने की कोई संभावना नहीं है।

अध्याय १४

संयुक्त राज्य के राजनीतिक दल

संघीय न्यायपालिका के अध्ययन के साथ संयुक्त राज्य के विभिन्न शासनांगों के संगठन तथा कार्यकरण आदि का अध्ययन समाप्त हो जाता है; परंतु अमेरिकी शासन-प्रणाली का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए अमेरिकी राजनीतिक दलों का अध्ययन भी उतना ही आवश्यक है जितना संविधान में उल्लिखित शासनांगों का। इसका कारण यह है कि राजनीतिक दलों ने शासनांगों के संगठन तथा कार्यकरण को एक बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है। किसी-किसी क्षेत्र में तो राजनीतिक दलों के प्रादुर्भाव ने सांविधानिक विकास की दिशा ही बदल दी है। उदाहरणार्थ, संविधान में राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित किये जाने की व्यवस्था होते हुए भी निर्वाचन को प्रत्यक्ष रूप देने का श्रेय मुख्यत: राजनीतिक दलों को ही है। वस्तुत: जनतांत्रिक शासन के साथ राजनीविक दलों का अविच्छिन्न संबंध है। मनरो ने तो लोकप्रिय शासन को दलीय शासन का ही दूसरा नाम बताया है।[1] इसी कारण इस अध्याय में हम संयुक्त राज्य के राजनीतिक दलों के इतिहास, संगठन तथा कार्यों पर विचार करेंगे।

राजनीतिक दलों के प्रति संविधान-निर्माताओं का दृष्टिकोण—यद्यपि सदा से ही राजनीतिक दलों का जनतांत्रिक शासन-प्रणाली के साथ अविच्छिन्न संबंध रहा है, परन्तु अमेरिकी संविधान के निर्माताओं का उनके प्रति दृष्टिकोण

[1] "All popular government is party government. There has never been at any time in the world's history a free government in which political parties did not arise and function."—Munro, W.B., *op. cit.*, p. 122.

अत्यंत शंकायुक्त था। वे राजनीतिक दलों को नागरिकों के बीच पारस्परिक कलह और द्वेष को जन्म देने वाले अभिकरण ही मानते थे। यह बात इसी तथ्य से स्पष्ट होती है कि संविधान में राजनीतिक दलों अथवा दल-प्रणाली के संबंध में एक अक्षर भी नहीं है। अमेरिका के प्रथम् राष्ट्रपति, जार्ज वाशिंगटन तथा सांविधानिक सम्मेलन में भाग लेने वाले एक प्रमुख नेता, मेडीसन के कथनों से भी यही बात सिद्ध होती है। वाशिंगटन ने दलीय भावना के बारे में अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किये थे: "यह समाज को आधार-रहित विद्वेषों, झूठी आशंकाओं से उद्वेलित करती है तथा उसके भाग को दूसरे भाग के प्रति शत्रुता के लिए उभाड़ती है एवं समय-समय पर विद्रोह और दंगों का कारण बनती है।"[१] जार्ज वाशिंगटन के विचारों से मिलते-जुलते विचार मेडीसन के थे। उनके अनुसार धर्म, शासन तथा अन्य अनेक बातों के संबंध में विचार वैषम्य ने ··तथा विभिन्न नेताओं के प्रति श्रद्धा की भावना ने···समय-समय पर मानवता को दलों में विभक्त किया है तथा उनमें पारस्परिक विद्वेष को उभाड़ा है एवं उनमें समान लाभ के लिए एक दूसरे के साथ सहयोग के भाव को जन्म देने के स्थान पर एक दूसरे का उत्पीड़न करने तथा क्लेश पहुँचाने के लिए ही अधिक प्रेरित किया है।" वास्तव में संविधान के प्रवर्तन के पश्चात् कुछ समय तक, जैसी कि संविधान-निर्माताओं की इच्छा थी, अमेरिकी शासन-प्रणाली में राजनीतिक दलों का स्थान नगण्य रहा; परन्तु आज उनका महत्व इतना अधिक बढ़ गया है कि बिना राजनीतिक दलों के शासन-यंत्र के सफलतापूर्वक काम करने की कल्पना करना भी कठिन है।

राजनीतिक दलों का प्रादुर्भाव तथा विकास

फैडरलिस्ट तथा ऐण्टी फैडरलिस्ट दल—यद्यपि वाशिंगटन ने अपने राष्ट्रपतित्व के काल में पुनः-पुनः जनता को दलीय भावना के दोषों की ओर

[१] "It (the spirit of the party) agitates the community with ill-founded jealousies and false alarms, kindles the animosity of one part against another, foments occasional riot and insurrection."—George Washington (*Writings of Washington*, edited by L. B. Evans, p. 539.)

इंगित कर उससे बचने का परामर्श दिया, परन्तु राजनीतिक दलों के प्रादुर्भाव को न रोका जा सका। वस्तुतः वाशिंगटन राष्ट्रपतित्व काल में ही राजनीतिक दलों की नींव पड़ी। संविधान के निर्माण पर विचार करते समय हमने देखा था कि फिलाडेल्फिया सम्मेलन में दो गुट बन गए थे। एक में वे प्रतिनिधि थे जो केन्द्र को शक्तिशाली बनाकर एक वास्तविक सङ्घ का निर्माण करना चाहते थे, और दूसरे में वे जो राज्यों को अधिकाधिक शक्तिशाली बनाए रखने के पक्ष में थे। ये दोनों गुट क्रमशः "फैडरलिस्ट" (Federalist) और "ऐएटी-फैडरलिस्ट" नामों से संबोधित किये जाने लगे। वाशिंगटन ने इन दोनों गुटों के बीच एकता स्थापित करने के लिए इन दोनों के प्रमुख नेताओं हैमिल्टन तथा जैफरसन को अपने मंत्रिमण्डल में स्थान दिया। परन्तु इससे दोनों गुटों में एकता स्थापित होने के स्थान पर उनके बीच की खाई और गहरी हो गई। वाशिंगटन के मंत्रिमंडल में "फैडरलिस्टों" का प्राधान्य था और उन्हीं की नीति के अनुसार शासन का संचालन होता था। इससे जैफरसन को विरोधी विचारों के लोगों का नेता समझा जाने लगा। जैफरसन के अनुयायी नागरिकों और राज्यों की स्वतंत्रता और उनके अधिकारों पर विशेष बल देते थे इसी कारण उन्हें 'डेमोक्रेटिक-रिपब्लिकन' (Democratic-Republicans) के नाम से संबोधित किया जाने लगा। फेडरलिस्ट तथा डेमोक्रेटिक-रिपब्लिकन दलों का आर्थिक आधार भी था। फेडरलिस्ट दल को न्यूइंग्लैंड तथा मध्यवर्ती राज्यों के व्यापारिक, वित्तीय तथा औद्योगिक हितों का संरक्षण प्राप्त था जब कि डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन दल को मुख्यतः दक्षिणी राज्यों तथा ग्राम-प्रधान उत्तरी राज्यों के भूमिहारी हितों का समर्थन प्राप्त था।[१]

डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन तथा फैडरल दल—जार्ज वाशिंगटन के पश्चात् जॉन एडम्स संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति हुए। इनकी चार वर्ष की पदावधि में डेमोक्रेट-रिपब्लिकनों को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का अच्छा अवसर मिला। सन् १७९८ में फैडरलिस्टों के समर्थन से कांग्रेस ने देशद्रोह अधिनियम (Sedition Act) पारित किया जिसका जनता के द्वारा उग्र विरोध किया गया। जैफरसन के अनुयायियों ने स्थिति का लाभ उठा कर अपना प्रभाव बढ़ाया।

---

[१] Ogg and Ray, *op. cit.*, p. 133.

परिणाम यह हुआ कि सन् १८०० का राष्ट्रपति-पद का निर्वाचन पूर्णतः दलीय आधार पर लड़ा गया। डेमोक्रेट-रिपब्लिकनों के नेता टॉमस जैफरसन राष्ट्रपति निर्वाचित हुए और फैडरलिस्ट दल इस निर्वाचन में पराजित होने के पश्चात् फिर कभी सत्ता प्राप्त न कर सका और धीरे-धीरे लुप्त हो गया। परन्तु जॉन एडम्स ने निर्वाचन में पराजित हो जाने के पश्चात् और जैफरसन के कार्य-भार सँभालने के कुछ ही समय पूर्व एक ऐसा कार्य किया जिससे अंततः विजय फैडर-लिस्टों के सिद्धान्तों की ही हुई। उसने फैडरलिस्ट जॉन मार्शल को सर्वोच्च न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश नियुक्त कर शासन के न्यायांग पर फैडरलिस्ट दल का अनेक वर्षों के लिए प्रभुत्व स्थापित कर दिया। जॉन मार्शल ने अमेरिकी संविधान की व्याख्या कर किस प्रकार संघीय शासन को शक्तिशाली बनाया इस पर पिछले अध्यायों में प्रकाश डाला जा चुका है।

राजनीतिक दलों के प्रादुर्भाव के कारण सन् १८०० के निर्वाचन में व्याव-हारिक कठिनाई उत्पन्न हुई, जिसका समाधान बारहवें संशोधन के द्वारा ही किया जा सका।

हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि सन् १८०० की पराजय के पश्चात् "फैडरलिस्ट" दल का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया और धीरे-धीरे वह पूर्णतः लुप्त हो गया। यहाँ फैडरलिस्ट दल के लुप्त होने के कारणों पर विचार करना विषयातिरेक न होगा। प्रो० कॉमागार ने उसके पतन के तीन कारण बताए हैं। प्रथम इस दल का स्वरूप निश्चित रूप से आभिजात्य वर्गीय (aristo-cratic) था और अमेरिकी समाज जैसे जनतांत्रिक समाज में ऐसा दल पनप नहीं सकता। द्वितीय, दल ने अपना संगठन दृढ़ करने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया और वह अपने सदस्यों और नेताओं की प्रतिभा पर ही आश्रित रहा। तृतीय यह कि दल ने फ्रांस से युद्ध का समर्थन किया जिससे कर बढ़े। इस कारण से तथा दल द्वारा विदेशियों तथा देशद्रोह से संबंधित विधियों का समर्थन करने के कारण इसने जनता के एक बड़े भाग को अपना विरोधी बना लिया।[1]

---

[1] Commagar, H. S., in *Aspects of the American Go*
(edited by D. Bailey), p. 159.

सन् १८२० तक फैड्रलिस्ट दल का प्रभाव इतना कम हो गया था कि उस वर्ष उसने निर्वाचन में राष्ट्रपति पद के लिए अपना कोई प्रत्याशी ही खड़ा नहीं किया।

डेमोक्रेटिक तथा व्हिग दल—डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन दल का अनन्य प्रभुत्व स्थापित होने का परिणाम यह हुआ कि इस दल में आंतरिक गुटबंदी आरंभ हो गई। विभिन्न नेताओं के अपने-अपने अनुयायी थे। संयुक्त राज्य के आर्थिक जीवन में भी महान् परिवर्तन हो रहे थे। इन्हीं कारणों से नए दल के निर्माण की भूमिका बन रही थी। सन् १८२४ में राष्ट्रपति-पद के निर्वाचन में ऐण्ड्रयू जैक्सन तथा जॉन क्विंसी एडम्स में से किसी को आवश्यक बहुमत नहीं प्राप्त हो सका। यद्यपि निर्वाचन में जैक्सन को अधिक मत प्राप्त हुए थे, परन्तु प्रतिनिधि सभा ने एडम्स को राष्ट्रपति निर्वाचित किया। इस निर्वाचन के पश्चात् डेमोक्रेटिक-रिपब्लिकन दल के विभिन्न नेताओं के समर्थक दो गुटों में विभक्त हो गए। एक गुट का नेतृत्व जैक्सन के हाथ में रहा। यह गुट अपने को डेमोक्रेटिक दल कहने लगा। दूसरे गुट का नेतृत्व जॉन क्विंसी एडम्स के हाथ में रहा और यह गुट नेशनल रिपब्लिकन अथवा व्हिग दल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सन् १८२८ के निर्वाचन में डेमोक्रेट दल का नेता जैक्सन राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। जैक्सन ने अपने समर्थकों को बड़ी संख्या में शासनिक-पदों पर नियुक्त कर लूट-प्रणाली (Spoils System) को बहुत व्यापक रूप दे दिया और इससे अपने दल की शक्ति बढ़ाई। सन् १८४१ तक सत्ता डेमोक्रेटों के ही हाथ में रही।

व्हिग दल को मुख्यत: समाज के समृद्ध वर्ग का समर्थन प्राप्त था। इसी कारण इन्हें "फेडरलिस्टों का अनुवर्ती"[1] कहा जाता है। इसके समर्थक भी न्यू इंग्लैंड और मध्यवर्ती राज्यों के ही निवासी थे। सन् १८४१ और १८४८ में राष्ट्रपति-पद के लिए व्हिग प्रत्याशी चुने गए, परन्तु दोनों ही बार निर्वाचन के कुछ ही काल पश्चात् इनके राष्ट्रपतियों की मृत्यु हो गई। अगले कुछ वर्षों में ही व्हिग दल छिन्न-भिन्न हो गया और उसका स्थान एक नवीन दल, रिपब्लिकन दल, ने ले लिया।

---

[1] "Successors to the Federalists."

डेमोक्रेटिक तथा रिपब्लिकन दल—व्हिग दल के छिन्न-भिन्न होने का मुख्य कारण दासता का प्रश्न था। सन् १८५० के पश्चात् इस प्रश्न पर दोनों दलों के लिए एक निश्चित दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक हो गया। व्हिग दल कोई निश्चित दृष्टिकोण न अपना सकने के कारण समाप्त हो गया। डेमोक्रेटिक दल में भी इस प्रश्न पर तीव्र विवाद उत्पन्न हुआ पर अंततः दक्षिणी राज्यों के गुट ने डेमोक्रेटिक दल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। सन् १८६० में रिपब्लिकन दल के नेता लिंकन राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। इसके कुछ ही समय पश्चात् गृह-युद्ध आरंभ हुआ जिसके कारण राष्ट्रीय एकता के सभी समर्थक रिपब्लिकन दल में सम्मिलित हो गए। फलस्वरूप अगले चौबीस वर्ष तक राष्ट्रपति-पद रिपब्लिकन दल के ही हाथ में रहा।

सन् १८७७ से रिपब्लिकन और डेमोक्रेटिक दलों के बीच मुख्य विवादग्रस्त प्रश्न आयात-निर्यात शुल्क (tariff) बना। रिपब्लिकन दल शुल्क की ऊँची दरें बनाए रखने के पक्ष में था और डेमोक्रेटिक दल उन्हें घटाने के। यद्यपि सन् १८६१ और १९०१ के बीच डेमोक्रेटिक दल का केवल आठ वर्ष ही राष्ट्रपति पद पर अधिकार रहा पर इसकी शक्ति नगण्य नहीं थी। दो बार तो इसे जनता के मतों का बहुमत प्राप्त होने पर भी निर्वाचक मंडल द्वारा निर्वाचन की प्रणाली के कारण इसके प्रत्याशी निर्वाचित न हो सके।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में पुनः एक ऐसा प्रश्न उपस्थित हुआ जिसने राजनीतिक दलों में आंतरिक विवाद उत्पन्न कर दिया। यह विवाद मुद्रा के प्रतिमान से संबंधित था। डेमोक्रेटिक दल में इस विवाद के कारण गंभीर मतभेद उत्पन्न हो गए। सन् १८९६ में रिपब्लिकन दल को राष्ट्रपति पद के निर्वाचन में सफलता मिली और तब से सन् १९१२ तक उसी का प्रत्याशी राष्ट्रपति चुना गया। इसी काल में थियोडोर रूजवेल्ट के राष्ट्रपतित्व का आठ वर्ष का काल भी सम्मिलित है जिसमें रिपब्लिकन दल आर्थिक दृष्टि से और अधिक रूढ़िवादी बन गया। सन् १९१२ में रिपब्लिकन दल की आंतरिक फूट के कारण वुडरो विल्सन राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। विल्सन ने अपने राष्ट्रपतित्व के प्रारंभिक वर्षों में अनेक सामाजिक विधियों का सूत्रपात किया और महायुद्ध आरम्भ होने पर अन्तर्राष्ट्रवाद का प्रतिपादन किया। रिपब्लिकन दल ने अमेरिका की परम्परागत तटस्थता की नीति का समर्थन किया। सन् १९२० के

निर्वाचन में रिपब्लिकन प्रत्याशी राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। उस समय से अगले आठ वर्ष का समृद्धि का काल था जिसके कारण सन् १९२९ में रिपब्लिकन प्रत्याशी हर्बर्ट हूवर को बहुत बड़े बहुमत से राष्ट्रपति चुना गया।

हूवर के शासन काल में आर्थिक संकट का आरम्भ हुआ। डेमोक्रेटिक दल ने जनता के समक्ष "नई योजना" (New Deal) का कार्यक्रम रखा। इस दल के प्रत्याशी फ्रैंकलिन रूजवेल्ट को राष्ट्रपतिपद के लिए निर्वाचित कर लिया गया। रूजवेल्ट ने आर्थिक संकट से उत्पन्न परिस्थिति तथा बाद में महायुद्ध से उत्पन्न स्थिति का इतनी कुशलता से सामना किया कि उन्हें तीन बार राष्ट्रपतिपद के लिए पुनर्निर्वाचित किया गया। अमेरिकी इतिहास में यह विशेष महत्त्व की घटना है। राष्ट्रपति रूजवैल्ट की मृत्यु के पश्चात् उपराष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन राष्ट्रपति हुए और सन् १८४८ में वह पुनर्निर्वाचित कर लिये गए। वस्तुतः कुछ काल के लिए तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि डेमोक्रेटों को स्थायी रूप से सत्ता प्राप्त हो गई है। पर सन् १९५२ में जनरल आइसनहोवर रिपब्लिकन दल के प्रत्याशी के रूप में निर्वाचित हुए और इस प्रकार बीस वर्ष के पश्चात् रिपब्लिकनों को पुनः सत्ता प्राप्त हुई।

अन्य राजनीतिक दल—अमेरिकी राजनीतिक दलों के प्रादुर्भाव तथा विकास की ऊपर दी हुई संक्षिप्त रूपरेखा में उन अनेक अमेरिकी राजनीतिक दलों का नाम नहीं दिया गया है जो किसी एक भाग तक सीमित हैं अथवा जो किसी विशेष समय में थोड़े काल के लिए जन्मे और समाप्त हो गए। इन दलों ने कभी-कभी महत्वपूर्ण कार्य किये हैं तथा ये अनेक बार प्रमुख दलों की सफलता और विफलता के कारण बने हैं। इस कारण इन में से कुछ अधिक महत्वपूर्ण दलों का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

अमेरिकी गृह-युद्ध के पूर्व प्रमुख राजनीतिक दलों के असंतुष्ट कार्यकर्ताओं तथा नेताओं ने अनेक राजनीतिक दल संगठित किये थे। ये सब थोड़े-थोड़े समय में ही समाप्त हो गए। इनके उदाहरण के रूप में सन् १८२६ में स्थापित "एण्टी मैसन दल" (Anti Masons), सन् १८४८ के आसपास संगठित "फ्री सॉयल दल" (Free Soil Party) तथा "नो नथिंग दल" (Know Nothing Party) के नाम लिये जा सकते हैं। इन अल्पकालीन आयु वाले

दलों के इतिहास से भिन्न "प्रोहिबिशन दल (Prohibition Party) का इतिहास रहा है। इसका जन्म सन् १८७२ में हुआ था। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है इसका मुख्य उद्देश्य संयुक्त राज्य में मद्यनिषेध लागू कराना रहा है। समय-समय पर इसने अपनी नीति में अन्य अनेक बातों को भी सम्मिलित कर लिया है। अठारहवाँ संशोधन स्वीकृत हो जाने पर इसका मुख्य ध्येय पूर्ण हो गया था, परन्तु यह मद्य-निषेध के नियमों का कड़ाई से पालन कराने के लिए बनी रही। इक्कीसवें संशोधन के द्वारा मद्य-निषेध के समाप्त किये जाने के पश्चात् से यह पुनः मद्य-निषेध के पक्ष में प्रचार करती रही है।

अन्य देशों की भाँति संयुक्त राज्य में भी एक समाजवादी दल (Socialist Party) है जिसका जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में हुआ था। यह आर्थिक और राजनीतिक दोनों प्रकार के सुधारों की माँग करती रही है। यह दल मुख्य उद्योगों के समाजीकरण, रेलमार्गों, तथा टेलीग्राफ़ और टेलीफ़ोन के सार्वजनिक स्वामित्व तथा प्राकृतिक साधनों पर राज्य के स्वामित्व की माँग करता रहा है। राजनीतिक क्षेत्र में यह सिनेट की समाप्ति, प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के उपकरणों के राष्ट्रव्यापी प्रयोग, संघीय न्यायाधीशों के जनता द्वारा निर्वाचन आदि की माँग करता रहा है। इसे कभी भी जनता के एक बड़े भाग का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ।

अमेरिका में पर्याप्त काल से साम्यवादी दल (Communist Party) भी कार्य करता रहा है। इसका आरम्भ कृषक-श्रमिक दल (Farmer-Labour Party) के एक असंतुष्ट गुट के द्वारा हुआ था जब उस दल का नेतृत्व समाजवादियों के हाथ में चला गया था। अन्य देशों के साम्यवादी दलों की भाँति अमेरिकी साम्यवादी दल का उद्देश्य भी "सर्वहारा का अधिनायकतंत्र" स्थापित करना है। जनता में यह दल कभी विशेष लोकप्रिय नहीं हुआ।

"पॉपुलिस्ट दल" तथा "प्रोग्रेसिव दल" दो ऐसे राजनीतिक दलों के उदाहरण हैं जो अपने जन्म के बाद थोड़े समय के लिए बहुत लोकप्रिय हो कर सदा के लिए लुप्त हो गए। इनमें से प्रथम दल का अस्तित्व सन् १८९० से १८९६ तक रहा और द्वितीय का सन् १९१२ से १९१६ तक।

राजनीतिक दलों के कृत्य

इस अध्याय के आरंभ में कहा गया है कि जनतांत्रिक शासन-प्रणाली और

राजनीतिक दलों का अविच्छिन्न संबंध है। इस कारण यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है कि राजनीतिक दल ऐसे क्या कार्य करते हैं जिनके कारण जनतांत्रिक शासन-प्रणाली के लिए उनका अस्तित्व अनिवार्य हो जाता है। संक्षेप में राजनीतिक दलों, विशेषतया अमेरिकी राजनीतिक दलों के द्वारा निम्न कृत्य संपादित किये जाते हैं :

१. प्रत्येक जनतांत्रिक शासन-प्रणाली वाले देश में जनता को विधानमंडल के सदस्यों तथा अन्य अनेक पदाधिकारियों को निर्वाचित करने का कार्य सौंपा जाता है। अमेरिका में तो राष्ट्र के सर्वोच्च अधिकारी को भी जनता के द्वारा निर्वाचित निर्वाचकों के द्वारा चुना जाता है। यदि निर्वाचनों में राजनीतिक दल अपने प्रत्याशी न खड़े करें तो निर्वाचन सफलतापूर्वक संपन्न हो सकेंगे यह संदेहजनक है। प्रत्येक राजनीतिक दल का एक निश्चित कार्यक्रम रहता है और सामान्यतः वह निर्वाचन में ऐसे ही प्रत्याशी खड़े करता है जो विजयी होने पर उस कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में योग दें। इससे जनता का कार्य सरल हो जाता है। जो व्यक्ति जिस दल के कार्यक्रम से सहमत होते हैं वे उसके प्रत्याशी को मत दे सकते हैं, चाहे वे उसे व्यक्तिगत रूप से न जानते हों। इस प्रकार निर्वाचन में संघर्ष कुछ थोड़े से प्रत्याशियों तक ही सीमित हो जाता है और उनमें से जो जनता के एक बड़े भाग का समर्थन प्राप्त करने में सफल हो जाता है वही निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है।

२. बहुधा यह देखा जाता है कि निर्वाचन के समय प्रत्याशी बड़े बड़े वादे कर देते हैं जिन्हें वे बाद में भूल जाते हैं अथवा जानबूझ कर भुला देते हैं। राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किये गये प्रत्याशियों के संबंध में ऐसा कम होता है। वे दलीय कार्यक्रम के आधार पर चुने जाते हैं और दल अपने कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए पूर्ण प्रयत्न करता है।

३. राजनीतिक दल जनता को सार्वजनिक समस्याओं से परिचित कराते रहते हैं और उनके समाधान के संबंध में अपना मत भी उसके सामने रखते हैं। किसी समस्या पर विभिन्न दलों के समाधानों का अध्ययन कर सामान्य नागरिक भी गंभीर प्रश्नों के हर पहलू से परिचित हो सकता है। इस प्रकार राजनीतिक दल जनता को शिक्षित करते हैं, तथा नागरिकों को मत-निर्धारण में सहायता

देते हैं। वे जनता में सार्वजनिक मामलों में रुचि लेने की भावना उत्पन्न करते हैं तथा उसे अपने मताधिकार का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करते हैं।

४. राजनीतिक दल सत्तारूढ़ हो जाने पर सरकार का संचालन करते हैं और जब सत्तारूढ़ नहीं होते तब सत्तारूढ़ दल के कार्यों की आलोचना कर उसे अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग रखते हैं। सत्तारूढ़ दल को सदैव यह भय बना रहता है कि विरोधी दल को उसकी कमियाँ न मालूम हों जिन्हें वह जनता के सामने रख सके। इस भय के कारण वह जनता का अधिक से अधिक हित करने का प्रयत्न करता है।

५. राजनीतिक दल शासन के विभिन्न अंगों के बीच सामंजस्य स्थापित करते हैं। उनका यह कार्य संयुक्त राज्य में विशेष महत्व रखता है क्योंकि वहाँ शक्तियों के पृथक्करण के कारण एक शासनांग और दूसरे शासनांग में विरोध की स्थिति हो जाने की पर्याप्त संभावना रहती है। इसी प्रकार केन्द्र और एककों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में राजनीतिक दल बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। प्रो० कॉमागार का विचार है कि राजनीतिक दलों के अभाव में संयुक्त राज्य की संघीय-व्यवस्था असफल सिद्ध होती।

६. अंत में राजनीतिक दलों के एक अन्य महत्वपूर्ण कृत्य का उल्लेख कर देना आवश्यक है। अमेरिका सरीखे विशाल देश में जहाँ अनेक जातियों, धर्मों, संप्रदायों तथा वर्गों के लोग रहते हैं लोगों में राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करने की भावना राजनीतिक दल ही उत्पन्न करते हैं। प्रो० ऑग और रे का मत है कि विभिन्न जातियों, धर्मों, संस्कृतियों और व्यवसायों के लोगों में एकता स्थापित करने में राजनीतिक दल सीमेंट का-सा काम करते हैं। राजनीतिक दलों का यह कृत्य कितना महत्वपूर्ण है यह स्वयं ही स्पष्ट है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीतिक दल जनतांत्रिक शासन-व्यवस्था को सफल बनाने में महत्वपूर्ण योग देते हैं। राजनीतिक दलों के कारण कोई हानि ही न होती हो ऐसी बात नहीं है। उदाहरणार्थ, कभी-कभी इनके कारण नाग-

---

[1] Commagar H. S., *Aspects of American Government.* p. 165.

[2] Ogg and Ray, *Essentials of American Government*, p. 132.

रिकों में विग्रह और द्वेष उत्पन्न होता है, कभी-कभी अयोग्य व्यक्ति इनके द्वारा नामांकित कर दिये जाते हैं, ये जनता को पथभ्रष्ट भी कर सकते हैं, परन्तु इन से होने वाली हानियों की अपेक्षा लाभ की मात्रा बहुत अधिक है। इसी कारण राजनीतिक दलों को जनतंत्र यंत्र का उपस्नैहन तैल (lubricating oil) कहा जाता है।

अमरिकी राजनीतिक दलों का संगठन

अमेरिकी राजनीतिक दलों के इतिहास, कार्यों आदि पर विचार कर लेने के पश्चात् उनके सङ्गठन पर भी एक दृष्टि डालना आवश्यक है। सामान्यतः अमेरिका के दोनों राष्ट्रव्यापी दलों—रिपब्लिकन तथा डेमोक्रेटिक—का सङ्गठन एक जैसा ही है। दोनों का संगठन एक 'पिरामिड' के आकार का है जिसके शीर्ष पर राष्ट्रीय निकाय हैं और आधार में विभागीय संगठन (Presinct Organisations)। इनके बीच में राज्य, नगर, कांउंटियों आदि के संगठन हैं।

राष्ट्रीय संगठन—रिपब्लिकन तथा डेमोक्रेटिक दोनों दलों में दलीय संगठन के शीर्ष पर एक राष्ट्रीय-समिति (National Committee) होती है जिसमें प्रत्येक राज्य के दो प्रतिनिधि—एक पुरुष तथा एक स्त्री—होते हैं। इन प्रतिनिधियों का निर्वाचन प्रति चार वर्ष के पश्चात् राज्य संगठनों के द्वारा किया जाता है। कुछ राज्यों में राष्ट्रीय समिति के सदस्य प्रत्यक्ष प्राइमरी (Direct primary) के द्वारा भी चुने जाते हैं। राष्ट्रीय समिति का एक प्रधान होता है जो औपचारिक रूप से समिति के द्वारा चुना जाता है परन्तु यथार्थ में वह सदा ही दल के राष्ट्रपति-पद के प्रत्याशी द्वारा नामांकित किया जाता है। राष्ट्रीय समिति प्रति चार वर्ष के पश्चात् राष्ट्रीय सम्मेलन आमन्त्रित करती है तथा उसकी तिथि आदि निश्चित करती है। समिति का आकार इतना बड़ा होता है कि यह नियमित रूप से कार्य नहीं करती। इस कारण यह अपनी शक्तियों तथा कृत्यों को अपने सभापति तथा अनेक आयोगों और उपसमितियों को जिनकी यह स्वयं सृष्टि करती है, प्रत्यायोजित कर देती है।[1]

राष्ट्रीय-समिति मुख्यतः राष्ट्रपति के निर्वाचन के वर्ष में ही क्रियाशील रहती

---

[1] Zink, *op. cit.*, pp. 157-58.

है। परन्तु प्रतिनिधि-सभा के सम्पूर्ण और सिनेट के एक-तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष के बाद निर्वाचित होते हैं। इस कारण इन निर्वाचनों में दल के निर्वाचन-आन्दोलन का संचालन करने के लिए राष्ट्रीय समिति कांग्रेस-चुनाव-आन्दोलन-समिति (Congressional Campaign Committee) तथा सिनेट-चुनाव-आन्दोलन समिति (Senatorial Campaign Committee) नामक दो समितियों को नियुक्त करती है। सामान्यतः इन समितियों में क्रमशः प्रतिनिधि-सभा तथा सिनेट के सदस्य ही रहते हैं। राष्ट्रपति के निर्वाचन के वर्ष में ये समितियाँ राष्ट्रीय समिति के निर्देशन में कार्य करती हैं। निर्वाचनों के बीच के काल में भी ये समितियाँ राज्यों की केन्द्रीय और स्थानीय समितियों से सम्पर्क बनाए रखती हैं और दलीय हित के कार्य करती हैं।[१]

दलीय राष्ट्रीय संगठन का सर्वोच्च अंग प्रति चार वर्ष के पश्चात् राष्ट्रपति-पद के निर्वाचन के वर्ष में होने वाला राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) होता है। इसमें भाग लेने वाले प्रतिनिधि राज्य सम्मेलनों के द्वारा अथवा प्रत्यक्ष प्राइमरी के द्वारा चुने जाते हैं। इसका मुख्य कार्य राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति-पद के लिए दलीय प्रत्याशियों को नामांकित करना होता है, परंतु इसके अतिरिक्त भी यह अनेक कार्य करता है। यह दल का कार्यक्रम निर्धारित करता है, दल के संगठन से सम्बन्धित नियम बनाता है तथा दलीय विधान में आवश्यक संशोधन आदि करता है।[२]

राज्य संगठन—यद्यपि विदेशी पर्यवेक्षकों की रुचि दलों के राष्ट्रीय संगठनों पर ही केन्द्रित रहती है, परन्तु दलों के राज्य और स्थानीय संगठनों का भी अपना महत्व है। उनका महत्व ऑग और रे की इसी उक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय संगठनों की राज्य-समितियों को वे जैसी भी हों, स्वीकार करना ही पड़ता है और उनके साथ कार्य करना ही पड़ता है। उसे उनसे तब भी अपनी बात

[१] Ogg and Ray, *Essentials of American Government*, p. 145.

[२] राष्ट्रीय सम्मेलन की कार्यप्रणाली पर राष्ट्रपति के निर्वाचन पर विचार करते समय प्रकाश डाला जा चुका है।

मनवाने का अधिकार नहीं होता जब कि वे विद्रोही सिद्ध हों।[1] दल के केन्द्रीय अङ्गों के पास एक ही अस्त्र होता है जो राज्य समितियों को झुकाने में सफल हो सकता है—और वह है धन का अनुदान। निश्चय ही राष्ट्रीय संगठन आन्दोलन के लिए धन एकत्र करने की अधिक क्षमता रखता है।

दलों के राज्य संगठन भी बहुत कुछ राष्ट्रीय संगठन के ही अनुरूप होते हैं। प्रत्येक राज्य में एक राज्य-केन्द्रीय-समिति होती है। इसके सदस्यों के निर्वाचन की प्रणाली विभिन्न राज्यों में समान नहीं है। कुछ राज्यों में इसके सदस्य जिला या नगर समितियों के द्वारा चुने जाते हैं कुछ में प्रत्यक्ष प्राइमरी के द्वारा और कुछ में राज्य सम्मेलनों के द्वारा। राज्यों के आकार में अन्तर होने के कारण इसके सदस्यों की संख्या में भी भिन्न राज्यों में पर्याप्त अन्तर होता है। अनेक राज्यों में इन समितियों के संगठन, रचना आदि के सम्बन्ध में विधि के द्वारा व्यवस्था कर दी गई है। कुछ राज्यों में राज्य समितियाँ दल के राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए प्रतिनिधि निर्वाचित करती हैं तथा दल का घोषणापत्र तैयार करती हैं। सामान्यतः इनका मुख्य कार्य चुनावों में दल के प्रत्याशियों को विजयी बनाने के लिए प्रयत्न करना होता है। प्रायः निर्वाचनों के लिए दल के प्रत्याशियों का चुनाव भी राज्य समितियों के ही द्वारा किया जाता है।

अधिकांश राज्यों में प्रति दो वर्ष के पश्चात् प्रमुख दलों के राज्य-सम्मेलन होते हैं। इनमें भाग लेने वाले प्रतिनिधि कुछ राज्यों में निम्नतर समितियों के द्वारा तथा कुछ में दल के मतदाताओं द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। इन सम्मेलनों के सम्बन्ध में समस्त व्यवस्था राज्य समिति के द्वारा की जाती है। कुछ समय पूर्व दलों के राज्य-सम्मेलन विभिन्न सार्वजनिक पदों के लिए प्रत्याशियों को नामांकित करते थे और उस समय उनका महत्त्व बहुत अधिक होता था। अब अधिकांश राज्यों ने प्रत्यक्ष प्राइमरी व्यवस्था अंगीकृत कर ली है जिसके अनुसार प्रत्याशी दल के मतदाताओं द्वारा चुने जाते हैं। इससे राज्य सम्मेलनों का महत्त्व कम हो गया है। कुछ राज्यों में अभी भी राज्य सम्मेलन राष्ट्रीय सम्मेलन

---

1 "The national organisations must accept and work with the state committees as they are, with no authority to dictate to them, even when they prove rebellious."—Ogg and Ray, *op. cit.*, p. 141.

मनवाने का अधिकार नहीं होता जब कि वे विद्रोही सिद्ध हों।[1] दल के केन्द्रीय अङ्गों के पास एक ही अस्त्र होता है जो राज्य समितियों को झुकाने में सफल हो सकता है—और वह है धन का अनुदान। निश्चय ही राष्ट्रीय संगठन आन्दोलन के लिए धन एकत्र करने की अधिक क्षमता रखता है।

दलों के राज्य संगठन भी बहुत कुछ राष्ट्रीय संगठन के ही अनुरूप होते हैं। प्रत्येक राज्य में एक राज्य-केन्द्रीय-समिति होती है। इसके सदस्यों के निर्वाचन की प्रणाली विभिन्न राज्यों में समान नहीं है। कुछ राज्यों में इसके सदस्य जिला या नगर समितियों के द्वारा चुने जाते हैं कुछ में प्रत्यक्ष प्राइमरी के द्वारा और कुछ में राज्य सम्मेलनों के द्वारा। राज्यों के आकार में अन्तर होने के कारण इसके सदस्यों की संख्या में भी भिन्न राज्यों में पर्याप्त अन्तर होता है। अनेक राज्यों में इन समितियों के संगठन, रचना आदि के सम्बन्ध में विधि के द्वारा व्यवस्था कर दी गई है। कुछ राज्यों में राज्य समितियाँ दल के राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए प्रतिनिधि निर्वाचित करती हैं तथा दल का घोषणापत्र तैयार करती हैं। सामान्यतः इनका मुख्य कार्य चुनावों में दल के प्रत्याशियों को विजयी बनाने के लिए प्रयत्न करना होता है। प्रायः निर्वाचनों के लिए दल के प्रत्याशियों का चुनाव भी राज्य समितियों के ही द्वारा किया जाता है।

अधिकांश राज्यों में प्रति दो वर्ष के पश्चात् प्रमुख दलों के राज्य-सम्मेलन होते हैं। इनमें भाग लेने वाले प्रतिनिधि कुछ राज्यों में निम्नतर समितियों के द्वारा तथा कुछ में दल के मतदाताओं द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। इन सम्मेलनों के सम्बन्ध में समस्त व्यवस्था राज्य समिति के द्वारा की जाती है। कुछ समय पूर्व दलों के राज्य-सम्मेलन विभिन्न सार्वजनिक पदों के लिए प्रत्याशियों को नामांकित करते थे और उस समय उनका महत्त्व बहुत अधिक होता था। अब अधिकांश राज्यों ने प्रत्यक्ष प्राइमरी व्यवस्था अंगीकृत कर ली है जिसके अनुसार प्रत्याशी दल के मतदाताओं द्वारा चुने जाते हैं। इससे राज्य सम्मेलनों का महत्त्व कम हो गया है। कुछ राज्यों में अभी भी राज्य सम्मेलन राष्ट्रीय सम्मेलन

---

1 "The national organisations must accept and work with the state committees as they are, with no authority to dictate to them, even when they prove rebellious."—Ogg and Ray, *op. cit.*, p. 141.

में भाग लेने के लिए प्रतिनिधि निर्वाचित करते हैं। यही प्रतिनिधि राष्ट्रपति-पद के लिए प्रत्याशी नामांकित करते हैं, इस कारण राष्ट्रपति के निर्वाचन वाले वर्ष में इन सम्मेलनों का महत्व बढ़ जाता है। सामान्यत: राज्य सम्मेलन दल के राज्य-घोषणापत्र पर अपनी स्वीकृति देते हैं जो राज्य-समिति या दलीय 'कॉकस' के द्वारा तैयार किया जाता है। राष्ट्रीय सम्मेलन की भाँति राज्य-सम्मेलनों में भी चतुर्दिक उल्लास और आनन्द का वातावरण रहता है।

स्थानीय संगठन—दलों के निम्नतम संगठन स्थानीय संगठन होते हैं, जिन्हें विभाग (precinct)[1] संगठन कहा जाता है। एक विभाग में दल के मतदाताओं की संख्या सौ डेढ़ सौ से लगभग एक हजार तक होती है। कुछ विभागों में दल की विभाग-समिति होती है पर सामान्यत: इनमें दल का कार्य एक व्यक्ति के द्वारा ही किया जाता है जिसे "विभाग कार्यकर्ता" (Precinct Committeeman) कहते हैं। इसका मुख्य कार्य निर्वाचनों में अपने दल के पक्ष में मत डलवाना होता है और इसमें सफलता को ही कार्यकर्ता की योग्यता की कसौटी माना जाता है। मतदाताओं के नाम पंजीबद्ध कराना, चुनाव आन्दोलन को संचालित करना, चुनाव-निधि एकत्र करना तथा दल के हित के लिए अन्य कार्य करना स्थानीय समितियों या विभाग कार्यकर्त्ता के प्रमुख कृत्य हैं। विभाग संगठनों के ऊपर कुछ अन्य स्थानीय संगठन होते हैं यथा काउन्टी समिति, वार्ड समिति, नगर समिति आदि। इनके कृत्य स्थानीय समितियों के समरूप ही होते हैं।

अमेरिकी दल प्रणाली की विशेषताएं तथा आलोचना

यद्यपि प्रत्येक प्रजातांत्रिक देश में राजनीतिक दल कार्य करते हैं और समस्त वैध उपायों से सत्ता हस्तगत करने का प्रयास करते हैं, परन्तु प्रत्येक देश की दल-प्रणाली की कुछ विशेषताएँ होती हैं। कुछ देशों में केवल दो ही प्रमुख राजनीतिक दल होते हैं जबकि कुछ अन्य देशों में अनेक; यहाँ तक कि दर्जनों अथवा बीसियों, राजनीतिक दल होते हैं। कुछ देशों में राजनीतिक दलों के कार्यक्रमों में प्रधान अन्तर आर्थिक प्रश्नों से संबंधित होते हैं, कुछ में राजनीतिक

[1] कुछ राज्यों में इन्हें "डिवीजन" संगठन भी कहा जाता है।

से और कुछ में धार्मिक से। इसी प्रकार उनमें अन्य अन्तर भी होते हैं। पिछले पृष्ठों में उल्लिखित बातों के आधार पर हम अमेरिकी राजनीतिक दलों में मुख्यतः निम्न विशेषताएँ पाते हैं।

अमेरिका में प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय महत्व रखने वाले दो ही दल रहे हैं, और कांग्रेस के दोनों सदनों के अधिकांश स्थान इन्हीं के बीच विभक्त होते रहे हैं। कांग्रेस में दो मुख्य दलों के अतिरिक्त अन्य दलों का प्रतिनिधित्व नगण्य सा ही रहा है। समय-समय पर दोनों प्रमुख दलों के असन्तुष्ट सदस्यों ने "तीसरा दल" बनाने का प्रयत्न किया है। ऐसे प्रयत्नों के उदाहरणों का दलों के विकास पर विचार करते समय उल्लेख किया जा चुका है। परन्तु थोड़े समय के लिए चाहे कोई दल भले ही मतदाताओं के पर्याप्त भाग का समर्थन प्राप्त करने में सफल हो गया हो, पर कोई भी दल तृतीय राष्ट्रीय दल का स्थान नहीं ले सका। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आज जो दो दल अमेरिका के प्रमुख राजनीतिक दल हैं, वे प्रारम्भ से ही वर्तमान नहीं थे। उदाहरणार्थ, वर्तमान रिपब्लिकन दल अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल के व्हिग दल का उत्तराधिकारी है, जो कि स्वतः फैडरलिस्ट दल का उत्तराधिकारी था। पर दलों की स्थिति में परिवर्तन होने पर भी अमेरिकी दल प्रणाली का स्वरूप द्विदलीय ही रहा है।

अमेरिका के प्रमुख राजनीतिक दलों का एक अन्य मुख्य लक्षण यह है कि उनमें विचारधारा की दृष्टि से कोई मुख्य अन्तर नहीं हैं। उनमें से कोई भी देश की सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन करने का समर्थक नहीं है। प्रो० कोर्टेज़ यूइंग के शब्दों में अमेरिकी दल-प्रणाली इस धारणा पर कार्य करती है कि दोनों बड़े दलों में मौलिक राजनीतिक सिद्धान्तों पर सामान्य रूप से मतैक्य है।[1] प्रो० वुडवर्ड ने अठारहवीं शताब्दी के इंग्लैंड के राजनीतिक दलों की तुलना ऐसे दो रथों से की थी जो एक दूसरे पर कीचड़ उछालते हुए

[1] "The American party system operates on the presumption that there is general agreement upon fundamental political principles as between the two large parties."—Cortez A. M. Ewing, in *Aspects of American Government*, p. 149.

एक ही मार्ग पर तथा एक ही गंतव्य-स्थान की ओर जा रहे हों।[१] यही बात अमेरिकी प्रमुख राजनीतिक दलों के बारे में भी कही जा सकती है। वस्तुतः उनका कोई निश्चित कार्यक्रम या विचारधारा होती ही नहीं। निर्वाचन के समय वे अपने घोषणा-पत्र में ऐसे सभी कार्यक्रमों तथा वादों को स्थान दे देते हैं जो उन्हें मत दिलाने में सहायक हों। इसी कारण लॉर्ड ब्राइस ने अमेरिका के दो प्रमुख राजनीतिक दलों की तुलना ऐसी दो बोतलों से की थी जिन पर अलग-अलग शराबों के लेबिल लगे हुए हों पर जो वस्तुतः खाली हों।

अमेरिकी राजनीतिक दलों का यह एक विशिष्ट लक्षण है कि वे अनेक निहित स्वार्थों वाले प्रभावशाली गुटों की एक सम्मिलित संस्था के समान होते हैं। वस्तुतः उनके विचारधारारहित होने का यह एक मुख्य कारण है। अमेरिका में दलों का सर्वप्रधान उद्देश्य होता है सत्तारूढ़ होना। और इसके लिए वे अधिक से अधिक गुटों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इसके लिए उन्हें ऐसे अनेक वादे करने पड़ते हैं जिन्हें न पूरा किया जाता है और न पूरा किया जा सकता है। फिर भी सत्तारूढ़ दल प्रत्येक प्रभावशाली गुट को संतुष्ट रखने का प्रयास करता है जिससे वह अगले निर्वाचन में उसी का समर्थन करें। इस विचित्र सी दीखने वाली स्थिति का ही यह परिणाम है कि अमेरिका के दोनों प्रमुख दलों में सभी प्रकार के विचारों के लोग मिलेंगे। उनमें अतिवादी (Radicals) भी मिलेंगे और रूढ़िवादी (Conservatives) भी। प्रो० बियर्ड के अनुसार कभी-कभी तो एक दल के बाएँ और दाएँ पक्षों से इतना अधिक मतभेद होता है जितना दो दलों के बीच नहीं होता।[२] यह तथ्य कांग्रेस के दोनों सदनों में विवादग्रस्त प्रश्नों पर हुए मतदान से स्पष्ट होता है। प्रायः एक ही दल के सदस्य लगभग समान संख्या में किसी प्रश्न के पक्ष और विपक्ष में मत देते हैं। उदाहरणार्थ, सन् १९४७ में "हाउस (हार्टले) लेबर

[१] "...two rival stage coaches spattering each other with mud, going along the same road to the same destination,"—P Woodward, as quoted by Finer in *The Theory and Prac Government* on page 354.

[२] Beard, C. A., *op. cit.*, p. 101.

बिल" पर प्रतिनिधि सभा में मतदान के समय डेमोक्रेट सदस्यों ने विधेयक के पक्ष में और ६३ ने विपक्ष में मत दिया था।[1] इसी प्रकार उसी वर्ष "ग्रीक-टर्किश एड बिल" पर प्रतिनिधि-सभा में मतदान के समय १२६ रिपब्लिकन सदस्यों ने विधेयक के पक्ष में तथा ६३ में विपक्ष में मत दिया था।[2] सिनेट के मतदानों से भी इसी प्रकार के उदाहरण दिए जा सकते हैं।

अमेरिकी दल-प्रणाली के अनेक पर्यवेक्षकों ने अमेरिकी दलों के विभागीय (sectional) स्वरूप पर भी बहुत बल दिया है। दोनों राजनीतिक दल मुख्यतः कुछ विशेष आर्थिक हितों तथा देश के कुछ विशिष्ट भागों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। दलों के विकास पर विचार करते समय यह उल्लेख किया जा चुका है कि संयुक्त राज्य के प्रथम राजनीतिक दल-फैडरलिस्ट तथा डेमोक्रेटिक-रिपब्लिकन—क्रमशः व्यापारिक, वित्तीय तथा औद्योगिक हितों और खेतिहर हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। इसी कारण उद्योग और व्यापार प्रधान उत्तरी और मध्यवर्ती राज्यों में फेडरलिस्ट दल का अधिक प्रभाव था और दक्षिणी खेतिहर राज्यों में डेमोक्रेट-रिपब्लिकनों का। आज का रिपब्लिकन दल फेडरलिस्ट दल का ही अनुवर्ती है और इसी कारण वह उत्तरी तथा मध्यवर्ती राज्यों के उद्योग प्रधान भागों में विशेष प्रभावशाली है। यद्यपि अब दक्षिणी राज्यों का भी पर्याप्त मात्रा में औद्योगीकरण हो गया है, परन्तु उनमें मुख्यतः डेमोक्रेटिक दल का ही प्राधान्य है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि वर्तमान काल में आर्थिक जीवन के अत्यंत जटिल हो जाने के कारण अब दलों का यह विभागीय स्वरूप नष्ट होता जा रहा है। अनेक उत्तरी राज्यों में डेमोक्रेटिक दल के पर्याप्त समर्थक हैं और यद्यपि दक्षिणी राज्यों में रिपब्लिकन दल का अपेक्षाकृत कम प्रभाव है, परन्तु उनमें उनके समर्थकों का पूर्णतः अभाव नहीं है।

अनेक विदेशी और अमेरिकी पर्यवेक्षकों के द्वारा अमेरिकी दल-प्रणाली की कटु आलोचना की गई है। आलोचना के विषयों में दलों का विचारधारारहित तथा सिद्धान्तहीन होना मुख्य है। परन्तु इसके लिए अमेरिका की विशेष

[1] Finer, *op. cit.*, p. 361.

[2] *Ibid.*, p. 361.

परिस्थितियाँ पर्याप्त मात्रा में उत्तरदायी है। इसका कारण न केवल यह है कि अमेरिका में अपेक्षाकृत समृद्धि के अधिक साधन उपलब्ध हैं वरन् यह भी कि एक लम्बे समय तक तटस्थता की नीति का अनुसरण करने के कारण दलों के वैदेशिक नीति सम्बन्धी विचारों में विशेष अन्तर नहीं रहा है। अन्य आलोच्य विषयों में सदस्यों में दल के प्रति निष्ठा का अभाव तथा कांग्रेस-सदस्यों के द्वारा दलीय निर्देशों की अवहेलना कर मत देना मुख्य है, परन्तु इसका कारण भी सयुक्त राज्य की विशिष्ट परिस्थितियों में मिलता है। विधानमंडलों के सदस्यों आदि को अपने निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं के विचारों का ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि उनके असंतुष्ट हो जाने पर दल उन्हें विजयी नहीं करा सकता। दल-प्रणाली की इस कारण भी कटु आलोचना हुई है कि इसने लूट-प्रथा (Spoils System) को जन्म दिया है।

अमेरिकी राजनीतिक दलों की आलोचना तथा प्रत्यालोचना पर विचार करने के पश्चात् अर्नेस्ट ग्रिफिथ ने यह मत व्यक्त किया है कि सामान्यतः अमेरिकावासी यह अनुभव करते हैं कि वर्तमान दल-प्रणाली उनके हितों का उचित रूप से सम्पादन कर रही है, और उनके द्वारा उसमें मौलिक परिवर्तन किए जाने की कोई सम्भावना नहीं है।[1] वर्तमान प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए यह मत वस्तुस्थिति के अनुरूप ही प्रतीत होता है।

---

[1] Griffith, Ernest S., *The American Political System*, p. 158.

अध्याय १५

राज्यों की शासन-व्यवस्था

यद्यपि विदेशी पर्यवेक्षकों की रुचि मुख्यतः अमेरिका के राष्ट्रीय शासन तक ही सीमित रहती है, परन्तु अमेरिकी नागरिकों के दैनिक जीवन का संबंध राज्यों की सरकारों से ही अधिक रहता है। जैसा कि इस पुस्तक में अमेरिकी संघवाद पर विचार करते समय उल्लेख किया जा चुका है, राज्यों को सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में ही पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त है और वे ऐसी अनेक विधियाँ बनाते हैं, जो नागरिकों के जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती हैं। इसी कारण अमेरिकी शासन-प्रणाली का यह अध्ययन समाप्त करने के पूर्व हम राज्यों की शासन-प्रणालियों पर भी संक्षेप में विचार करेंगे।

राज्यों के संविधान तथा उनकी विशेषताएं—संयुक्त राज्य अड़तालिस राज्यों का संघ है। इन समस्त राज्यों के अपने-अपने पृथक् संविधान हैं। इनमें से कुछ राज्यों के संविधान तो संघीय संविधान से भी अधिक प्राचीन हैं—यद्यपि संघीय संविधान के प्रवर्तित किये जाने के पश्चात् उनमें आवश्यक संशोधन कर लिये गए थे। राज्यों के संविधानों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं और उनमें परस्पर पर्याप्त वैभिन्न्य भी विद्यमान है। परन्तु ऐसा होते हुए भी उनमें कुछ मौलिक समानताएँ हैं। ये समानताएँ निम्नलिखित हैं :—

१. सभी राज्यों के संविधान लिखित तथा अनम्य (Rigid) हैं। कुछ राज्यों के संविधानों में संशोधन के लिए जनता की प्रत्यक्ष स्वीकृति की आवश्यकता होती है जो लोकनिर्णय (Referendum) के द्वारा प्राप्त की जाती है और कुछ में संशोधन पर जनता के द्वारा निर्वाचित सांविधानिक सम्मेलन की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होता है। कुछ राज्यों में सांविधानिक संशोधन तभी प्रभावी हो सकता है जब वह मतदाताओं के पूर्ण बहुमत के द्वारा अङ्गीकृत कर लिया जाय।

२. समस्त राज्यों की शासन-प्रणाली गणतांत्रिक (Republican) तथा प्रतिनिधिक (Representative) है। किसी भी राज्य में शासन का प्रमुख कोई वंशानुगत राजा नहीं है। यद्यपि कुछ राज्यों में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के उपकरणों का व्यापक प्रयोग होता है, परन्तु किसी भी राज्य के शासन का स्वरूप पूर्ण प्रत्यक्ष प्रजातंत्र नहीं है।

३. समस्त राज्यों के संविधानों में शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई है, तथा उनकी शासन-प्रणाली अध्यक्षात्मक (Presidential) है, संसदीय नहीं। संघीय शासन के समान ही राज्यों के शासनों का भी "अवरोध और संतुलन" एक प्रधान लक्षण है।

४. समस्त राज्यों में न्यायपालिका को संविधान का निर्वचन करने का अधिकार प्राप्त है तथा वह राज्य-विधानमंडल की किसी ऐसी विधि को जो राज्य-संविधान के प्रतिकूल हो अवैध घोषित कर सकती है।

५. अधिकांश, लगभग सभी, राज्यों में संविधान के द्वारा नागरिकों के मूलाधिकारों की प्रत्याभूति की गई है। राज्य-संविधानों के अधिकार-पत्रों (Bill of Rights) में मुख्यतः उन्हीं अधिकारों का उल्लेख है जिनकी संघीय संविधान प्रत्याभूति करता है, यथा विचाराभिव्यक्ति, उपासना, धर्मपालन तथा सम्पत्ति के अधिकार, बंदी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार आदि।

कार्यपालिका

समस्त राज्यों की कार्यपालिका के प्रधान गवर्नर कहलाते हैं। केवल मिसिसिपी राज्य को छोड़ कर जहाँ गवर्नर के निर्वाचन में नागरिकों के साथ विधानमंडल का भी कुछ हाथ रहता है, सभी राज्यों में गवर्नर जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित किये जाते है। इक्कीस वर्ष अथवा इससे अधिक आयु के समस्त नागरिक गवर्नर के निर्वाचन में भाग ले सकते हैं।[1] गवर्नर का कार्य-काल सब राज्यों में समान नहीं है, परन्तु वह या तो दो वर्ष के लिए चुना जाता है या चार वर्ष के लिए। यद्यपि कुछ राज्यों में अभी भी गवर्नर-पद के लिए प्रत्याशी राजनीतिक दलों के राज्य-सम्मेलनों द्वारा नामांकित किये जाते हैं,

[1] केवल जॉर्जिया राज्य में मतदाताओं की निम्नतम आयु अठारह वर्ष है।

परन्तु अधिकांश राज्यों में वे मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष प्राइमरी द्वारा नामांकित किये जाते हैं। अधिकांश राज्यों में सामान्य बहुमत पाने वाला प्रत्याशी ही गवर्नर निर्वाचित हो जाता है पर कुछ में निर्वाचित होने के लिए मतों का पूर्ण बहुमत प्राप्त करना आवश्यक है। गवर्नर को विधानमंडल ही महाभियोग के द्वारा पदच्युत कर सकता है। प्रथम सदन अभियोगारोपण करता है और द्वितीय उस पर विचार और निर्णय करता है। कुछ राज्यों में नागरिकों को भी गवर्नर को प्रत्यावर्तित (recall) करने का अधिकार दिया गया है।

गवर्नर राज्य का सर्वप्रधान कार्यपालिका अधिकारी होता है और इस नाते उसे अनेक अधिकार प्राप्त होते हैं। परन्तु उसकी कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति की शक्तियों जैसी विशद नहीं हैं। अधिकांश राज्यों में महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर तथा न्यायाधीशों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा न की जा कर जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन के द्वारा की जाती है। इस कारण वे अपने को गवर्नर के प्रति उत्तरदायी अनुभव नहीं करते। गवर्नर की निरीक्षण और निर्देशन सम्बन्धी शक्तियाँ भी सीमित होती हैं। गवर्नर राज्य की नागरिक-सेना (Militia) का सर्वोच्च अधिकारी होता है तथा आंतरिक उपद्रव आदि की अवस्था में उसे बुला सकता है। इसके अतिरिक्त वह अनेक आयोगों और समितियों का पदेन सदस्य होता है। वह राज्य के क्षेत्राधिकार में आने वाले विषयों पर क्षमादान कर सकता है अथवा दंड को विलंबित कर सकता है; परन्तु कुछ राज्यों में इस शक्ति का प्रयोग 'क्षमा दान-मंडल' (Board of Pardon) की सिफारिश पर ही किया जा सकता है। राज्य की कार्यपालिका का प्रधान होने के नाते राज्य की विधियों को कार्यान्वित कराना उसी का कार्य होता है।

संघीय कांग्रेस के समान ही राज्य विधानमंडलों के सत्र भी निर्धारित तिथियों पर स्वत: प्रारम्भ हो जाते हैं, पर गवर्नर विधानमडल के विशेष सत्र आमंत्रित कर सकता है। सत्र को स्थगित करने की तिथि के सम्बन्ध में विधानमंडल के दोनों सदनों में मतभेद होने पर ही वह उसे स्थगित कर सकता है। वह विधानमंडल को संदेश भेज सकता है। विधानमंडल इस संदेश में दिये गए सुझावों को मानने या न मानने के लिए पूर्णतः स्वतन्त्र रहता है और उनका स्वीकृत या अस्वीकृत होना बहुत कुछ विधानमंडल में गवर्नर के दल की स्थिति पर निर्भर करता है।

विधानमंडल द्वारा पारित किये जाने वाले समस्त विधेयक गवर्नर के पास हस्ताक्षर के लिए भेजे जाते हैं। राष्ट्रपति के समान गवर्नरों को भी उन पर हस्ताक्षर करने के लिए दस दिन का समय दिया जाता है। यदि गवर्नर हस्ताक्षर कर देता है तो वह अधिनियम बन जाता है। यदि वह विधेयक पर निर्धारित अवधि के अन्दर हस्ताक्षर नहीं करता और इस बीच विधानमडल का सत्र स्थगित नहीं होता तो भी विधेयक विधि बन जाता है। पर गवर्नर को यह अधिकार है कि वह निर्धारित अवधि के अन्दर विधेयक को विधानमंडल के पास पुनर्विचार के लिए भेज दे। इसे गवर्नर की 'अभिषेध-शक्ति (Veto) कहा जाता है। विधानमंडल निर्धारित बहुमत से[1] विधेयक को पुनः पारित कर गवर्नर के अभिषेध को प्रभावहीन कर सकता है। कुछ राज्यों में व्यय विनियोग विधेयकों की पृथक् धाराओं पर भी अभिषेध-शक्ति प्रयोग करने का अधिकार गवर्नरों को दे दिया गया है।

गवर्नर की शक्तियों पर यद्यपि पर्याप्त प्रतिबन्ध हैं, परन्तु व्यवहार में यदि इस पद पर कार्य करने वाला व्यक्ति योग्य, अनुभवी, लोकप्रिय और कुशल होता है, तो वह पर्याप्त शक्तिशाली बन जाता है। इसका कारण यही है कि जनता नेतृत्व की आशा उसी से करती है। विधानमडल में दूसरे दल का बहुमत होने पर राज्यों में भी केन्द्रीय शासन के समान ही कार्यपालिका और विधानमंडल के मध्य सम्बन्धों की समस्या उत्पन्न हो जाती है, पर इसका स्थायी निदान तभी हो सकता है जब शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को आमूल संशोधित किया जाय।

विधानमंडल

केवल एक राज्य के अतिरिक्त[2] संयुक्त राज्य के समस्त राज्यों में द्विआगरिक विधानमंडल (bicameral legislatures) हैं। विधानमंडल के प्रथम सदन

को भिन्न राज्यों में भिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है, यथा प्रतिनिधि सभा, जनरल असेंबली, हाउस ऑफ डेलिगेट्स आदि । द्वितीय सदन को सभी राज्यों में सिनेट कहा जाता है । दोनों सदनों का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से किया जाता है, परन्तु सिनेट के निर्वाचन-क्षेत्र निम्न सदन के निर्वाचन-क्षेत्र से सामान्यत: बड़े होते हैं । निर्वाचन-क्षेत्र विधानमंडल द्वारा निर्धारित किये जाते हैं, अतएव 'गैरीमैंड्रिंग'[1] की शिकायत सुनने में आती है । सामान्यत: निर्वाचन-क्षेत्र एक-सदस्यीय होते हैं, परन्तु इलीन्वाइस में बहु-सदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्र होते हैं ।

विधानमंडल के दोनों सदनों के कार्यकाल में भी भिन्न राज्यों में पर्याप्त अन्तर है । अधिकांश राज्यों में निम्न सदन का कार्यकाल दो वर्ष है पर कुछ राज्यो में वह चार वर्ष भी है । लगभग आधे से अधिक राज्यों में सिनेट का कार्यकाल चार वर्ष है । शेष में सिनेट-सदस्य दो या तीन वर्ष के लिए निर्वाचित किए जाते हैं । दोनों सदनों के सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है तथा सत्र में भाग लेने जाते समय अथवा उस से वापस आते समय उन्हें बन्दी नहीं बनाया जा सकता । केवल कुछ अति गम्भीर अपराधों के लिए, उदाहरणार्थ, देशद्रोह के लिए ही बन्दी बनाया जा सकता है । सदस्यों के निर्वाचन में राजनीतिक दलों का प्रमुख भाग रहता है । वे अपने सम्मेलनों के द्वारा या प्रत्यक्ष प्राइमरी के द्वारा दोनों सदनों की सदस्यता के लिए प्रत्याशी नामांकित करते हैं और उन्हें सफल बनाने के लिए पूर्ण प्रयत्न करते हैं ।

केवल कुछ गिने-चुने राज्यों को छोड़ कर शेष सभी राज्यों में विधानमंडल का अधिवेशन प्रति दूसरे वर्ष होता है । अनेक राज्यों के संविधानों में अधिवेशन आरंभ होने की तिथि का उल्लेख है। गवर्नर, यदि आवश्यकता समझे, तो विशेष सत्र भी बुला सकता है । निम्न सदन का अध्यक्ष सदस्यों के द्वारा चुना जाता है और अधिकांशत: द्वितीय सदन का अध्यक्ष लेफ्टिनेंट गवर्नर होता है जो जनता द्वारा निर्वाचित किया जाता है और गवर्नर की अनुपस्थिति या

---

[1]गैरीमैंड्रिंग के अर्थ पर संघीय प्रतिनिधि-सभा के निर्वाचन पर विचार करते समय प्रकाश डाला जा चुका है ।

अस्वस्थता आदि की दशा में उसका कार्य करता है। दोनों ही सदनों की प्रक्रिया में समितियों का प्रमुख हाथ रहता है। ये समितियाँ अधिकतर सदन के अध्यक्ष द्वारा दलीय नेताओं के परामर्श से नियुक्त की जाती हैं। कुछ राज्यों में समितियाँ सदन के सदस्यों द्वारा चुनी जाती हैं।

राज्यों के विधानों को उन विषयों पर विधियाँ बनाने का अधिकार होता है जो संघीय शासन को प्रत्यायोजित नहीं किये गये हैं और न जिन पर विधियाँ बनाने से उन्हें संघीय या राज्य संविधान के द्वारा वर्जित किया गया हो। अनेक विषय ऐसे भी हैं जिन पर संघ और राज्य दोनों को विधियाँ बनाने का अधिकार है। परन्तु उनमें परस्पर विरोध हाने पर संघीय विधियों को ही मान्यता दी जाती है।[1] विधि-निर्माण के अतिरिक्त लगभग सभी राज्यों में विधानमंडलों को गवर्नर तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों को महाभियोग द्वारा पदच्युत करने का अधिकार भी प्राप्त है। अनेक राज्यों में निर्वाचन सम्बन्धी विवादों पर निर्णय करने की शक्ति भी विधानमंडल को प्रदान की गई है। कुछ राज्यों में वे उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करते हैं या नियुक्ति की पुष्टि करते हैं।

न्यायपालिका

प्रत्येक राज्य की संघीय न्याय-व्यवस्था से पृथक् अपनी न्याय-व्यवस्था है। न्यायिक संगठन के शीर्ष पर राज्य का सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) होता है तथा निम्नतम स्तर पर शांति-न्यायाधीशों (Justices of Peace) के न्यायालय होते हैं। राज्य न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध संघीय न्यायालय में केवल उसी दशा में अपील की जा सकती है जब उसमें कोई "संघीय प्रश्न" अर्थात् कोई ऐसा प्रश्न जिसमें संघीय संविधान, संघीय विधियों अथवा किसी संघीय संधि के निर्वाचन की आवश्यकता होती है, निहित होता है। अन्यथा राज्य न्यायालय ही उस पर अन्तिम निर्णय दे सकते हैं। अधिकांश मामले राज्य न्यायालयों द्वारा ही अन्तिम रूप से निर्णीत कर दिये जाते हैं।

राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या विभिन्न राज्यों में भिन्न

---

[1] संघ और राज्यों के बीच शक्ति-वितरण पर 'संयुक्त राज्य की संघीय व्यवस्था' नामक अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है।

होती है। सामान्यतः ये जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं, परन्तु कुछेक राज्यों में इनकी नियुक्ति गवर्नर या विधानमंडल द्वारा भी की जाती है। उन्हें केवल महाभियोग की कार्यवाही के द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है। कुछ राज्यों में जनता को भी उन्हें प्रत्यावर्तित करने का अधिकार होता है। निम्न राज्य न्यायालयों के न्यायाधीश भी सामान्यतः जनता के द्वारा ही निर्वाचित किये जाते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार (jurisdiction) मुख्यतः अपीलीय होता है, परन्तु कुछ विशेष महत्व के मामलों में यथा ऐसे मामलों में जिनमें राज्य भी एक पक्ष हो, इसे मौलिक क्षेत्राधिकार भी प्राप्त होता है। सामान्यतः सर्वोच्च न्यायालय में एक निर्धारित राशि से अधिक के मामलों की अपीलें ही जाती हैं। शेष अपीलों पर मध्यवर्ती न्यायालय ही अन्तिम निर्णय दे सकते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकार संविधान तथा विधियों की व्याख्या करने का अधिकार है। वे राज्य विधानमंडल की ऐसी विधियों को अवैध घोषित कर सकते हैं जो संविधान के प्रतिकूल हों। राज्यों के सर्वोच्च न्यायालय संघीय संविधान, एवं संघीय विधियों तथा संधियों की भी व्याख्या कर सकते हैं, परन्तु ऐसे मामलों पर संघीय न्यायालयों में अपील की जा सकती है।

राज्यों में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र

संयुक्त राज्य के संघीय संविधान में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के उपकरणों (instruments) के उपयोग की व्यवस्था नहीं है। परन्तु इस दृष्टि से अनेक राज्यों के संविधान संघीय संविधान से अधिक जनतांत्रिक हैं। अनेक राज्यों के संविधानों में लोक-निर्णय (Referendum), उपक्रम (Initiative) तथा प्रत्यावर्तन (Recall) तीनों अथवा इनमें से एक या दो के प्रयोग की व्यवस्था है। इनके प्रयोग के द्वारा जनता शासन पर नियंत्रण रख सकती है तथा उसे अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए बाध्य कर सकती है।

लोक-निर्णय (Referendum)—अधिकांश राज्यों में, वस्तुतः डिलावेर के अतिरिक्त अन्य सभी में, सांविधानिक संशोधनों पर लोक-निर्णय के द्वारा जनता की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होता है। अनेक राज्यों में एक निश्चित सीमा से अधिक कर लेने के लिए भी जनता की स्वीकृति आवश्यक होती है।

इसके अतिरिक्त अनेक राज्यों के संविधानों में वैकल्पिक लोक-निर्णय (Optional Referendum) की व्यवस्था है। मतदाताओं की एक निर्धारित संख्या (सामान्यतः पूर्ण संख्या का ५ से १० प्रतिशत तक) कोई विधि प्रवर्तित होने के पश्चात् एक निश्चित अवधि में उस पर लोक-निर्णय की माँग कर सकती है। ऐसी माँग किये जाने पर विधि को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और वह तभी प्रवर्तित हो सकती है जब मतदाताओं का बहुमत उसको स्वीकार कर ले। ऐसे राज्यों की जिनके संविधानों में वैकल्पिक लोक-निर्णय की व्यवस्था है, संख्या इक्कीस है। इनमें नेब्रास्का, ओरेगॉन, मिशौरी तथा कैलिफ़ोर्निया प्रमुख हैं। कुछ राज्यों में यह निर्बन्ध है कि जिन विधियों को विधानमंडल 'आपत्कालीन' घोषित कर देता है उन पर लोक-निर्णय की माँग नहीं की जा सकती। विल्सन के अनुसार सांविधानिक संशोधनों पर लोक-निर्णय का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिकी राज्यों में ही आरंभ हुआ, यद्यपि बाद में स्विट्ज़रलैंड आदि अन्य राज्यों ने भी उसे अंगीकृत कर लिया।[1]

उपक्रम (Initiative)—कुछ अमेरिकी राज्यों के संविधानों में उपक्रम को भी स्थान दिया गया है। यदि मतदाताओं की एक निर्धारित संख्या संविधान में किसी संशोधन की अथवा किसी विषय पर विधि-निर्माण की आवश्यकता अनुभव करती है तो वे अपने हस्ताक्षरयुक्त याचिका प्रस्तुत कर विधानमंडल से उस संबंध में आवश्यक व्यवस्था करने की माँग कर सकते हैं। कुछ राज्यों में ऐसी याचिकाओं को अगले निर्वाचन के समय जनता के समक्ष उपस्थित किया जाता है और कुछ में विधानमंडल स्वयं ही उन पर कार्यवाही कर सकता है। या तो विधानमंडल आवश्यक विधि बनाता है अन्यथा उपक्रम द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को सम्पूर्ण मतदाताओं के समक्ष रखा जाता है और वे ही उस पर निर्णय करते हैं। इस सम्बन्ध में भिन्न राज्यों में भिन्न व्यवस्था है। लॉवल ने अमेरिकी राज्यों में उपक्रम के व्यवहार पर विचार करने के पश्चात् अपना मत व्यक्त किया है कि वहाँ दलगत राजनीति के कारण बहुत बार इसका दुरुपयोग हुआ है।[2]

---

[1] Wilson, W., *The State*, p. 399.

[2] Lowell, *Public Opinion and Popular Government*, Chapter xiv.

प्रत्यावर्तन (Recall)—संयुक्त राज्य के अनेक पश्चिमी राज्यों, यथा ओरेगॉन, लुइसीनिया, कैलिफ़ोर्निया आदि में जनता को यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी भी समय बहुमत से किसी पदाधिकारी को पदच्युत करने की माँग कर सकती है और ऐसी माँग किये जाने पर उस पदाधिकारी को पद से अलग कर दिया जाता है। जिन पदाधिकारियों को पदच्युत करने की माँग की जा सकती है उनमें गवर्नर भी सम्मिलित हैं। कुछ राज्यों में तो न्यायाधीशों को भी प्रत्यावर्तित किया जा सकता है।

अमेरिकी राज्यों में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के उपकरणों से होने वाले लाभों और हानियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है। बहुत से लेखकों ने इसे उपयोगी और बहुत सों ने इसे अनुपयोगी और यहाँ तक कि अनिष्टकर भी घोषित किया है। परन्तु इस सम्बन्ध में अधिक मतभेद नहीं है कि दलीय-राजनीति के कारण उत्पन्न हुई बुराइयों को दूर करने में इन्हें अधिक सफलता नहीं मिली है।

परीक्षा-प्रश्न

सांविधानिक विकास तथा संविधान की विशेषताएं

१. 'संविधान की प्रथाओं' (Conventions of the Constitution) से आप क्या समझते हैं। अपने उत्तर में इंगलैंड और संयुक्त राज्य के संविधानों से उदाहरण दीजिए। (आगरा, १९४०, १९४५)

२. संयुक्त राज्य, स्विट्जरलैण्ड और फ्रांस के संविधानों में संशोधन करने की पद्धति का वर्णन कीजिए। (आगरा, १९४१)

३. विल्सन ने लिखा है : "अमेरिकी संविधान लगभग ब्रिटिश संविधान के समान ही प्राणवान तथा उर्वर (fecund) है।" दोनों संविधानों के जीवन तथा उर्वरता के स्रोतों को स्पष्ट कीजिए। क्या आप विल्सन के कथन से सहमत हैं ? अपने मत के कारण बताइये। (आगरा, १९४२)

४. मांटेस्क्यू के शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त का उल्लेख कीजिए तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन पर उसके प्रभाव का उल्लेख कीजिए। (आगरा, १९४३)

५. संयुक्त राज्य तथा फ्रांस के संविधानों में संशोधन करने की प्रणाली का उल्लेख कीजिए। (लखनऊ, १९४९)

६. "अमेरिकी संविधान अवरोध और संतुलन (checks and balances) की प्रणाली है।" स्पष्ट कीजिए। (बनारस, १९४७; आगरा, १९४४)

७. शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए तथा अपने उत्तर में संयुक्त राज्य में उसके कर्मकरण से उदाहरण दीजिये। (बनारस, १९४८, १९५५; आगरा, १९५१)

८. संयुक्त राज्य और ग्रेट ब्रिटेन के संविधानों में संशोधन करने की प्रणाली की तुलना कीजिए। (बनारस, १९५०)

९. "संयुक्त राज्य में विधानमण्डल, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका की एक दूसरे के प्रभाव से स्वतंत्रता की बड़ी सीमा ही संयुक्त राज्य और इंग्लैण्ड व फ्रांस के संविधानों के बीच का मुख्य अन्तर है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए और यह दिखलाइये कि व्यवहार में शक्ति-पृथक्करण को किस प्रकार कम कर दिया गया है। (आगरा, १९४५)

१०. इस कथन को स्पष्ट कीजिए कि जहाँ इंगलैण्ड में विधानमण्डल सर्व-प्रधान है वहाँ संयुक्त राज्य में संविधान सर्वोपरि है। अमेरिकी संविधान की विधानमांडलिक ज्यादतियों से कैसे रक्षा की जाती है।

११. आपके मतानुसार संयुक्त राज्य के संविधान के प्रधान विशिष्ट लक्षण क्या हैं। संविधान में उसके संशोधन के लिए किस प्रक्रिया का उल्लेख है?
(आगरा, १९५२)

१२. ग्रेट ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य की सरकारों में 'सांविधानिक प्रथाओं' (Constitutional Conventions) के भाग का उल्लेख कीजिए। दोनों देशों की ही कुछ सांविधानिक प्रथाओं के उदाहरण दीजिए। (आगरा, १९५३)

१३. संयुक्त राज्य, इङ्गलैण्ड तथा स्विट्जरलैण्ड के संविधानों में संशोधन करने की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए और उसके आधार पर उनका नम्य अथवा अनम्य संविधानों में वर्गीकरण कीजिए। (आगरा, १९५४)

१४. अमेरिका का विधान क्लिष्ट (rigid) होते हुए भी प्रगतिशील सिद्ध हुआ है। यह कथन कहाँ तक सिद्ध है? ऐसा क्यों हो सका?
(लखनऊ, १९५२)

१५. "संविधान एकाएक गढ़े नहीं जा सकते, किन्तु वे देश, काल व परि-स्थिति के अनुकूल विकसित होते हैं।" संयुक्त राष्ट्र (U.S.A.) व जापान (१९४६) के विधानों के संबंध में उक्त कथन की सत्यता प्रमाणित करते हुए अपने विचार लिखिये।

१६. "अमेरिका का शासन, प्रतिबन्ध और संतुलन की पद्धति पर आधारित है।" इस कथन का अर्थ समझाइये। (लखनऊ, १९५४)

१७. नम्य और अनम्य संविधानों के बीच का भेद स्पष्ट कीजिए। ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राज्य के संविधान इनमें से किन वर्गों में आते हैं। अपने उत्तर के कारण बताइये। (बनारस, १९५१)

नागरिकता तथा मूलाधिकार

१. एक जनतांत्रिक राज्य में मूलाधिकारों के महत्व की विवेचना कीजिए। संयुक्त राज्य में उनकी किस प्रकार प्रत्याभूति (guarantee) की गई है। (इलाहाबाद, १९४९)

संघीय व्यवस्था

१. अमेरिकी का संघीय व्यवस्था के मुख्य लक्षण क्या है? उसकी स्विट्जरलैण्ड की संघीय व्यवस्था से तुलना कीजिये। (आगरा, १९४६)

२. संयुक्त राज्य, स्विट्जरलैण्ड और सोवियत संघ में संघीय शासन तथा एककों के बीच शक्तियाँ किन आधारों पर वितरित की गई हैं? (आगरा, १९४९)

३. आस्ट्रेलिया की संघीय व्यवस्था की संयुक्त राज्य की संघीय-व्यवस्था से तुलना कीजिए। (आगरा, १९५०)

४. संघीय शासन-प्रणाली के मूल लक्षण क्या हैं? वे संयुक्त राज्य और सोवियत संघ के संविधानों में किस सीमा तक उपस्थित हैं? (आगरा, १९५२)

५. संयुक्त राज्य, कनाडा और स्विट्जरलैण्ड में किन विभिन्न सिद्धान्तों के आधार पर संघ और राज्यों के बीच शक्तियाँ वितरित की गई हैं? (लखनऊ, १९४९)

६. स्विस संघीय व्यवस्था संयुक्त राज्य की संघीय व्यवस्था से किस प्रकार भिन्न है? (लखनऊ, १९४७)

७. अमरीका और स्विट्जरलैण्ड में केन्द्र और इकाइयों के संबंधों की आलोचना कीजिये। (लखनऊ, १९५०)

८. अमेरिकी और स्विस संघ-राज्यों के शक्ति वितरण की तुलना कीजिए। (आगरा, १९५४)

कार्यपालिका

१. संक्षेप में अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के गुण-दोषों की संयुक्त राज्य के अनुभवों को ध्यान में रखते हुए, विवेचना कीजिए। (इलाहाबाद, १९४८)

२. संयुक्त राज्य में राष्ट्रपति तथा कांग्रेस के बीच सांविधानिक तथा राजनीतिक संबंधों की विवेचना कीजिए। (इलाहाबाद, १९५०)

३. अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के मुख्य लक्षणों का वर्णन कीजिए। स्विस कार्यपालिका की अमेरिकी कार्यपालिका से तुलना कीजिए।

(इलाहाबाद, १९५२)

४. संसदात्मक तथा अध्यक्षात्मक शासन प्रणालियों के अंतर का इंग्लैंड या फ्रांस तथा संयुक्त राज्य को ध्यान में रखते हुए उल्लेख कीजिए।

(लखनऊ, १९४४, १९५०; बनारस, १९५०; आगरा, १९४१)

५. "संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति विश्व के समस्त सांविधानिक शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली है।" इस कथन का उसकी शक्तियों की ब्रिटिश राजा तथा जापान के सम्राट् की शक्तियों से तुलना करते हुए परीक्षण कीजिए।

(लखनऊ, १९४६, १९४९, १९५१)

६. संयुक्त राज्य, स्विट्ज़रलैंड तथा फ्रांस (तृतीय गणराज्य) के राष्ट्रपतियों की शक्तियों तथा स्थिति की तुलना कीजिए।

(लखनऊ, १९४८; आगरा, १९४२, १९४७)

७. "यह कहना सर्वथा भूल है कि अमेरिका के राष्ट्रपति कानून नहीं बनाते हैं।"

अमेरिका के राष्ट्रपति एवं कांग्रेस के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करते हुए समझाइये कि वहाँ के राष्ट्रपति विधि-निर्माण प्रणाली को किस प्रकार से प्रभावित करते हैं। (लखनऊ, १९५३)

८. ब्रिटिश नरेश तथा संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की शक्तियों तथा स्थिति की तुलना कीजिए। (बनारस, १९४९)

९. ब्रिटिश प्रधानमन्त्री तथा अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियों तथा स्थिति की तुलना कीजिए। (बनारस, १९५१ आगरा, १९५२)

१०. संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की शक्तियों तथा प्रभाव के क्षेत्र का परीक्षण कीजिए तथा उसकी शक्तियों के इतना व्यापक होने का कारण बताइये।

(बनारस, १९५२)

११. संयुक्त राज्य की अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। (बनारस, १९५४)

१२. संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए।

(आगरा, १९४८)

१३. "अमेरिकी राष्ट्रपति एक लोकात्मक-कार्यपालिका (Plebiscitary Executive) है जिसकी शक्तियाँ सीमित हैं परन्तु जिनमें वृद्धि की बहुत अधिक सम्भावनाएं हैं।" इस कथन को उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

(आगरा, १९५०)

१४ "राष्ट्रपति सदैव ही 'ड्राइवर' या 'ब्रेक' की तरह कार्य करता है, वह कभी भी 'स्पेयर व्हील' नहीं होता।" (ब्रागन) विवेचना कीजिए।

(आगरा, १९५१)

१५. लास्की का कथन है कि संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति एक नरेश से कम भी है और अधिक भी, इसी तरह से वह एक प्रधानमंत्री से कम भी है और अधिक भी। अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियों तथा स्थिति का ब्रिटिश प्रधान मंत्री तथा ब्रिटिश-नरेश से तुलना करते हुए परीक्षण कीजिए।

(आगरा, १९५३)

विधान मंडल तथा विधि-निर्माण प्रक्रिया

१. इस कथन के लिए क्या औचित्य है कि संयुक्त राज्य की सिनेट संसार का सर्वाधिक शक्तिशाली द्वितीय सदन है।

(इलाहाबाद, १९४३; आगरा, १९५०, १६५४)

२. "फ्रांस के संविधान में से सिनेट को निकाल देने से संविधान में मामूली असंतुलन उत्पन्न होगा; ब्रिटिश लार्ड सभा को निकाल देने से संविधान और अधिक सुदृढ़ बनेगा। इन सभाओं को हटाने का अर्थ शरीर से हाथ या पैर अलग कर देना मात्र है। अमेरिकी सिनेट को हटाने का अर्थ संघीय शासन

को ही नष्ट कर देना है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए और अपने विचार प्रकट कीजिए। (इलाहाबाद, १९४५)

३. "प्रतिनिधि-सभा एक वाचाल तथा नाटकीय अशक्तता की दशा को पहुँच गई है।" यह अमेरिकी लोकप्रिय सदन का कहाँ तक सही मूल्यांकन है? राष्ट्रीय राजनीति में उसके स्थान की ब्रिटिश कामंस सभा के स्थान से तुलना कीजिए। (इलाहाबाद, १९४६)

४. अमेरिकी सिनेट के संगठन, कृत्यों तथा शक्तियों का वर्णन कीजिए। (इलाहाबाद, १९४७, १९५१; बनारस, १९५४)

५. संयुक्त राज्य की प्रतिनिधि-सभा की रचना का वर्णन कीजिए तथा सिनेट से उनके सम्बन्धों की विवेचना कीजिए। (इलाहाबाद, १९५२)

६. आस्ट्रेलिया तथा अमेरिका की सिनेटों की रचना तथा शक्तियों की तुलना कीजिए। (इलाहाबाद, १९५३)

७. अमेरिकी सिनेट के संगठन तथा शक्तियों तथा उसके निम्न सदन से सम्बन्धों का परीक्षण कीजिए। (लखनऊ, १९४७)

८. संयुक्त राज्य में कार्यपालिका तथा विधानमंडल के बीच सम्बन्धों के बारे में शक्ति पृथक्करण के व्यवहार पर प्रकाश डालिए। (लखनऊ, १९४८)

९. संयुक्त राज्य तथा स्विट्जरलैंड की सिनेटों की रचना तथा शक्तियों की तुलना कीजिए। (लखनऊ, १९४९, १९५१)

१०. अमेरिका की सिनेट पर एक निबन्ध लिखिए। (लखनऊ, १९५४)

११. ब्रिटिश कामंस सभा के अध्यक्ष का निर्वाचन कैसे होता है? इंगलैंड की कामंस सभा के अध्यक्ष की शक्तियों तथा स्थिति की संयुक्त राज्य की प्रतिनिधि सभा की शक्तियों तथा स्थिति से तुलना कीजिए। (आगरा, १९४६; बनारस, १९४७)

१२. "अमेरिकी सिनेट संसार का सर्वाधिक शक्तिशाली द्वितीय सदन है।" विवेचना कीजिए। (बनारस, १९४८ आगरा, १९४४)

१३. अमेरिकी सिनेट तथा प्रतिनिधि सभा की शक्तियों की तुलना कीजिए। (बनारस, १९३३)

१४. संयुक्त राज्य तथा गणराज्य फ्रांस की सिनेटों की रचनाओं तथा कृत्यों की तुलना कीजिए। (आगरा, १९४६)

१५. अमेरिकी सिनेट तथा ब्रिटिश लार्ड सभा की रचना तथा कृत्यों की तुलना कीजिए। (आगरा, १९४९)

१६. ब्रिटिश कामंस सभा की समिति प्रणाली के कर्मकरण की अमेरिकी प्रतिनिधि सभा की समिति प्रणाली के कर्मकरण से तुलना कीजिए।
(आगरा, १९५०)

१७. ब्रिटिश कामंस सभा के अध्यक्ष के कृत्यों की अमेरिकी प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष के कृत्यों से तुलना कीजिए। दोनों के बीच अन्तर का क्या कारण है ? आप किस परम्परा को अपने देश के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समझते है ?
(आगरा, १९५१)

१८. अमेरिकी प्रतिनिधि सभा की रचना तथा कर्मकरण का वर्णन कीजिए। उसकी मुख्य कमियाँ क्या हैं ? (आगरा, १९५२)

१९. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :—

१. सिनेट की नम्रता (इलाहाबाद, १९४१, ४८, ५१, आगरा, ४८, ५१, बनारस, १९५०)
२. "फिलीबस्टरिंग" (लखनऊ, १९४७, ५२, आगरा, १९५१)
३. "गैरीमैन्डरिंग" (बनारस, १९५०, आगरा, १९५१)
४. "लॉगरोलिंग" (आगरा, १९५१)

न्यायपालिका

१. अमेरिकी शासन प्रणाली में न्यायपालिका का क्या स्थान है ?
(इलाहाबाद, १९४४; आगरा, १९५३)

२. संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय की रचना शक्तियों तथा कृत्यों का वर्णन कीजिए। (इलाहाबाद, १९४७; बनारस, १९५५)

३. अमेरिकी संघीय व्यवस्था में न्यायपालिका के स्थान पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए। (इलाहाबाद, १९५०)

४. अमेरिका तथा स्विस संघीय शासनों में न्यायपालिका के संगठन शक्तियों तथा स्थिति की तुलना कीजिए। (इलाहाबाद, १९५१; बनारस, १९५२, ५४)

५. "संविधान का संरक्षक"—संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के इस वर्णन की विवेचना कीजिए। (लखनऊ, १९४८)

६. संघ में न्यायपालिका का क्या महत्त्व है ? इसकी विवेचना अमेरिका को विशेषतया लक्ष्य करके लिखिए। (लखनऊ, १९५०, ५२; बनारस, १९४८)

७. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :—

१- संयुक्त राज्य का सर्वोच्च न्यायालय (लखनऊ, १९५३)

२. "संयुक्त राज्य में संविधान वही है जो न्यायाधीश उसे बतावें।" (आगरा, १९५०)

८. न्यायिक पुनर्विलोकन से आप क्या समझते हैं ? संयुक्त राज्य में यह किस सीमा तक व्यवहृत होता है ? (बनारस, १९५१)

९. संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के राजनीतिक परिणामों का उल्लेख कीजिए। (बनारस, १९५३)

१०. संयुक्त राज्य के संविधान में सर्वोच्च न्यायालय के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए तथा उसकी स्विट्ज़रलैंड के संघीय न्यायालय से तुलना कीजिए। (आगरा, १९५०)

११. न्यायिक पुनर्विलोकन से आप क्या समझते हैं ? यह संयुक्त राज्य सोवियत संघ, स्विट्ज़रलैंड तथा ग्रेट ब्रिटेन में किस सीमा तक वर्तमान है ? (आगरा, १९५२)

१२. न्यायिक पुनर्विलोकन से आप क्या समझते हैं ? जिन संविधानों का आपने अध्ययन किया है उनसे उदाहरण देते हुए समझाइये ? (आगरा, १९५४)

राजनीतिक दल

१. क्या जनतंत्र के लिए दलीय शासन प्रणाली आवश्यक है ? अपने उत्तर में इंग्लैंड तथा संयुक्त राज्य के उदाहरण दीजिए। (लखनऊ, १९५०)

२. एक-दल, द्विद व बहुदल प्रणालियों के गुण व दोष सोवियत रूस,

संयुक्त राज्य और फ्रांस की राजनैतिक पार्टियों की कार्यप्रथाओं के आधार पर प्रमाणित कीजिए। (लखनऊ, १९५३)

३. अमेरिकी संविधान के कर्मकरण में दल प्रणाली के स्थान पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए। (इलाहाबाद, १९५१)

४. आधुनिक जनतांत्रिक राज्यों में दलों के द्वारा क्या कार्य किए जाते हैं? अपने उत्तर में इंग्लैंड और संयुक्त राज्य की राजनीतिक संस्थाओं के कर्मकरण के उदाहरण दीजिए। (आगरा, १९४४)

५. "प्रातिनिधिक शासन दलीय शासन है।" इस कथन को ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राज्य के संविधानों के उदाहरणों से स्पष्ट कीजिए। अमेरिकी राजनीतिक दल ग्रेट ब्रिटेन के राजनीतिक दलों से क्यों अधिक कठोरतापूर्वक संगठित हैं? (आगरा १९५०)

६. "कांग्रेस कार्यपालिका से असम्बद्ध है, परन्तु दलीय संगठन कभी-कभी दोनों को सम्बद्ध कर देते हैं," (फाइनर) अपने विचार प्रकट कीजिए। (आगरा, १९५४)

सहायक पुस्तकों की सूची

(Bibliography)

Amos—The American Constitution.

Anderson, W.—American Government

Bailey, D.—Aspects of American Government: A symposium

Beck, James—The Constitution of the United States.

Beard, C. A.—American Government and Politics.

Beard, C. A.—An Economic Interpretation of the Constitution of the United States.

Brogan, D. W.—American Political System.

Brogan, D. W.—An Introduction to American Politics.

Bruce, H. R.—American Parties and Politics.

Bryce, James—American Commonwealth, Vols. I & II.

Bryce, James—Modern Democracies, Vols. I & II.

Corwin, E. S.—The President : Office and Powers.

Dicey, A. V.—Law of the Constitution.

Egerton,—Unions and Federations in the British Empire.

Finer, Herman—Theory and Practice of Modern Government.

Garner—Political Science and Government.

Haines, C. G.—The American Doctrine of Judicial Supremacy.

Horwill—Usages of the American Constitution.

Laski, H. J.—American Democracy.

Laksi, H. J.—American Presidency.

Learned, H. B.—The President's Cabinet.

Mc Iver—Modern State.

Munro, W. B.—The Government of the United States

Munro, W. B.—The Constitution of the United States.

Ogg, F. A., and Ray, P. O.—Essentials of American Government.

Ogg, F. A., and Ray, P. O.—An Introduction to American Government.

Patterson, C. P.—Presidential Government in the United States; the Unwritten Constitution.

Padover, S. K.—The Living U. S. Constitution,

Sait,—American Parties and Elections.

Strong, C, F.—Modern Political Constitutions.

Taft, W. H.—Our Chief Magistrate and His Powers.

Willoughby, W. W.—Constitutional Law of the United States, Vols I, II and III.

Wilson, W.—The State.

Wilson, W.—Congressional Government: A Study in American Politics.

Wilson, W.—Contitutional Government in the United States.

Young, R.—This is Congress.

Zink, Harold—Government in the United States.